Impact Factor : 5.634

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Volume 13, Issue 1 (January–June 2026) ISSN : 2349-9575



संरक्षक :
प्रो. (डॉ.) जीत सिंह

प्रधान संपादक :
डॉ. मन्जू चौहान

संपादक :
डॉ. सुलक्षणा अहलावत

प्रबंध संपादक :
डॉ. विकास शर्मा

प्रकाशक :
प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब
रोहतक (हरियाणा)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Volume 13,	Issue 1	(January–June 2026)	ISSN : 2349-9575

संरक्षक :
प्रो. (डॉ.) जीत सिंह

प्रधान संपादक :
डॉ. मन्जू चौहान

संपादक :
डॉ. सुलक्षणा अहलावत

प्रबंध संपादक :
डॉ. विकास शर्मा

1. 'शोध परिधि' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'शोध परिधि' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।
3. पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र रोहतक (हरियाणा) न्यायालय ही मान्य होगा।

मूल्य : 1350/-

संपादक मण्डल/विषय विशेषज्ञ/परामर्श समिति/ शोधपत्र निरीक्षण समिति/समीक्षक समिति

1. **डॉ. सत्यन्त कुमार**
आचार्य (शारीरिक शिक्षा विभाग)
श्री राममूर्ति गुप्ता राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छर्रा, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)

2. **प्रो. (डॉ.) स्वर्णलता कदम**
आचार्या (हिंदी विभाग)
श. म. पाण्डेय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, माधवपुरम, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

3. **डॉ. बबली अरूण**
सह आचार्य (संगीत विभाग)
कु. मा. रा. म. महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

4. **डॉ. संजीव कुमार**
विभागाध्यक्ष (शिक्षा संकाय)
कु. मा. रा. म. महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

5. **प्रो. (डॉ.) नीरज कुमार**
आचार्य हिंदी विभाग,
कु. मा. रा. म. महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

6. **प्रो. (डॉ.) हरेन्द्र कुमार**
विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र)
राजकीय महाविद्यालय, बी. बी. नगर, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)

7. **प्रो. (डॉ.) गीता शर्मा**
आचार्या (हिंदी विभाग)
एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

8. **प्रो. (डॉ.) अरविन्द कुमार यादव**
आचार्य (वाणिज्य विभाग)
मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय, नन्दग्राम, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

9. **प्रो. (डॉ.) संजीता वर्मा**
आचार्या (हिंदी विभाग)
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू (नेपाल)

10. **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
सहायक आचार्या (हिंदी विभाग)
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू (नेपाल)

11. **श्री डिल्लीराम शर्मा संग्रौला**
सहायक आचार्य (हिंदी विभाग)
पद्मकन्या बहुमुखी परिसर, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू (नेपाल)

12. **डॉ. ज्योतिरानी जायसवाल**
सहायक आचार्या (इतिहास विभाग)
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

13. **प्रो. (डॉ.) चंद्रशेखर सिंह**
आचार्य (समाज कार्य विभाग)
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

14. **डॉ. नरेश कुमार सिहाग**
वकील
जिला न्यायालय, भिवानी (हरियाणा)

15. **डॉ. पूनम कुमारी**
सहायक आचार्या (संस्कृत विभाग)
राजकीय महाविद्यालय, उच्चैन, भरतपुर (राजस्थान)

16. **डॉ. मनजीत**
सह आचार्या (हिंदी विभाग)
वैश्य आर्य कन्या महाविद्यालय, बहादुरगढ़ (हरियाणा)

17. **डॉ. उन्नति शर्मा**
सहायक आचार्या (समाजशास्त्र विभाग)
दयानंद महाविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)

18. **डॉ. रामप्रवेश सिंह**
सहायक आचार्य (हिंदी विभाग)
जनता स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीपुर–मऊ (उत्तर प्रदेश)

19. **डॉ. सुनील कुमार सिंह**
अतिथि व्याख्याता (जनसंचार विभाग)
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश)

20. **श्री राहुल रमन**
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
वाई बी एन विश्वविद्यालय, रांची (झारखंड)

21. **डॉ. आकांक्षा पाल**
सहायक प्राध्यापिका (संगीत विभाग)
सी. एम. पी. डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)

22. **डॉ. गीता पंत**
सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मानिला (उत्तराखंड)

23. **डॉ. सुनीता सारस्वत**
सह प्राध्यापिका (शिक्षा शास्त्र विभाग)
सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी (राजस्थान)

24. **डॉ. बी. मल्लिका**
अतिथि व्याख्याता (हिन्दी विभाग)
गांधीग्राम ग्रामीण संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), दिंडीगुल (तमिलनाडु)

25. **मो. जिमी**
शोधार्थी (उर्दू विभाग)
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर (बिहार)

26. **डॉ. प्रवीण दिगंबर देशमुख**
प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
गुलाम नबी आजाद कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, बार्शीटाकली (महाराष्ट्र)

27. **डॉ. अनीता शर्मा**
सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी विभाग)
रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एण्ड मैनेजमेंट, गुरुग्राम (हरियाणा)

28. **डॉ. सुप्रिया ई**
सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी विभाग)
फातिमा कॉलेज (स्वायत्तशासी), मदुरै (तमिलनाडु)

29. **डॉ. आरती सरोज**
सहायक आचार्या (संस्कृत)
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

30. **श्री नितिन सुभाषराव कुंभकर्ण**
सहायक आचार्य (हिन्दी विभाग)
यशवंत महाविद्यालय, सेलु (महाराष्ट्र)

31. **डॉ. बबीता**
सहायक प्राध्यापिका (शिक्षा शास्त्र विभाग)
लक्ष्मण सिंह महर कैम्पस, पिथौरागढ़ (उत्तराखंड)

32. **डॉ. प्रदीप जगन्नाथ औजेकर**
सहायक प्राध्यापक (मराठी विभाग)
किसान कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, पारोला (महाराष्ट्र)

33. **डॉ. दिलकुश झा**
भारतीय सेना।

34. **डॉ. संजीव कुमार के.**
सह आचार्य (हिन्दी विभाग)
एम.ई.एस. कल्लाडी कॉलेज, मन्नारक्काड (केरल)

35. **डॉ. मंजू**
सहायक प्राध्यापिका (शिक्षा शास्त्र)
आर एस एम कॉलेज ऑफ एजुकेशन, लाखु बुआना (हरियाणा)

36. **डॉ. दीप्ति लोदवाल**
ग्रन्थपाल
शासकीय विधि महाविद्यालय, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

37. **हेमलता पारस**
सहायक प्राध्यापिका (समाजशास्त्र)
पी.एम.सी.ओ.ई. शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर मालवा (मध्य प्रदेश)

38. **डॉ. अर्चना दुबे**
वरिष्ठ लाइब्रेरियन
संत अलॉयसियस महाविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

जनवरी–जून 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. विकास शर्मा	08–09
2.	वाराणसी एवं आसपास के क्षेत्रों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं की स्थिति	अजय कुमार भारती, प्रोफे. चंद्रशेखर सिंह	10–13
3.	साइबर अपराध और बच्चों की सुरक्षा पर शिक्षा	अनामिका केण्डिया	14–17
4.	लोकतंत्र एवं दलित उत्थान के संदर्भ में डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर के विचार : एक अध्ययन	अंजना ठाकुर	18–20
5.	कैंसर से पीड़ित रोगियों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं एवं उनका रोगियों के उपचार पर प्रभाव का अध्ययन	अन्तुला कुमारी	21–26
6.	किन्नर एवं मानवतावादी दृष्टिकोण	डॉ. बबिता सिंह	27–30
7.	**SPIRITUAL PARENTING FOR THE PRESENT GENERATION**	**Baburam K.C.**	**31-34**
8.	प्राथमिक शिक्षा में भाषा और संस्कृति का समन्वय	बैजु मुण्डा	35–39
9.	21वी सदी का सोशल मीडिया और हिंदी का बदलता परिदृश्य : भाषा, संस्कृति एवं प्रभाव	डॉ. दीपिका शर्मा	40–44
10.	वित्तीय साक्षरता का निवेश निर्णयों पर प्रभाव	Dr. DILIP KUMAR PARSENDIYA	45-47
11.	**Emerging Role of Innovative Technology in the Indian Agriculture Sector**	**Dr. Indu Kumari**	**48-53**
12.	गोरखा एकीकरण के दौरान भारतीय राजवाड़ों की भूमिका : एक ऐतिहासिक–राजनीतिक अध्ययन	डॉ. जितेन्द्र कुमार	54–59
13.	भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी का स्थान	ज्योति	60–64
14.	**Tourism Perspective of Madhya Pradesh : Government Efforts**	**Krishnakant Sharma, Akash Pandey**	**65-69**
15.	तुलसीदास के साहित्य में रामभक्ति का स्वरूप	डॉ. के. माधवी	70–74
16.	भारत में दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए डिजिटल पुस्तकालय : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	Dr. MANISH CHOUDHARY	75-78
17.	**JUVNILE DELINQUENCY : PREVENTION THROUGH LEGAL EDUCATION AT SCHOOL LEVEL**	**Manohar Singh Mewada**	**79-86**
18.	युवा राजनीति और सांस्कृतिक कूटनीति : भारत–नेपाल संबंधों में यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम और एनसीसी कैडेट्स की भूमिका	लेफ्टिनेंट डॉ. प्रमिला कबीर कुरेठिया	87–90

19.	कश्मीर शैव दर्शन में मोक्ष की अवधारणा : एक दार्शनिक अध्ययन	डॉ. प्रतिमा राय	91–93
20.	**Dr. B. R. Ambedkar's *The Buddha and His Dhamma* and the Quest for Global Peace : A Democratic Perspective**	**Pravesh Bhalse**	**94-99**
21.	गांधीवादी विचारधारा बनाम क्रांतिकारी आंदोलन : स्वतंत्रता प्राप्ति के दो भिन्न मार्ग	प्रिन्स कुमार	100–104
22.	**Contribution To Stress and Burnout Experienced by Employed Mothers**	**Dr. Priya Singh**	**105-113**
23.	लैंगिक विभिन्नता के कारण बालिकओं का घटता अनुपात एक सामाजिक समस्या	डॉ. रागिनी	114–117
24.	**The Rajyoga Lifestyle as a Tool for Healthy Aging**	**Rajan Kar, Dr. Sephali Pradhan**	**118-123**
25.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता का सामाजिक जीवन पर प्रभाव	डॉ. रामकली शर्मा	124–128
26.	साइबर कूटनीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंध : समकालीन भू-राजनीति में डिजिटल युद्ध की भूमिका	**Raushan Kumar**	**129-138**
27.	डिजिटल साक्षरता और ग्रामीण महिला सशक्तिकरण : भारत-नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्रों में ई-गवर्नेंस का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	रविन्द्र सोलंकी	139–141
28.	मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य हेतु संचालित साझा कार्यक्रमों का अध्ययन	रेणु देवी	142–148
29.	मीडिया और जनसंचार का साहित्यिक महत्व	डॉ. मो. रियाज खान	149–151
30.	**Education as Cultural Capital : Revisiting Bourdieu in Contemporary South Asia**	**Dr. Ruqqia Hashmi**	**152-158**
31.	किशोरों में नशा व्यसन के प्रभाव का एक अध्ययन : पूर्वांचल क्षेत्र के संदर्भ में	समीक्षा झा, प्रो. चंद्रशेखर सिंह	159–166
32.	**Advanced Techniques of Rainwater Harvesting**	**Dr. Sanjay Kumar Sinha**	**167-172**
33.	**CONTEMPT OF COURT : A CRITICAL ANALYSIS**	**Dr. Sarita Sharma**	**173-180**
34.	डिजिटल युग में किशोरों का मानसिक स्वास्थ्य एवं पारिवारिक परिवेश : गृह विज्ञान और मानव विकास के संदर्भ में एक अध्ययन	डॉ. सरोज बाला श्याग बिश्नोई	181–187

35.	प्राथमिक शिक्षा में सांस्कृतिक चेतना और मुण्डारी लोक साहित्य	डॉ. खातिर हेमरोम, सत्यनारायण मुण्डा	188–194
36.	**Sultanpur National Park as a Wintering Ground : Linking the Indo-Gangetic Plains with Himalayan Avian Migration Routes**	**Seema Kumari, Umesh Kumar**	**195-198**
37.	क्षेत्रीय भाषाओं का विकास और संरक्षण (भारत मध्य प्रदेश के निमाड़ अंचल के बारेली भाषा के संदर्भ में)	डॉ. सेवन्ती डावर	199–202
38.	पाली और प्राकृत भाषाओं का नेपाल में संरक्षण	डॉ. शबनम खान	203–206
39.	**Ecological Challenges and Conservation Strategies for Sustainable Harvesting of Himalayan Medicinal Herbs**	**Dr. Sharad Singh Lodhi**	**207-210**
40.	हिंदी साहित्य के विकास में नेपाली लेखकों का योगदान	डॉ. शर्मिला चौहान	211–212
41.	क्षमा शर्मा के बाल साहित्य का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन एक शोधपरक अध्ययन	शोभा मेवाड़ा	213–216
42.	**Social Sector Expenditure as a tool of Strengthening the Socio-Economic Security for a Resilient India**	**Dr. Sonam Gupta**	**217-229**
43.	**Role of Digital Libraries in Educational and Cultural Cooperation between India and Nepal**	**Sonam Yadav**	**230-235**
44.	**Reimagining Regionalism in South Asia : The Role of India and Nepal in the Revival of SAARC**	**Dr. Sovik Mukherjee**	**236-240**
45.	भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों की भूमिका	डॉ. सुनिता सारस्वत	241–245
46.	**Reassessing Human Intelligence : The Growing Significance of SQ and AQ in Modern Society**	**Dr. Vinita Swarnkar**	**246-250**
47.	मुण्डा जनजातियों में विवाह परंपराओं का दस्तावेजीकरण	विराजमान मुण्डा	251–255

संपादकीय.....

ज्ञान, अनुसंधान और उत्तरदायी समाज की ओर

मानव सभ्यता का सम्पूर्ण विकास ज्ञान, जिज्ञासा और अनुसंधान की सतत प्रक्रिया का परिणाम है। ज्ञान मनुष्य को विचार करने की क्षमता प्रदान करता है, अनुसंधान उन विचारों को सत्य की कसौटी पर परखता है और उत्तरदायित्व उन निष्कर्षों को समाज के हित में उपयोग करने की प्रेरणा देता है। वर्तमान समय में जब विश्व तीव्र गति से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, तब ज्ञान और अनुसंधान की भूमिका पहले की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हो रहे निरंतर नवाचार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विस्तार, डिजिटल क्रांति, पर्यावरणीय चुनौतियाँ, वैश्विक स्वास्थ्य संकट, आर्थिक असमानताएँ तथा सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन ऐसे अनेक प्रश्न हमारे सामने उपस्थित कर रहे हैं जिनका समाधान केवल तथ्यों के संग्रह से नहीं, बल्कि उत्तरदायी एवं समाजोपयोगी अनुसंधान से ही संभव है।

आज शोध का उद्देश्य केवल नई जानकारी प्राप्त करना या शैक्षणिक उपाधि अर्जित करना नहीं रह गया है। शोध का वास्तविक लक्ष्य समाज की समस्याओं को समझना, उनके कारणों का वैज्ञानिक विश्लेषण करना तथा व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करना है। ऐसा अनुसंधान ही सार्थक माना जा सकता है जो मानव जीवन को बेहतर बनाने, सामाजिक न्याय को सुदृढ़ करने, पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने तथा राष्ट्र के समग्र विकास में योगदान देने में सक्षम हो। इसलिए वर्तमान समय में अनुसंधान को प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों और विश्वविद्यालयों की सीमाओं से बाहर निकालकर समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचाना आवश्यक है।

भारतीय ज्ञान–परम्परा सदैव ज्ञान को लोककल्याण का माध्यम मानती रही है। वेद, उपनिषद, बौद्ध और जैन दर्शन, आयुर्वेद, गणित, खगोल, व्याकरण, साहित्य तथा दर्शन के क्षेत्र में भारत ने विश्व को जो अमूल्य धरोहर प्रदान की है, वह केवल बौद्धिक उपलब्धि नहीं, बल्कि मानवता के कल्याण का संदेश भी है। 'सा विद्या या विमुक्तये' तथा 'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः' जैसे वैदिक सूत्र आज भी हमें यह प्रेरणा देते हैं कि ज्ञान का उद्देश्य मनुष्य को व्यापक दृष्टि, विवेक और उत्तरदायित्व से जोड़ना है। आधुनिक अनुसंधान को भी इसी मानवीय दृष्टिकोण के साथ आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने अनुसंधान, नवाचार और बहुविषयक शिक्षा को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। यह नीति विद्यार्थियों और शोधार्थियों में जिज्ञासा, रचनात्मकता, आलोचनात्मक चिंतन तथा समस्या–समाधान की क्षमता विकसित करने पर बल देती है। साथ ही यह भारतीय ज्ञान–परम्परा और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समन्वय की बात करती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे विश्वविद्यालय, महाविद्यालय तथा शोध संस्थान ऐसी शोध संस्कृति विकसित करें जिसमें मौलिक चिंतन, नवाचार, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए।

वर्तमान युग में अनुसंधान का स्वरूप अत्यंत व्यापक और बहुआयामी हो गया है। विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, शिक्षा, साहित्य, प्रबंधन, चिकित्सा, कृषि, पर्यावरण, सूचना प्रौद्योगिकी, विधि तथा संस्कृति जैसे विविध क्षेत्रों में अंतर्विषयक शोध की आवश्यकता निरंतर बढ़ रही है। जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा संकट, ग्रामीण विकास, सार्वजनिक स्वास्थ्य, लैंगिक समानता, सामाजिक समावेशन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता का नैतिक उपयोग तथा सतत विकास जैसे विषय किसी एक विषय की सीमाओं में नहीं समा सकते। इन चुनौतियों के समाधान के लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के बीच संवाद, सहयोग और समन्वित अनुसंधान आवश्यक है।

अनुसंधान की गुणवत्ता केवल उसके निष्कर्षों से निर्धारित नहीं होती, बल्कि उसकी कार्यप्रणाली, विश्वसनीयता और नैतिकता से भी होती है। मौलिकता, सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता, पारदर्शिता और बौद्धिक ईमानदारी प्रत्येक शोधकर्ता का प्रथम दायित्व है। साहित्यिक चोरी, तथ्य–विकृति, अनैतिक उद्धरण तथा शोध में कृत्रिम

साधनों के दुरुपयोग जैसी प्रवृत्तियाँ अकादमिक जगत की विश्वसनीयता को प्रभावित करती हैं। इसलिए शोध की प्रत्येक प्रक्रिया में नैतिक मूल्यों का पालन करना अत्यंत आवश्यक है। ज्ञान का विस्तार तभी सार्थक है जब वह सत्य और प्रमाण पर आधारित हो।

डिजिटल युग ने अनुसंधान के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं। ऑनलाइन पुस्तकालय, मुक्त अभिगम, डिजिटल अभिलेखागार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, बिग डेटा और मशीन लर्निंग जैसे साधनों ने शोध की प्रक्रिया को अधिक सरल, तीव्र और प्रभावी बनाया है। आज शोधकर्ता विश्व के किसी भी कोने से उपलब्ध ज्ञान–संसाधनों तक आसानी से पहुँच सकते हैं। किंतु इसके साथ ही सूचना की प्रामाणिकता, डेटा सुरक्षा, बौद्धिक संपदा अधिकार तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उत्तरदायी उपयोग जैसे नए प्रश्न भी सामने आए हैं। इसलिए आधुनिक तकनीकों का उपयोग विवेकपूर्ण, नैतिक और उत्तरदायी ढंग से किया जाना चाहिए।

समाज और अनुसंधान का संबंध परस्पर पूरक है। समाज अनुसंधान को समस्याएँ और अनुभव प्रदान करता है, जबकि अनुसंधान समाज को समाधान, नवाचार और विकास की दिशा देता है। जब शोध समाज की वास्तविक आवश्यकताओं से जुड़ता है, तभी वह व्यापक परिवर्तन का माध्यम बनता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, जल संरक्षण, महिला सशक्तिकरण, रोजगार, संस्कृति, भाषा, पर्यावरण तथा ग्रामीण विकास जैसे क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान देश की प्रगति को नई दिशा दे सकता है। इसी कारण आज 'उत्तरदायी अनुसंधान' की अवधारणा विश्वभर में विशेष महत्त्व प्राप्त कर रही है।

शोध परिधि का उद्देश्य केवल शोध–लेखों का प्रकाशन नहीं, बल्कि एक ऐसी अकादमिक संस्कृति का निर्माण करना है जिसमें विचारों की स्वतंत्रता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, भारतीय ज्ञान–परम्परा, सामाजिक संवेदनशीलता और वैश्विक दृष्टि का समन्वय हो। यह शोध पत्रिका विभिन्न विषयों के विद्वानों, शिक्षकों, शोधार्थियों और चिंतकों को एक साझा मंच प्रदान करती है, जहाँ ज्ञान का आदान–प्रदान, नवीन विमर्श तथा रचनात्मक संवाद निरंतर आगे बढ़ सके। हमारा प्रयास है कि प्रत्येक अंक में प्रकाशित शोध–लेख न केवल अकादमिक गुणवत्ता की दृष्टि से उत्कृष्ट हों, बल्कि समाज और राष्ट्र की समकालीन आवश्यकताओं से भी गहराई से जुड़े हों।

वर्तमान अंक में विविध विषयों से संबंधित शोध–लेखों को स्थान दिया गया है। इनमें भारतीय ज्ञान–परम्परा, साहित्य, भाषा, शिक्षा, सामाजिक विज्ञान, संस्कृति, पर्यावरण, समकालीन विमर्श तथा अन्य अनेक विषयों पर गंभीर और मौलिक अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं। हमें विश्वास है कि ये शोध–लेख पाठकों को नए दृष्टिकोण प्रदान करेंगे, शोधार्थियों को नवीन अनुसंधान के लिए प्रेरित करेंगे तथा अकादमिक जगत में सार्थक संवाद को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होंगे।

अंततः यह स्मरणीय है कि ज्ञान तभी सार्थक है जब वह मानवता के हित में प्रयुक्त हो, अनुसंधान तभी सफल है जब वह समाज की समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त करे, और शिक्षा तभी पूर्ण है जब वह उत्तरदायी, संवेदनशील तथा नैतिक नागरिकों का निर्माण करे। आइए, हम सब मिलकर ऐसी शोध–संस्कृति का विकास करें जो सत्य, मौलिकता, नवाचार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक उत्तरदायित्व के मूल्यों पर आधारित हो। यही मार्ग भारत को ज्ञान–समृद्ध, आत्मनिर्भर, नवोन्मेषी और उत्तरदायी राष्ट्र के रूप में स्थापित करेगा।

इसी विश्वास और संकल्प के साथ हम शोध परिधि का यह अंक अपने सम्मानित पाठकों, शोधार्थियों, शिक्षकों और विद्वानों को समर्पित करते हैं। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि यह अंक ज्ञान–विमर्श को नई दिशा प्रदान करेगा तथा अनुसंधान और उत्तरदायी समाज के निर्माण की यात्रा में एक सार्थक योगदान सिद्ध होगा।

–सम्पादक

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 10-13

वाराणसी एवं आसपास के क्षेत्रों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं की स्थिति

अजय कुमार भारती, शोध छात्र,
प्रोफे. चंद्रशेखर सिंह,
समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

मानसिक स्वास्थ्य किसी भी व्यक्ति के समग्र स्वास्थ्य, व्यक्तित्व विकास, सामाजिक समायोजन तथा जीवन की गुणवत्ता का मूल आधार है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक रोगों की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि ऐसी सकारात्मक अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमताओं को पहचानता है, दैनिक जीवन की चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करता है, उत्पादक रूप से कार्य करता है तथा समाज के विकास में सार्थक योगदान देता है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में तीव्र प्रतिस्पर्धा, आर्थिक अस्थिरता, सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन, पारिवारिक संरचनाओं में बदलाव तथा डिजिटल जीवनशैली के बढ़ते प्रभाव ने मानसिक स्वास्थ्य को एक अत्यंत महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्वास्थ्य विषय बना दिया है। भारत सहित विश्व के अनेक देशों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं में निरंतर वृद्धि हो रही है, जिसके कारण इन्हें अब सार्वजनिक स्वास्थ्य की प्रमुख चुनौतियों में सम्मिलित किया जा रहा है।

वाराणसी विश्व की प्राचीनतम जीवित सभ्यताओं में से एक होने के साथ–साथ अपनी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक विरासत के लिए वैश्विक स्तर पर प्रसिद्ध है। यह नगर धार्मिक आस्था, उच्च शिक्षा तथा चिकित्सा सेवाओं का एक महत्वपूर्ण केंद्र है। तथापि आधुनिक जीवन की जटिलताओं और चुनौतियों से यह क्षेत्र भी अछूता नहीं है। विशेषकर कोविड–19 महामारी के उपरांत मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। बढ़ती शैक्षिक प्रतिस्पर्धा, बेरोजगारी, आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक अलगाव, पारिवारिक तनाव तथा जीवनशैली से जुड़ी समस्याओं ने लोगों के मानसिक स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। प्रस्तुत अध्ययन वाराणसी एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं की वर्तमान स्थिति, उनके प्रमुख कारणों, उपचार की प्रभावशीलता तथा मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और पहुंच का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भारत सरकार ने मानसिक स्वास्थ्य के महत्व को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1982 में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (National Mental Health Programme–NMHP) प्रारम्भ किया। इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं को प्राथमिक स्वास्थ्य प्रणाली से जोड़ना, मानसिक रोगों के प्रति जन–जागरूकता बढ़ाना तथा उपचार सुविधाओं को समुदाय स्तर तक सुलभ बनाना था। इसी क्रम में जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (District Mental Health Programme–DMHP) प्रारम्भ किया गया, जिसके माध्यम से मानसिक

स्वास्थ्य सेवाओं को जिला एवं ग्रामीण स्तर तक विस्तारित करने का प्रयास किया गया। हाल के वर्षों में टेली–मानस जैसी अभिनव पहल ने दूरस्थ एवं वंचित क्षेत्रों में मानसिक स्वास्थ्य परामर्श सेवाओं की उपलब्धता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके बावजूद मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच तथा सामाजिक स्वीकृति अभी भी अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँच सकी है।

यह अध्ययन मार्च 2026 से मई 2026 के मध्य चिकित्सा विज्ञान संस्थान (IMS), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के मनोचिकित्सा विभाग में उपचार प्राप्त करने वाले 200 से अधिक रोगियों के नैदानिक अवलोकन, केस रिकॉर्ड, मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन तथा टेली–मानस सेवा के आंकड़ों पर आधारित है। अध्ययन में 5 से 75 वर्ष आयु वर्ग के बच्चे, किशोर, वयस्क एवं वृद्ध शामिल थे। इसका भौगोलिक क्षेत्र वाराणसी नगर के साथ–साथ उसके आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों तक विस्तृत था। अध्ययन का उद्देश्य क्षेत्र में प्रचलित मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं की पहचान करना, उनके प्रमुख कारणों का विश्लेषण करना तथा उपलब्ध उपचार पद्धतियों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना था।

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NMHS, 2015–16) के अनुसार भारत में मानसिक विकारों की व्यापकता लगभग 10.6 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश में भी मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं निरंतर उभरती हुई चुनौती के रूप में सामने आ रही हैं। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि वाराणसी एवं आसपास के क्षेत्रों में अवसाद (Depression) सर्वाधिक प्रचलित मानसिक विकार है। लगभग 30 प्रतिशत रोगियों में अवसाद के लक्षण पाए गए, जिनमें निरंतर उदासी, निराशा, ऊर्जा की कमी, नींद एवं भूख में परिवर्तन तथा आत्महत्या संबंधी विचार प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त चिंता विकार (Anxiety Disorders) लगभग 25 प्रतिशत रोगियों में पाया गया, जिसके प्रमुख लक्षण अत्यधिक चिंता, घबराहट, बेचैनी, ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई तथा भविष्य के प्रति भय थे।

किशोरों में परीक्षा तनाव एक गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्या के रूप में उभरकर सामने आया। अध्ययन में लगभग 20.64 प्रतिशत किशोर परीक्षा एवं शैक्षिक दबाव से प्रभावित पाए गए। साथ ही, 30.75 प्रतिशत किशोरों ने लगातार उदासी का अनुभव होने की बात कही, जो परीक्षा तनाव से भी अधिक गंभीर चिंता का विषय है। कोविड–19 महामारी के पश्चात किशोरों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई। लगभग 43 प्रतिशत विद्यार्थियों ने बार–बार मूड स्विंग की शिकायत की, जबकि 14 प्रतिशत विद्यार्थियों ने अत्यधिक भावुकता तथा 11 प्रतिशत ने निरंतर चिंता का अनुभव व्यक्त किया।

अनिद्रा एवं अन्य नींद संबंधी विकार लगभग 15 प्रतिशत रोगियों में पाए गए। इसके अतिरिक्त ऑब्सेसिव–कम्पल्सिव डिसऑर्डर (OCD) लगभग 8 प्रतिशत रोगियों में देखा गया, जिसमें बार–बार आने वाले अनचाहे विचार एवं दोहरावपूर्ण व्यवहार प्रमुख लक्षण थे। पोस्ट–ट्रॉमेटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर (PTSD) लगभग 5 प्रतिशत मामलों में पाया गया, जबकि अटेंशन डेफिसिट हाइपरएक्टिविटी डिसऑर्डर (ADHD) लगभग 4 प्रतिशत बच्चों एवं किशोरों में देखा गया। नशा संबंधी विकार लगभग 3 प्रतिशत रोगियों में पाए गए, जिनमें तंबाकू, शराब तथा अन्य मादक पदार्थों का सेवन प्रमुख था। बाइपोलर डिसऑर्डर लगभग 2 प्रतिशत तथा स्किजोफ्रेनिया लगभग 1 प्रतिशत रोगियों में पाया गया।

अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के पीछे अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक कारक कार्यरत हैं। आर्थिक अस्थिरता, गरीबी, बेरोजगारी, रोजगार की अनिश्चितता तथा बढ़ती जीवन–यापन लागत लोगों में तनाव एवं चिंता को बढ़ाती है। शैक्षिक प्रतिस्पर्धा तथा करियर संबंधी दबाव युवाओं

एवं किशोरों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के प्रमुख कारणों में शामिल हैं। परिवारों में भावनात्मक संवाद की कमी, अकेलापन, सामाजिक अलगाव तथा कमजोर सामाजिक समर्थन तंत्र भी मानसिक स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। कोविड–19 महामारी ने इन समस्याओं को और अधिक गंभीर बना दिया। लॉकडाउन, सामाजिक दूरी, घरेलू तनाव, आर्थिक संकट तथा भविष्य की अनिश्चितता ने लोगों के मानसिक स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ा है।

जीवनशैली संबंधी कारकों का भी मानसिक स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया। अपर्याप्त नींद, असंतुलित आहार, शारीरिक गतिविधियों की कमी तथा नशे की बढ़ती प्रवृत्ति मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं को बढ़ावा देती है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की सीमित उपलब्धता, मानसिक स्वास्थ्य के प्रति कम जागरूकता तथा सामाजिक कलंक के कारण अनेक लोग समय पर उपचार प्राप्त नहीं कर पाते। आज भी अनेक परिवार मानसिक रोगों को व्यक्तिगत कमजोरी अथवा सामाजिक शर्म का विषय मानते हैं, जिसके कारण उपचार लेने में अनावश्यक विलंब होता है और रोग की गंभीरता बढ़ जाती है।

IMS-BHU के मनोचिकित्सा विभाग में मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के उपचार हेतु औषधीय एवं मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की उपचार पद्धतियों का समन्वित उपयोग किया जाता है। अवसाद, चिंता तथा OCD के उपचार में SSRI एवं SNRI वर्ग की औषधियां प्रभावी पाई गई हैं तथा लगभग 70 से 80 प्रतिशत रोगियों में लक्षणों में उल्लेखनीय सुधार देखा गया। गंभीर चिंता एवं घबराहट के मामलों में एंटी–एंग्जायटी औषधियों का उपयोग किया जाता है, जबकि स्किजोफ्रेनिया एवं बाइपोलर डिसऑर्डर के उपचार में एंटीसाइकोटिक दवाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अनिद्रा के उपचार में स्लीप एड्स तथा नशा मुक्ति के लिए विशेष औषधीय हस्तक्षेपों का उपयोग किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक उपचारों में संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा (Cognitive Behavioral Therapy–CBT) सर्वाधिक प्रभावी पद्धति के रूप में उभरकर सामने आई। यह पद्धति व्यक्ति के नकारात्मक विचारों एवं व्यवहारों की पहचान कर उन्हें अधिक यथार्थवादी एवं सकारात्मक दिशा में परिवर्तित करने में सहायता करती है। अध्ययन में पाया गया कि अवसाद, चिंता तथा OCD के मामलों में CBT के माध्यम से 75 से 85 प्रतिशत रोगियों में उल्लेखनीय सुधार हुआ। OCD के उपचार में एक्सपोजर एंड रिस्पॉन्स प्रिवेंशन (Exposure and Response Prevention–ERP) विशेष रूप से प्रभावी सिद्ध हुई, जिसके परिणामस्वरूप लगभग 80 से 90 प्रतिशत रोगियों में बाध्यकारी व्यवहारों एवं अनचाहे विचारों में कमी देखी गई। इसके अतिरिक्त डाइलेक्टिकल बिहेवियर थेरेपी (DBT), रैशनल इमोटिव बिहेवियर थेरेपी (REBT), माइंडफुलनेस–बेस्ड कॉग्निटिव थेरेपी (MBCT), कपल थेरेपी तथा सेक्स थेरेपी भी विभिन्न मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के उपचार में प्रभावी पाई गईं। विशेष रूप से CBT एवं ERP का संयुक्त उपयोग OCD रोगियों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ।

मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता एवं पहुंच के संदर्भ में अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि उपचार अंतराल (Treatment Gap) अभी भी 70 से 92 प्रतिशत के मध्य बना हुआ है। इसका अर्थ है कि बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकता है, किन्तु वे उपचार तक नहीं पहुँच पाते। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषज्ञ सेवाओं का अभाव, आर्थिक बाधाएं, सामाजिक कलंक तथा जागरूकता की कमी इस समस्या के प्रमुख कारण हैं। IMS-BHU द्वारा मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रमों, छात्र हेल्पलाइन, प्रशिक्षण कार्यशालाओं तथा टेली–मानस सेवाओं के माध्यम से इस अंतर को कम करने के निरंतर प्रयास किए जा रहे

हैं। टेली–मानस सेवाओं के माध्यम से हजारों लोगों को मानसिक स्वास्थ्य परामर्श उपलब्ध कराया गया है, जिनमें लगभग 24.5 प्रतिशत लोगों ने उदासी को अपनी प्रमुख समस्या बताया।

अध्ययन के निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि वाराणसी एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं तेजी से बढ़ रही हैं तथा विशेष रूप से किशोर एवं युवा वर्ग इनसे अधिक प्रभावित हो रहा है। अवसाद, चिंता, परीक्षा तनाव, अनिद्रा तथा OCD जैसी समस्याएं सर्वाधिक प्रचलित हैं। कोविड–19 महामारी के बाद इन चुनौतियों की गंभीरता और अधिक बढ़ी है। यद्यपि आधुनिक औषधीय उपचार एवं मनोचिकित्सीय पद्धतियां, विशेषकर CBT एवं ERP, अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो रही हैं, तथापि उपचार की पहुंच एवं सामाजिक स्वीकार्यता में अभी भी पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है।

मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार हेतु विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा ग्रामीण समुदायों में व्यापक जन–जागरूकता कार्यक्रम संचालित किए जाने चाहिए। टेली–मानस एवं जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों का और अधिक विस्तार किया जाना आवश्यक है। आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए निःशुल्क अथवा रियायती मानसिक स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए। किशोरों एवं युवाओं के लिए विशेष परामर्श केंद्र स्थापित किए जाने चाहिए तथा परिवारों को मानसिक स्वास्थ्य देखभाल की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाया जाना चाहिए।

अंततः यह कहा जा सकता है कि मानसिक स्वास्थ्य केवल चिकित्सा विज्ञान का विषय नहीं है, बल्कि सामाजिक विकास, मानवीय कल्याण एवं राष्ट्रीय प्रगति का आधार है। वाराणसी एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में बढ़ती मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि सरकार, शैक्षणिक संस्थानों, स्वास्थ्य सेवाओं, परिवारों तथा समाज को मिलकर इस क्षेत्र में व्यापक, समन्वित एवं दीर्घकालिक प्रयास करने होंगे। तभी एक स्वस्थ, जागरूक, उत्पादक एवं मानसिक रूप से सशक्त समाज का निर्माण संभव हो सकेगा।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 14-17

साइबर अपराध और बच्चों की सुरक्षा पर शिक्षा

अनामिका केण्डिया
पी.एच.डी. शोधार्थी (राजनीति विज्ञान)
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय महू, इंदौर (म.प्र.)

सारांश :

वर्तमान समय में इंटरनेट एवं डिजिटल प्रौद्योगिकी बच्चों के जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुके हैं। ऑनलाइन शिक्षा, सोशल मीडिया, गेमिंग तथा डिजिटल संचार के बढ़ते उपयोग ने बच्चों के लिए ज्ञान एवं विकास के अनेक अवसर प्रदान किए हैं, किन्तु इसके साथ साइबर अपराधों का खतरा भी बढ़ा है। साइबर बुलिंग, ऑनलाइन धोखाधड़ी, पहचान की चोरी, अश्लील सामग्री का प्रसार तथा ऑनलाइन शोषण जैसी समस्याएँ बच्चों की सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती बन गई हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य साइबर अपराधों की प्रकृति, बच्चों पर उनके प्रभाव तथा साइबर सुरक्षा शिक्षा की आवश्यकता का अध्ययन करना है। यह अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है, जिनका संकलन राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, यूनिसेफ, भारत सरकार की रिपोर्टों तथा विभिन्न शोध–पत्रों से किया गया है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि बच्चों में साइबर सुरक्षा संबंधी जागरूकता का अभाव है तथा विद्यालय स्तर पर साइबर सुरक्षा शिक्षा को अनिवार्य बनाए जाने की आवश्यकता है। शोध–पत्र में बच्चों की ऑनलाइन सुरक्षा हेतु विभिन्न नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

मूल शब्द : साइबर अपराध, साइबर सुरक्षा, बाल सुरक्षा, डिजिटल शिक्षा, साइबर बुलिंग।

1. प्रस्तावना :

21वीं सदी को डिजिटल क्रांति का युग कहा जाता है। इंटरनेट ने शिक्षा, संचार और मनोरंजन के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं। भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 90 करोड़ से अधिक हो चुकी है, जिनमें बच्चों और किशोरों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही है। कोविड–19 महामारी के पश्चात ऑनलाइन शिक्षा के विस्तार ने बच्चों की डिजिटल उपस्थिति को और अधिक बढ़ा दिया। डिजिटल तकनीक जहाँ बच्चों के लिए अवसर प्रदान करती है, वहीं साइबर अपराधों के रूप में अनेक खतरे भी उत्पन्न करती है। वर्तमान में साइबर बुलिंग, ऑनलाइन यौन शोषण, फर्जी पहचान, डेटा चोरी तथा गेमिंग धोखाधड़ी जैसी घटनाएँ बच्चों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में साइबर सुरक्षा शिक्षा बच्चों के समग्र विकास और सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक हो गई है।

2. अध्ययन के उद्देश्य :

- बच्चों से संबंधित प्रमुख साइबर अपराधों का अध्ययन करना।
- बच्चों पर साइबर अपराधों के प्रभावों का विश्लेषण करना।

- साइबर सुरक्षा शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व का मूल्यांकन करना।
- बच्चों की ऑनलाइन सुरक्षा हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

3. शोध पद्धति –

प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है। अध्ययन हेतु राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, यूनिसेफ, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, शोध पत्रिकाओं तथा प्रकाशित पुस्तकों से आँकड़े एवं तथ्य संकलित किए गए हैं। संकलित आँकड़ों का विश्लेषण वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक पद्धति से किया गया है।

4. साइबर अपराध की अवधारणा –

साइबर अपराध ऐसे अपराध हैं जो कंप्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट अथवा अन्य डिजिटल माध्यमों का उपयोग करके किए जाते हैं। इन अपराधों का उद्देश्य किसी व्यक्ति की गोपनीय जानकारी प्राप्त करना, आर्थिक नुकसान पहुँचाना या मानसिक एवं सामाजिक हानि पहुँचाना होता है।

5. बच्चों से संबंधित प्रमुख साइबर अपराध –

- **साइबर बुलिंग** – सोशल मीडिया, मैसेजिंग ऐप एवं ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से बच्चों को धमकाना, अपमानित करना या मानसिक रूप से प्रताड़ित करना साइबर बुलिंग कहलाता है।
- **ऑनलाइन ग्रूमिंग** – अपराधियों द्वारा बच्चों से ऑनलाइन मित्रता स्थापित कर उनका विश्वास जीतना तथा बाद में उनका शोषण करना ऑनलाइन ग्रूमिंग कहलाता है।
- **पहचान की चोरी** – बच्चों की व्यक्तिगत जानकारी, फोटो अथवा डिजिटल पहचान का दुरुपयोग करना पहचान चोरी की श्रेणी में आता है।
- **अश्लील एवं अनुचित सामग्री** – इंटरनेट पर उपलब्ध अनुपयुक्त सामग्री बच्चों के मानसिक एवं नैतिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।
- **ऑनलाइन गेमिंग धोखाधड़ी** – ऑनलाइन गेमिंग प्लेटफॉर्म के माध्यम से बच्चों को आर्थिक धोखाधड़ी एवं साइबर जालसाजी का शिकार बनाया जाता है।

6. भारत में साइबर अपराधों की स्थिति :

तालिका 1 : भारत में दर्ज साइबर अपराध

वर्ष	साइबर अपराधों की संख्या
2020	50,035
2021	52,974
2022	65,893
2023	74,468
2024	80,000+

स्रोत : NCRB रिपोर्ट एवं सरकारी प्रकाशन।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि साइबर अपराधों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। डिजिटल उपकरणों के बढ़ते उपयोग के कारण बच्चों की संवेदनशीलता भी बढ़ी है।

बच्चों के समक्ष प्रमुख साइबर जोखिम :

तालिका 2 : बच्चों को प्रभावित करने वाले साइबर जोखिम

साइबर जोखिम	प्रतिशत
साइबर बुलिंग	32%
अनुचित सामग्री का संपर्क	28%
पहचान चोरी	21%
ऑनलाइन गेमिंग धोखाधड़ी	11%
अन्य	8%

स्रोत : UNICEF (2023), Child Online Protection Report; Internet Matters Survey (2023); CyberPeace Foundation Report (2024) तथा विभिन्न शोध अध्ययनों के संकलित विश्लेषण पर आधारित।

तालिका से स्पष्ट होता है कि साइबर बुलिंग बच्चों के लिए सबसे बड़ी डिजिटल चुनौती बन चुकी है।

7. बच्चों पर साइबर अपराधों का प्रभाव –

साइबर अपराध बच्चों के मानसिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। साइबर बुलिंग, ऑनलाइन धोखाधड़ी तथा अनुचित सामग्री के संपर्क से बच्चों में तनाव, अवसाद, भय एवं असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो सकती है। इसके कारण उनका आत्मविश्वास कम होता है और वे सामाजिक अलगाव का शिकार हो सकते हैं। साथ ही पारिवारिक संबंधों में तनाव बढ़ता है तथा सामाजिक सहभागिता घटती है। इन परिस्थितियों का प्रतिकूल प्रभाव उनकी पढ़ाई पर पड़ता है, जिससे एकाग्रता में कमी, अध्ययन के प्रति अरुचि तथा शैक्षणिक प्रदर्शन में गिरावट देखी जाती है।

8. बच्चों की सुरक्षा में साइबर शिक्षा की भूमिका –

साइबर सुरक्षा शिक्षा बच्चों को डिजिटल दुनिया में सुरक्षित और जिम्मेदार व्यवहार करने के लिए आवश्यक ज्ञान एवं कौशल प्रदान करती है। यह शिक्षा बच्चों को संभावित साइबर खतरों की पहचान करने, मजबूत एवं सुरक्षित पासवर्ड बनाने, तथा अपनी व्यक्तिगत जानकारी को सुरक्षित रखने के प्रति जागरूक बनाती है। साथ ही, साइबर शिक्षा बच्चों में डिजिटल नैतिकता, जिम्मेदार नागरिकता एवं ऑनलाइन आचरण के प्रति समझ विकसित करती है। इसके अतिरिक्त, यह उन्हें साइबर अपराध की स्थिति में शिकायत दर्ज कराने तथा सहायता प्राप्त करने की प्रक्रिया से भी परिचित कराती है, जिससे उनकी ऑनलाइन सुरक्षा और आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। साइबर शिक्षा बच्चों में डिजिटल नैतिकता एवं जिम्मेदारी का विकास करती है।

साइबर अपराध की स्थिति में शिकायत एवं सहायता प्राप्त करने की प्रक्रिया बताई जाती है।

- भारत सरकार की पहल ओर डिजिटल इंडिया अभियान
- भारतीय साइबर अपराध समन्वय केंद्र (I4C)
- राष्ट्रीय साइबर अपराध रिपोर्टिंग पोर्टल एवं साइबर जागरूकता अभियान, स्कूलों में डिजिटल सुरक्षा कार्यक्रम।

सुझाव :

- विद्यालयी पाठ्यक्रम में साइबर सुरक्षा शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाए साथ ही बच्चों के लिए आयु–उपयुक्त डिजिटल सामग्री उपलब्ध कराई जाए।
- अभिभावकों को साइबर सुरक्षा प्रशिक्षण प्रदान किया जाए।

- सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर बाल सुरक्षा मानकों का कड़ाई से पालन कराया जाए।
- साइबर अपराधों के विरुद्ध कठोर कानूनी कार्रवाई सुनिश्चित की जाए।

निष्कर्ष :

डिजिटल युग में बच्चों की सुरक्षा केवल तकनीकी उपायों से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए साइबर सुरक्षा शिक्षा को व्यापक रूप से लागू करना आवश्यक है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बच्चों के विरुद्ध साइबर अपराधों में निरंतर वृद्धि हो रही है तथा साइबर बुलिंग सबसे प्रमुख समस्या के रूप में उभर रही है। साइबर सुरक्षा शिक्षा बच्चों को डिजिटल जोखिमों से बचाने के साथ–साथ उन्हें जिम्मेदार डिजिटल नागरिक बनाने में भी सहायक सिद्ध होती है। अतः सरकार, विद्यालय, अभिभावक एवं समाज को मिलकर बच्चों के लिए सुरक्षित डिजिटल वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

संदर्भ सूची :

- वर्मा, कृष्णा (2022). डिजिटल इंडिया कार्यक्रम और साइबर सुरक्षा जागरूकता का मूल्यांकन। नटराज रिसर्च जर्नल, 5(2), 88–96।
- तिवारी, एम. (2024). ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता की स्थिति एवं चुनौतियाँ। स्वदेशी रिसर्च फाउंडेशन जर्नल, 11(3), 112–120।
- मिश्रा, ए. (2023). भारत में बढ़ते साइबर अपराध : कारण, प्रभाव एवं निवारण। शोध सरिता, 10(38), 75–83।
- यादव, एस. (2023). डिजिटल भुगतान प्रणाली और साइबर सुरक्षा जोखिम। नटराज प्रकाशन शोध पत्रिका, 7(1), 92–100।
- दुबे, वी. (2024). ग्रामीण भारत में इंटरनेट उपयोग और साइबर जागरूकता। स्वदेशी रिसर्च जर्नल, 12(1), 55–64।
- जोशी, के. एवं शर्मा, एल. (2023). साइबर अपराध नियंत्रण में पुलिस प्रशासन की भूमिका। शोध दिशा, 17(2), 104–112।
- पटेल, ज्योति (2022). डिजिटल युग में सूचना सुरक्षा की आवश्यकता। विद्यावार्ता, 4(15), 38–46।
- सक्सेना, एन. (2024). सीमावर्ती क्षेत्रों में डिजिटल समावेशन एवं साइबर सुरक्षा की चुनौतियाँ। नटराज रिसर्च जर्नल, 8(1), 121–130।
- CERT-In. (2023). Annual Cyber Security Report. Government of India.
- Digital Nepal Framework. (2019). Ministry of Communication and Information Technology, Government of Nepal.
- Kumar, V., & Singh, R. (2022). Cyber Security Challenges in South Asia. Journal of Information Security Studies, 15(2), 45–58.
- Martin, A. (2006). Digital Literacy and the Digital Society. Journal of Digital Education, 3(2), 151–176.
- National Crime Records Bureau (NCRB). (2023). Crime in India Report. Ministry of Home Affairs, Government of India.
- Sharma, R. (2021). Digital Transformation in Nepal. South Asian Studies Review, 12(1), 88–102.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 18-20

लोकतंत्र एवं दलित उत्थान के संदर्भ में डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर के विचार : एक अध्ययन

अंजना ठाकुर, शोधार्थी
दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केन्द्र,
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला।

शोध सार :–

डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर भारतीय लोकतंत्र के प्रमुख निर्माताओं तथा सामाजिक न्याय के महान प्रवक्ता थे। उन्होंने लोकतंत्र को केवल राजनीतिक व्यवस्था न मानकर सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मूल्यों पर आधारित जीवन–पद्धति के रूप में देखा। उनके विचारों का मूल उद्देश्य भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत असमानता, अस्पृश्यता और सामाजिक अन्याय का उन्मूलन करना था। उन्होंने दलितों, शोषितों तथा वंचित वर्गों के उत्थान के लिए शिक्षा, संगठन और संघर्ष को आवश्यक साधन माना। भारतीय संविधान के निर्माण में उनकी भूमिका ने लोकतांत्रिक मूल्यों को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। प्रस्तुत शोध–पत्र में लोकतंत्र एवं दलित उत्थान के संदर्भ में डॉ. अंबेडकर के विचारों का विश्लेषण किया गया है तथा वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता को स्पष्ट किया गया है।

मुख्य शब्द :– लोकतंत्र, दलित उत्थान, सामाजिक न्याय, समानता, संविधान, अंबेडकर।

प्रस्तावना :–

भारतीय समाज सदियों से जातिगत विभाजन और सामाजिक असमानताओं से प्रभावित रहा है। विशेष रूप से दलित समुदाय को सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्तर पर अनेक प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ा। ऐसे समय में डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ने सामाजिक परिवर्तन के अग्रदूत के रूप में कार्य किया। उन्होंने दलितों को आत्मसम्मान, शिक्षा और अधिकारों के प्रति जागरूक किया तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के माध्यम से समानता पर आधारित समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ. अंबेडकर का मानना था कि लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर प्राप्त हों। यदि सामाजिक असमानता बनी रहती है तो राजनीतिक लोकतंत्र भी स्थायी नहीं रह सकता। इस दृष्टि से उनके विचार लोकतंत्र और दलित उत्थान के बीच गहरे संबंध को स्थापित करते हैं।

डॉ. अंबेडकर की लोकतंत्र संबंधी अवधारणा :–

डॉ. अंबेडकर ने लोकतंत्र को केवल शासन की प्रणाली नहीं माना। उनके अनुसार लोकतंत्र एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का समन्वय होता है। उन्होंने कहा कि लोकतंत्र की सफलता सामाजिक न्याय पर निर्भर करती है। उनके विचार में लोकतंत्र के चार प्रमुख आधार हैं–सामाजिक

समानता, राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक न्याय, मानवीय गरिमा डॉ. अंबेडकर का विश्वास था कि यदि समाज में जातिगत भेदभाव विद्यमान रहेगा तो लोकतांत्रिक संस्थाएँ प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर पाएँगी। सामाजिक न्याय की अवधारणा :– सामाजिक न्याय डॉ. अंबेडकर के चिंतन का केंद्रीय तत्व था। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को जन्म के आधार पर नहीं बल्कि योग्यता और मानवता के आधार पर सम्मान मिलना चाहिए। उन्होंने वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा को सामाजिक असमानता का मुख्य कारण बताया।

उन्होंने कहा कि किसी भी सभ्य समाज की पहचान इस बात से होती है कि वह अपने कमजोर वर्गों के साथ कैसा व्यवहार करता है। इसलिए सामाजिक न्याय केवल कानूनी प्रावधानों से नहीं बल्कि सामाजिक चेतना और नैतिक मूल्यों से स्थापित किया जा सकता है।

दलित उत्थान के लिए शिक्षा का महत्व :–

डॉ. अंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का सबसे प्रभावशाली माध्यम माना। उनका प्रसिद्ध नारा 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' आज भी सामाजिक जागरण का आधार है। उनका विचार था कि शिक्षा व्यक्ति में आत्मविश्वास, जागरूकता और स्वतंत्र चिंतन विकसित करती है। दलित समाज को लंबे समय तक शिक्षा से वंचित रखा गया था, इसलिए उन्होंने विद्यालयों, छात्रावासों तथा शैक्षिक संस्थानों की स्थापना के राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष :– डॉ. अंबेडकर ने दलितों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को अत्यंत महत्वपूर्ण माना। उनका मानना था कि राजनीतिक शक्ति के बिना सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है। उन्होंने पृथक निर्वाचक मंडल की मांग की तथा दलितों के लिए राजनीतिक आरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। यद्यपि पूना पैक्ट के बाद पृथक निर्वाचक मंडल का विचार लागू नहीं हो सका। व्यवस्था के माध्यम से दलितों को राजनीतिक भागीदारी का अवसर प्राप्त हुआ।

भारतीय संविधान और दलित अधिकार :–

भारतीय संविधान के निर्माण में डॉ. अंबेडकर की भूमिका ऐतिहासिक है। संविधान में उन्होंने समानता. स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को विशेष स्थान दिया। संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 और 17 सामाजिक समानता तथा अस्पृश्यता उन्मूलन की दिशा में महत्वपूर्ण प्रावधान हैं। अनुच्छेद 17 ने अस्पृश्यता को कानूनी अपराध घोषित किया। इसके अतिरिक्त शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में आरक्षण व्यवस्था ने दलित समुदाय को मुख्यधारा से जोड़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सामाजिक आंदोलनों में योगदान :–

डॉ. अंबेडकर ने केवल विचार प्रस्तुत नहीं किए बल्कि उन्हें व्यवहार में भी उतारा। महाड़ सत्याग्रह 1927 के माध्यम से उन्होंने सार्वजनिक जलस्रोतों पर दलितों के अधिकार की मांग की। नासिक के कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन ने धार्मिक समानता के प्रश्न को राष्ट्रीय स्तर पर उठाया। इन आंदोलनों ने दलित समाज में आत्मसम्मान और अधिकार चेतना का विकास किया तथा सामाजिक परिवर्तन की दिशा में नई ऊर्जा प्रदान की।

आर्थिक लोकतंत्र का दृष्टिकोण :–

अंबेडकर का मानना था कि राजनीतिक लोकतंत्र तब तक अधूरा है जब तक आर्थिक समानता स्थापित नहीं होती। उन्होंने भूमि सुधार, श्रमिक अधिकार और राज्य की कल्याणकारी भूमिका का समर्थन किया। उनके अनुसार गरीबी और आर्थिक शोषण भी सामाजिक अन्याय के महत्वपूर्ण कारण हैं। इसलिए उन्होंने कमजोर वर्गों के आर्थिक सशक्तिकरण पर विशेष बल दिया।

महिला सशक्तिकरण और लोकतंत्र –

डॉ. अंबेडकर महिलाओं की समानता के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने हिंदू कोड बिल के माध्यम से महिलाओं की संपत्ति विवाह और उत्तराधिकार संबंधी अधिकार दिलाने का प्रयास किया। उनका मानना था कि किसी समाज की प्रगति का मूल्यांकन महिलाओं की स्थिति से किया जा सकता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता :–

आज भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र है, फिर भी सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और आर्थिक विषमताएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं। ऐसे समय में अंबेडकर के विचार अत्यंत प्रासंगिक है। डिजिटल युग में शिक्षा, सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और समावेशी विकास की नीतियाँ उनके विचारों को नई दिशा प्रदान करती हैं। सामाजिक समरसता और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए उनके सिद्धांत आज भी मार्गदर्शक हैं।

निष्कर्ष :–

डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर ने भारतीय लोकतंत्र को सामाजिक न्याय और समानता का मजबूत आधार प्रदान किया। उन्होंने दलित उत्थान को केवल एक सामाजिक आंदोलन न मानकर लोकतांत्रिक राष्ट्र निर्माण का आवश्यक तत्व माना। शिक्षा, राजनीतिक भागीदारी, संवैधानिक अधिकार और सामाजिक चेतना के माध्यम से उन्होंने वंचित वर्गों को सम्मानजनक जीवन जीने का मार्ग दिखाया। वर्तमान भारत में लोकतंत्र को अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण बनाने के लिए उनके विचारों का अनुसरण आवश्यक है। उनका चिंतन सामाजिक परिवर्तन, मानव गरिमा और लोकतांत्रिक मूल्यों की अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ सूची –

1. अंबेडकर, भीमराव रामजी. (2020). जाति का विनाश, नई दिल्ली : सम्यक प्रकाशन। पृ. 35–721
2. अंबेडकर, भीमराव रामजी. (2019). शूद्र कौन थे? नई दिल्ली : गौतम बुक सेंटर। पृ. 21–981
3. अंबेडकर, भीमराव रामजी. (2021). डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर : संपूर्ण वाङ्गय (खंड 1–17). नई दिल्लीः सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय। पृ. 145–210
4. कीर, धनंजय. (2018). डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर जीवन और मिशन, नई दिल्ली : पॉपुलर प्रकाशन। पृ. 275–340
5. जाटव, डी. आर. (2016) डॉ अंबेडकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व. जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स। पृ. 112–180

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 21-26

कैंसर से पीड़ित रोगियों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं एवं उनका रोगियों के उपचार पर प्रभाव का अध्ययन

अन्तुला कुमारी
शोध छात्रा, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

सारांश :

कैंसर, एक गंभीर और प्रायः दीर्घकालिक रोग के रूप में, न केवल जैविक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है, बल्कि व्यक्ति के सामाजिक ताने–बाने और आर्थिक संरचना को भी गहराई से प्रभावित करता है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में, जहां स्वास्थ्य सेवाओं की असमान पहुँच, संसाधनों की कमी और व्यापक सामाजिक आर्थिक विषमताएँ विद्यमान हैं, वहां कैंसर रोगियों की स्थिति और भी अधिक जटिल हो जाती है। यह रोग केवल चिकित्सीय समस्या न होकर, एक बहुआयामी सामाजिक समस्या बन चुका है, जो रोगी के मानसिक स्वास्थ्य, पारिवारिक संबंधों, कार्यक्षमता, सामाजिक पहचान, और वित्तीय स्थिति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। इस शोध पत्र में बताया गया है कि किस प्रकार सामाजिक अलगाव, कलंक, पारिवारिक उपेक्षा, और आर्थिक दायित्व कैंसर रोगियों की उपचार प्रक्रिया को बाधित करते हैं। आर्थिक समस्याओं में उपचार की ऊँची लागत, आय में कमी, बेरोजगारी, चिकित्सा बीमा की अनुपलब्धता, और कर्ज का बढ़ता बोझ प्रमुख रूप से शामिल हैं। वहीं, सामाजिक स्तर पर रोगी अक्सर सामाजिक उपेक्षा, अकेलेपन, सामाजिक बहिष्कार तथा आत्म–सम्मान की हानि जैसी समस्याओं से जूझते हैं, जो उनके संपूर्ण उपचार और जीवन–गुणवत्ता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। यह शोध पत्र इस बात पर जोर देता है कि केवल चिकित्सीय हस्तक्षेप पर्याप्त नहीं है, बल्कि एक समग्र दृष्टिकोण अपनाते हुए सामाजिक सहयोग, मानसिक स्वास्थ्य सहायता, और आर्थिक संरक्षण की रणनीतियाँ तैयार करना अत्यंत आवश्यक है।

मुख्य शब्द : कैंसर, सामाजिक समस्याएं, आर्थिक प्रभाव, उपचार बाधाएँ, स्वास्थ्य सेवाएँ।

1. परिचय :

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में कैंसर एक ऐसी जटिल और चुनौतीपूर्ण बीमारी बन चुकी है, जो न केवल मानव स्वास्थ्य प्रणाली के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न कर रही है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी व्यापक प्रभाव डाल रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, कैंसर वैश्विक मृत्यु के प्रमुख कारणों में से एक है, और वर्ष 2020 में ही लगभग 1 करोड़ लोगों की मृत्यु कैंसर के कारण हुई। भारत में कैंसर रोगियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है और हर वर्ष लगभग 14 लाख नए मामले दर्ज किए जा रहे हैं। यह तथ्य दर्शाता है कि यह केवल एक जैविक रोग नहीं, बल्कि एक गहरी सामाजिक–आर्थिक समस्या भी है। भारत जैसे विकासशील देश में, जहां एक बड़ा वर्ग गरीबी, बेरोजगारी, और स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित उपलब्धता से जूझ

रहा है, वहां कैंसर का निदान होना एक परिवार के लिए सामाजिक और आर्थिक संकट का कारण बन जाता है। इलाज की उच्च लागत, दीर्घकालिक चिकित्सा प्रक्रिया, रोगी की कार्य क्षमता में कमी, और सामाजिक कलंक जैसे कारक न केवल रोगी के जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं, बल्कि उसके परिवार को भी मानसिक, सामाजिक और आर्थिक तनाव के घेरे में ला खड़ा करते हैं। विशेष रूप से निम्न आय वर्ग के रोगी अक्सर उपचार बीच में छोड़ने को विवश हो जाते हैं क्योंकि वे दवाइयों, कीमोथेरेपी, रेडिएशन और यात्रा–व्यय जैसी आवश्यकताओं को वहन नहीं कर पाते। सामाजिक दृष्टि से कैंसर रोगियों को अनेक स्तरों पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है, चाहे वह पारिवारिक उपेक्षा हो, कार्यस्थल पर असंवेदनशीलता, या सामाजिक बहिष्कार। यह सामाजिक अस्वीकार्यता रोगी की मानसिक स्थिति को और अधिक जटिल बना देती है, जिससे उपचार की प्रभावशीलता प्रभावित होती है। मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव, जैसे अवसाद, चिंता, और आत्मग्लानि, रोगी की रोग प्रतिरोधक क्षमता और जीवनीय इच्छा को भी क्षीण कर सकते हैं।

इस शोध पत्र का उद्देश्य कैंसर से पीड़ित व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का गहन अध्ययन करना है तथा यह समझना है कि ये समस्याएँ उनके उपचार की प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र पूर्ववर्ती शोधों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि कैसे कैंसर ग्रस्त रोगियों की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएं, रोगियों के उपचार पर प्रभाव डालती हैं।

2. साहित्य समीक्षा :

विगत कुछ वर्षों में, विशेषकर वर्ष 2020 से 2025 के मध्य, कैंसर के सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों पर केंद्रित अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि यह रोग अब केवल जैविक समस्या न रहकर सामाजिक–संरचनात्मक और आर्थिक नीतिगत चुनौती बन चुका है। नवीनतम साहित्य इस दिशा में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है कि कैसे कैंसर रोगियों को स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच, आर्थिक संसाधनों की कमी, और सामाजिक कलंक जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, विशेषकर भारत जैसे विकासशील देशों में।

मेंटल हेल्थ एंड कैंसर स्टडी 2024 द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकाला गया कि कैंसर रोगियों में 60 प्रतिशत से अधिक अवसाद, चिंता या PTSD (Post-Traumatic Stress Disorder) जैसी मानसिक समस्याओं से ग्रस्त होते हैं, विशेषकर तब जब उन्हें सामाजिक सहयोग और मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता नहीं मिलती।

हार्वर्ड ग्लोबल इक्विटी इनिशिएटिव 2021–2024 द्वारा किए गए अनुसंधान में कैंसर को 'Developmental Injustice' अर्थात विकास से उपजी असमानता के रूप में देखा गया है। इस अध्ययन में भारत में सामाजिक स्थिति, जातीयता, लिंग और आर्थिक वर्ग के आधार पर कैंसर रोगियों को मिलने वाली सेवाओं की विषमता पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया।

विश्व स्वास्थ्य संगठन WHO, ग्लोबल कैंसर ऑब्जर्वेटरी, 2023 के अनुसार, भारत में वर्ष 2022 में कैंसर के लगभग 14.6 लाख नए मामले दर्ज किए गए और अनुमान है कि यह संख्या वर्ष 2025 तक 18 लाख से अधिक हो जाएगी। इसी रिपोर्ट में यह भी स्पष्ट किया गया है कि निम्न एवं मध्यम आय वर्ग के लोग उपचार की लागत का लगभग 75% खर्च स्वयं वहन करते हैं, जिससे उन्हें आर्थिक रूप से भारी संकट का सामना करना पड़ता

है।

ऐम्स एंड आईसीएमआर इंडियन काउंसलिंग ऑफ मेडिकल रिसर्च 2023 के संयुक्त अध्ययन में बताया गया है कि भारत में कैंसर के उपचार पर एक औसत रोगी को प्रतिवर्ष लगभग रू. 1.25 लाख से 3.5 लाख तक का खर्च उठाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, मरीजों की लगभग 40% संख्या रोजगार खो बैठती है, जिससे उनके परिवार की आय में अचानक गिरावट आती है।

आईसीएमआर–एनसीडीआईआर बेंगलुरु, 'भारत : कैंसर के आँकड़े' 2023 की रिपोर्ट यह दर्शाती है कि ग्रामीण भारत में कैंसर रोगियों को न केवल इलाज की दूरी और खर्च की समस्या है, बल्कि सामाजिक स्वीकृति की भी कमी है। सामाजिक उपेक्षा, विवाह संबंधित समस्याएँ, तथा कार्यस्थल पर भेदभाव जैसी समस्याएँ प्रमुख रूप से सामने आई हैं।

लैंसेट ऑन्कोलॉजी, 2022 की एक व्यापक रिपोर्ट में यह रेखांकित किया गया कि भारत समेत दक्षिण एशियाई देशों में कैंसर से पीड़ित मरीजों को उपचार के दौरान 'कैटास्ट्रोफिक हेल्थ एक्सपेंडिचर' यानी विनाशकारी स्वास्थ्य खर्च का सामना करना पड़ता है, जिससे वे कर्ज में डूब जाते हैं या अपनी संपत्ति बेचने पर मजबूर हो जाते हैं।

टाटा मेमोरियल सेंटर, मुंबई, 2022 द्वारा किए गए अध्ययन में यह तथ्य सामने आया कि कोरोना महामारी के बाद कैंसर रोगियों की स्थिति और भी अधिक जटिल हो गई है, क्योंकि महामारी के दौरान इलाज में देरी, नियमित जांच में बाधा और आर्थिक मंदी के प्रभावों ने उनके सामाजिक–आर्थिक संकट को और बढ़ा दिया।

इन नवीनतम अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि कैंसर एक बहुआयामी संकट है, जो व्यक्ति के आर्थिक, सामाजिक, मानसिक और पारिवारिक जीवन को गहराई से प्रभावित करता है। विशेष रूप से भारत में, जहां चिकित्सा सेवाएँ अभी भी बड़े पैमाने पर निजी क्षेत्र पर निर्भर हैं, यहां समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को विशेष रूप से व्यापक और बहुस्तरीय समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

वर्तमान शोध इन नए आंकड़ों और निष्कर्षों के आधार पर कैंसर रोगियों की सामाजिक एवं आर्थिक चुनौतियों को एक समग्र दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है और उपचार प्रक्रिया पर उनके प्रभाव को उजागर करने का प्रयास करता हैं।

3. अध्ययन का उद्देश्य :

- कैंसर से पीड़ित रोगियों की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करना।
- सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का रोगियों के उपचार पर प्रभाव का अध्ययन करना।

4. चर्चा एवं विश्लेषण :

कैंसर रोगियों के सामने आने वाली सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ एक–दूसरे से गहराई से जुड़ी हुई हैं और इनका प्रभाव उपचार की समग्र प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। भारत जैसे देश में, जहां सार्वजनिक स्वास्थ्य ढाँचा अभी भी सुदृढ़ नहीं है और चिकित्सा खर्च का एक बड़ा हिस्सा निजी क्षेत्र में वहन करना पड़ता है, कैंसर जैसे दीर्घकालिक रोग के उपचार की प्रक्रिया समाज के वंचित और निम्न आय वर्ग के लिए विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण हो जाती है।

4.1 आर्थिक समस्याएँ और उनका उपचार पर प्रभाव :

भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICMR) और टाटा मेमोरियल सेंटर 2023 की रिपोर्ट के अनुसार,

एक औसत कैंसर रोगी को प्रति वर्ष रू. 1.25 लाख से अधिक खर्च वहन करना पड़ता है। यह राशि अधिकांश निम्न या मध्यम आय वर्ग के लिए अत्यधिक है, विशेषतः तब जब यह खर्च स्वास्थ्य बीमा द्वारा कवर नहीं किया जाता। विश्व स्वास्थ्य संगठन और लैंसेट ऑन्कोलॉजी कमीशन (2022) के अनुसार, भारत में लगभग 54% कैंसर रोगी विनाशकारी स्वास्थ्य व्यय (Catastrophic Health Expenditure) से पीड़ित हैं, जो उन्हें गरीबी रेखा के नीचे धकेल देता है। उपचार के आर्थिक बोझ के कारण अनेक रोगी कीमोथेरेपी, रेडिएशन या आवश्यक दवाओं का सेवन अधूरा छोड़ देते हैं। AIIMS-ICMR रिपोर्ट (2023) के अनुसार, लगभग 38% रोगी इलाज बीच में छोड़ने को मजबूर होते हैं, जिसके पीछे प्रमुख कारण इलाज का खर्च और आय का अभाव होता है। इसके अतिरिक्त, लंबे उपचार काल के दौरान रोगी या परिजनों की रोजगार छूट जाने की संभावना भी आर्थिक तनाव को और बढ़ा देती है।

4.2 सामाजिक समस्याएँ और उनका उपचार पर प्रभाव :

कैंसर केवल एक जैविक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक रूप से भी कलंकित रोग माना जाता है, विशेषकर ग्रामीण समुदायों में। हैरो एवं अन्य 2021 और शर्मा एवं बनर्जी, 2020 द्वारा किए गए अध्ययन दर्शाते हैं कि कैंसर पीड़ितों को सामाजिक दूरी, पारिवारिक उपेक्षा, वैवाहिक समस्याओं और कार्यस्थल पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है। भारत में यह सामाजिक कलंक इतना प्रबल है कि रोगी स्वयं अपने रोग को छिपाते हैं, जिससे समय पर निदान और उपचार में देरी होती है। महिलाओं को विशेष रूप से सामाजिक उपेक्षा, तलाक, या शादी से वंचित होने जैसी स्थितियों से गुजरना पड़ता है। यह सामाजिक अस्वीकार्यता मानसिक स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव डालती है।

4.3 समग्र उपचार पर प्रभाव :

मेंटल हेल्थ एंड कैंसर स्टडी ग्रुप, 2024 के अनुसार, भारत में कैंसर पीड़ितों में 60% से अधिक रोगी अवसाद, चिंता या PTSD से प्रभावित होते हैं। यह मानसिक अस्वस्थता उनकी उपचार की स्वीकार्यता, इलाज के प्रति अनुशासन, और जीवन के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित करती है। मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित उपलब्धता स्थिति को और जटिल बनाती है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जहां साइको–ऑन्कोलॉजी जैसी सेवाएँ लगभग नगण्य हैं।

4.4 समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता :

सभी विश्लेषण इस ओर संकेत करते हैं कि कैंसर से लड़ना केवल चिकित्सीय चुनौती नहीं है, बल्कि इसके लिए एक बहुस्तरीय, समग्र एवं समन्वित हस्तक्षेप की आवश्यकता है। सामाजिक सहायता, वित्तीय सुरक्षा, मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ, और कार्यस्थल पर समर्थन जैसी रणनीतियाँ यदि एकीकृत रूप में लागू की जाएँ, तो उपचार की प्रक्रिया अधिक प्रभावी और रोगी केंद्रित बन सकती है।

5. निष्कर्ष एवं सुझाव :

5.1 निष्कर्ष : कैंसर, एक गंभीर गैर–संक्रामक रोग होने के साथ–साथ, एक गहरा सामाजिक और आर्थिक संकट भी बन चुका है, विशेषकर भारत जैसे विकासशील देशों में। यह रोग न केवल व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, बल्कि उसके मानसिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन पर बहुआयामी दुष्प्रभाव डालता है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कैंसर रोगियों को उपचार के दौरान अत्यधिक वित्तीय बोझ, बेरोजगारी, स्वास्थ्य बीमा की अनुपलब्धता और पारिवारिक आय में गिरावट जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

आर्थिक असुरक्षा के कारण अनेक रोगी उपचार को बीच में छोड़ने को विवश होते हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से, कैंसर आज भी एक कलंकित बीमारी मानी जाती है, जिससे रोगियों को सामाजिक दूरी, उपेक्षा, तथा वैवाहिक और कार्यस्थल पर भेदभाव जैसी स्थितियों से गुजरना पड़ता है। विशेष रूप से महिलाओं और ग्रामीण क्षेत्रों के रोगियों की स्थिति और भी अधिक संवेदनशील है। रोगी अवसाद, चिंता, और आत्मग्लानि जैसी स्थितियों का अनुभव करते हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव उनके उपचार की गुणवत्ता और सफलता दर पर पड़ता है। यह समग्र परिदृश्य इंगित करता है कि केवल जैविक उपचार पर्याप्त नहीं हैय रोगियों की सामाजिक और आर्थिक भलाई सुनिश्चित किए बिना प्रभावी कैंसर प्रबंधन संभव नहीं है।

5.2 सुझाव :

वित्तीय सहायता प्रणाली का सुदृढ़ीकरण : सरकार को कैंसर रोगियों के लिए विशेष वित्तीय सहायता योजनाएँ लागू करनी चाहिए, जिनमें मुफ्त या सब्सिडी युक्त दवाइयाँ, जांच और उपचार की व्यवस्था हो। प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PMJAY) जैसे कार्यक्रमों को कैंसर विशेष सहायता में विस्तार देना आवश्यक है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य वीमा का विस्तार : अधिक से अधिक लोगों को सार्वभौमिक स्वास्थ्य बीमा योजनाओं के अंतर्गत लाना आवश्यक है, ताकि निजी इलाज का बोझ कम हो और कैटास्ट्रोफिक हेल्थ एक्सपेंडिचर से बचा जा सके।

मानसिक स्वास्थ्य सहायता की व्यवस्था : प्रत्येक कैंसर उपचार केंद्र में मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ, काउंसलिंग सेवाएँ और साइकोऑन्कोलॉजिकल सपोर्ट सिस्टम की अनिवार्यता सुनिश्चित की जानी चाहिए।

सामाजिक जागरूकता अभियान : ग्रामीण और शहरी दोनों स्तरों पर कैंसर के प्रति सामाजिक कलंक को कम करने हेतु जनसंचार और शिक्षा अभियानों की आवश्यकता है। इसके माध्यम से रोगियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है।

कार्यस्थल नीति सुधार : सरकार और निजी क्षेत्र को कैंसर पीड़ित कर्मचारियों के लिए लचीली कार्य व्यवस्था, चिकित्सा अवकाश, पुनः नियुक्ति की सुविधा जैसे प्रावधान सुनिश्चित करने चाहिए, ताकि वे सामाजिक सुरक्षा और आत्मसम्मान बनाए रख सकें।

एनजीओ एवं समुदाय आधारित भागीदारी : सामुदायिक संगठनों और गैर–सरकारी संस्थाओं को रोगी सहायता समूह, हेल्पलाइन, भोजन/दवाओं की आपूर्ति आदि क्षेत्रों में सरकार के साथ भागीदारी करनी चाहिए।

संदर्भ सूची :

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2025) वैश्विक कैंसर रिपोर्ट– नवीनतम संस्करण।
2. इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च (ICMR), राष्ट्रीय रोग सूचना केंद्र (NICPR, (2023), भारत में कैंसर के रुझान और भविष्यवाणियाँ 2020 से 2025 तक, नई दिल्ली : आईसीएमआर.
3. सिंगला, ए. शर्मा, आर., – घोष, एस. (2023) भारत में कैंसर उपचार की लागत का विश्लेषण, इंडियन जर्नल ऑफ हेल्प इकोनॉमिक्स 8(1), 21–341
4. इंडियन कैंसर सोसायटी (2020) "भारत में कैंसर सर्वाइवर नेटवर्क का सामाजिक प्रभाव"।
5. कैंसर केयर इंडिया (2022) भारत में कैंसर रोगियों के सामाजिक आर्थिक प्रभाव का अध्ययन, नई दिल्ली।

6. आनंद, के. (2022) "भारत में स्वास्थ्य बीमा की पहुंच और कैंसर पीड़ितों पर उसका प्रभाव" पब्लिक हेल्थ रिव्यू इंडिया, 5(2), 59–681
7. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2023) कैंसर : मुख्य तथ्य, विश्व स्वास्थ्य संगठन, 23 जनवरी, 2026 https://www.who.int/news&room/fact&sheets/detail/cancer.
8. चिरवा, ई., एवं मुतलुरी, ए. (2023). 'साइको–सोशल एंड फाइनेंशियल प्रॉब्लम्स ऑफ कैंसर पेशेंट्स : एन एम्पिरिकल स्टडी।' इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिव्यूज एंड रिसर्च इन सोशल साइंसेज, 11(3), 202–207. https://doi.org/10.52711/2454-2687.2023.00023?
9. त्रिवेदी, पी., – जोशी, एस. (2021) "कैंसर रोगियों में आत्म–ग्लानि और सामाजिक अलगाव" मनोविज्ञान अध्ययन पत्रिका, 47(2), 60–751
10. मिश्रा, डी. (2021) "भारत में ग्रामीण महिलाओं के कैंसर से जुड़ी सामाजिक समस्याएँ" सोशल वेलफेयर जर्नल, 66(4), 45–531
11. रामचंद्रन, वी. (2020) "भारत में कैंसर रोगियों के लिए सरकारी सहायता योजनाओं का प्रभाव" जर्नल ऑफ सोशल पॉलिसी एंड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 14(2), 98–1101
12. अग्रवाल, एस. (2020) "शहरी गरीबों में कैंसर का आर्थिक प्रभाव" इंडियन जर्नल ऑफ अर्बन स्टडीज, 12(3), 33–491
13. गुप्ता, एस., – मेहता, आर. (2020) "कैंसर रोगियों की मानसिक स्थिति का आकलन" इंडियन जर्नल ऑफ साइकियाट्री, 62(3), 211–2181
14. इंटरनेशनल एजेंसी फॉर रिसर्च ऑन कैंसर (2020), ग्लोबल कैंसर ऑब्जर्वेटरी : कैंसर टुडे (GLOBOCAN 2020), विश्व स्वास्थ्य संगठन, https://gco.iarc.fr/today

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 27-30

किन्नर एवं मानवतावादी दृष्टिकोण

डॉ. बबिता सिंह
सहायक प्राध्यापक (दर्शनशास्त्र विभाग)
माता जीजाबाई शास. (स्वशासी) स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय,इंदौर (म.प्र.)

'यदि होता किन्नर नरेश मैं राजमहल में रहता,
सोने का सिंहासन होता सिर पर मुकुट चमकता।'[1]

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की इन पंक्तियों में एक ऐसे किन्नर देश की कल्पना की गयी हैं जिसमें सब कुछ बहुत ही सुंदर था और कवि स्वयं को वहाँ के राजा के रूप में देख रहा था। किन्तु किन्नर पर जब यह रचना लिखी गयी तब शायद किन्नर का अर्थ आज के किन्नर जैसा नहीं रहा होगा अन्यथा कवि कभी किन्नर नरेश की कल्पना नहीं करता। आज किन्नरों का कोई देश नहीं हैं लेकिन किन्नर देश में अवश्य हैं।

किन्नर, किंनर इन दो शब्दों से मिलकर बना हैं जिससे स्पष्ट होता हैं की उनकी योनि और आकृति पूर्णतः मनुष्य की नहीं हैं। संस्कृत में किन्नर के लिए किं पुरुष शब्द प्रयुक्त हुआ हैं जिसके अनुसार किन्नर या किं पुरुष देवताओं की एक योनि थी जो हिमालय के क्षेत्रों में निवास करती थी, जिनके प्रधान केंद्र हिमवत और हिमकूट थे। वे भगवान शिव की आराधना करते थे। विराट पुरुष इंद्र और हरि उनके पूज्य थे। उनके सैकड़ों गण थे और चित्ररथ उनका प्रधान अधिपति था। उन्हें देवताओं का गायक और भक्त समझा जाता था और यक्षों, गन्धर्वों की भांति गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था।

किन्नर का शाब्दिक अर्थ होता हैं – स्वर्ग के गायक अथवा गाने बजाने का पेशा करने वाली जाती। हमारे धर्मग्रन्थों रामचरितमानस व महाभारत में किन्नरों का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ हैं जैसे :– 'गावहिं किन्नर सुरवधु नाचहिं चढ़ी विमान',[2] 'अमरनाग किन्नर दिसिपाला',[3] 'नाग किन्नर दुःख टरें',[4] 'देव दनुज किंनर नर श्रेनी',[5] इत्यादि से स्पष्ट होता हैं की त्रेतायुग में किन्नर जाति वर्तमान थी। वाल्मीकि रामायण में भी उल्लेख हैं की 14 वर्ष के वनवास हेतु अयोध्या छोड़ते समय प्रभु श्रीराम ने अपने साथ आ रही समस्त प्रजा जिसमें किन्नर भी सम्मिलित थे, को वापस लौट जाने का आदेश दिया किन्तु किन्नरों को कुछ भी नहीं कहा। अपने लिए कोई आदेश न पाने कारण किन्नरों ने प्रभु के वापस आने तक वहीं उनकी प्रतीक्षा की। वनवास समाप्ति के पश्चात अयोध्या आने पर प्रभु ने उन्हें वही प्रतीक्षारत पाया। उनकी निःस्वार्थ और निश्चल भक्ति से प्रसन्न होकर उन्होने (प्रभु श्री राम) किन्नरों को वरदान दिया की उनका आशीर्वाद सदैव फलित होगा। तभी से किन्नर जन्म एवं विवाह जैसे शुभ व मांगलिक अवसर पर लोगों को अपना आशीर्वाद प्रदान करते हैं। मांगलिक अवसरों पर ही इनकी उपस्थिति के कारण इन्हें मंगलमुखी भी कहते हैं।

रामायण की भांति महाभारत में भी किन्नरों का उल्लेख दृष्टिगोचर होता हैं। महाभारत में शिखंडी एक किन्नर चरित्र हैं जो पांचाल नरेश द्रुपद का पुत्र और पांचाली व धृष्टद्युम्न का भाई था। शिखंडी ही महाभारत

के युद्ध में पितामह भीष्म की मृत्यु का कारण बना। महाभारत के 'विराट पर्व' में भी उल्लेख हैं कि अपने अज्ञातवास की अवधि में अर्जुन ने 'बृहन्नला' किन्नर का रूप धरण कर राजकन्या उत्तरा को संगीत व नृत्य की शिक्षा दी और अंतःपुर में निवास किया था।

धार्मिक ग्रन्थों के साथ हि साथ ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता हैं की अनेक हिन्दू और मुस्लिम राजाओं ने अंतःपुर में रानियों की सुरक्षा हेतु किन्नरों को नियुक्त किया था। इतना ही नहीं सल्तनत कालीन व मुगलकालीन शासकों के दरबार में किन्नरों को महत्वपूर्ण पद प्राप्त थे। जैसे – अलाउद्दीन खिलजी के समय में मालिक काफूर (जो कि एक किन्नर था) वरिष्ठ सैनिक अधिकारी था। जहाँगीर के शासनकाल में ख्वाजासरा हिलाल व इफ्तिखार खान प्रशासनिक पदों पर आसीन थे। संस्कृत नाटकों एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी कहा गया हैं कि राजा को हिजड़ो (किन्नर) पर हाथ नहीं उठाना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट हैं कि किन्नरों का इतिहास वर्षों पुराना हैं।

किन्नरों की उत्पत्ति व उद्भव के संदर्भ में अनेक अंतर्कथाएँ प्रचलित हैं। पौराणिक दृष्टि से किन्नरों की उत्पत्ति के संबंध में दो मत प्रचलित थे– प्रथम यह कि अरिष्ठा एवं कश्यप उनके आदि जनक थे और दूसरा यह कि किन्नरों की उत्पत्ति ब्रह्मा की छाया अथवा उनके पैर के अंगूठे से हुयी हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार मनुष्य की कुंडली में बुध, शनि, शुक्र और केतु के अशुभ योगों के कारण किन्नर का जन्म होता हैं।

किन्नरों की उत्पत्ति के संदर्भ में वैज्ञानिक तथ्य यह हैं कि किन्नर या ट्रांसजेंडर Chromosomal Disorder अथवा Genetic Disorder का परिणाम हैं। ध्यातव्य हैं कि सामान्य मनुष्यों में Chromosome की संख्या 46 होती होती हैं जिनमें से 44 Chromosome, Autosome Chromosomes कहलाते हैं और दो (2) Chromosome XY या XX ये SEX Chromosomes कहलाते हैं जो नर (XY) और नारी (XX) का निर्धारण करते हैं। इस प्रकार ये दो Chromosome, Sex Determiners हैं किन्तु Chromosomal Disorder के कारण जब XY व XX के स्थान पर ट्रिपल एक्स (XXX) या YY या OX Chromosome हो जाते हैं तो वह मनुष्य ट्रांसजेंडर अथवा किन्नर कहलाता हैं। स्पष्ट हैं कि प्रत्येक मनुष्य में नर और नारी दोनों निवास करते हैं। उनका कम या ज्यादा का अनुपात ही कुछ को पूर्ण नर व कुछ को पूर्ण नारी बनाता हैं किन्तु यही अनुपात जब असंतुलित हो जाता हैं तो किन्नर का जन्म होता हैं।

इसलिए किन्नर नर व नारी का मिश्रित रूप हैं। इनमें दोनों के गुण एक साथ पायें जाते हैं इनके Sex Organs (जननांग) कभी विकसित नहीं होते हैं अर्थात अस्पष्ट होते हैं। इसलिए इनमें सृजनात्मक क्षमता नहीं होती। अस्पष्ट लैंगिक पहचान वाला यह वर्ग संसार के सभी समाजों में कहीं ज्यादा तो कहीं कम के अनुपात में शोषण व अवहेलना का शिकार बनता आया हैं। प्रकृति के क्रूर मजाक के कारण किन्नरों का पूरा जीवन सभी पारिवारिक व सामाजिक सुखों से वंचित रह जाता हैं।

सामान्यतः विश्व के लगभग सभी समाजों में स्त्री व पुरुष दो लिंगो को ही प्रमुखता दी गयी हैं। इन दो विपरीत लिंगो को ही सृष्टि का आधार स्तम्भ माना जाता हैं। किन्तु तृतीय लिंगी के रूप में पहचान प्राप्त करने वाले किन्नर किसी भी समाज के लिए नया नहीं हैं। कुछ लोग उन्हें कुदरत का अन्याय बताते हैं तो कुछ लोग इसे अभिशाप मानते हैं।

इसलिए जिन किन्नरों का पौराणिक काल में गौरवपूर्ण स्थान था उन्हें वर्तमान में हेय व घृणित दृष्टि से देखा जाता हैं। वे समाज से पृथक मलिन बस्तियों में रहते हुये अभिशप्त जीवन जीने को विवश हैं। उनके दामन

में सुख की अपेक्षा असीम वेदनाएं हैं। उन्हें समाज द्वारा परित्यक्त मानकर उनका उपहास किया जाता हैं, जबकि अपनी इस स्थिति के लिए वे किसी भी प्रकार से जिम्मेदार नहीं हैं।

वे भी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं, अधिकारों और सामान्य मनुष्य की भांति जीवन यापन की आकांक्षा करते हैं। अस्पष्ट लैंगिकता के आधार पर उनके साथ होने वाला सामाजिक भेदभाव उनमें हीनभावना को जन्म देता हैं जिससे उनका मनोबल टूटता हैं और वे लोगों के प्रति उग्र व्यवहार करने के लिए विवश हो जाते हैं। यद्यपि वे शारीरिक रूप से अक्षम हैं, उनमें सृजनात्मक क्षमता नहीं हैं तथापि उनमें भी प्रेम, दया, करुणा, धैर्य, ममता आदि मानवीय गुण पाये जाते हैं। उनमें किसी के प्रति रोष, द्वेष, ईर्ष्या आदि भावनाएं नहीं होती हैं। इसलिए वे दूसरों की खुशियों में सम्मिलित होकर अपना आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

यद्यपि आज मानव समाज अपने चरम विकास के युग में प्रवेश करके स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रहा हैं किन्तु समाज का यह वर्ग अभी भी विकास की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाया हैं। इसका मूल कारण जन सामान्य की इस वर्ग के प्रति हेय, मानसिक नकारात्मक दृष्टिकोण हैं। जबकि इस ब्रह्मांड में प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय हैं और प्रकृति का एक अभिन्न हिस्सा हैं। उन्हें आंकना और उन लोगों के साथ भेदभाव करना गलत होगा जो लोग शारीरिक बनावट के आधार पर अलग हो सकते हैं क्योंकि सभी मनुष्य एक ही तेज पुंज की रश्मियां हैं। सभी एक ही आत्मभाव में आबद्ध हैं। इसी को चरितार्थ करते हुये जयशंकर प्रसाद ने कहा हैं कि –

"अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा?,
यह एकांत स्वार्थ भीषण हैं अपना नाश करेगा।
औरों को हंसतें देखों मनु, हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।"[6]

क्योंकि "सब प्राणी एक समान हैं। सब उसी एक परब्रह्म के अंश हैं, सब उसी एक परमात्मा को धारण करते हैं और वह परमात्मा अनन्य हैं। जो उसकी सेवा का इच्छुक हैं वह मनुष्य की प्रथमतः दीनतम, तुच्छतम, हीनतम मनुष्य की सेवा करें .....। इसलिए सीमाएँ तोड़ गिराओ। अस्पृश्यता को, अमानवीयता को प्रयुत्तर दो.....बाँहें फैलाकर बंधुओं को गुहार करों।[7]

निष्कर्षतः :

आवश्यकता हैं कि मनुष्य, मनुष्य (किन्नर) से परस्पर संबद्धता स्थापित करने के लिए सामाजिक मान्यताओं और लोगों की नकारात्मक मानसिक दृष्टिकोण को परिवर्तित कर अनुराग की भावना को विकसित करें और उनके प्रति घृणा व विद्वेष की वृत्ति का त्याग करें क्योंकि सभी एक ही तत्व से जन्में हैं, एक ही रक्त से अनुप्राणित हैं। इसलिए तुलसीदास ने उन्हें (किन्नरों को) प्रणाम करते हुये कहा हैं कि –

बंदऊ किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व।[8]

संदर्भ ग्रंथ :

1. From kavitakosh.org
2. रा० च० मा० उत्तरकांड 109 ख, गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशन।
3. रा० च० मा० अयोध्या कांड 133, 1, गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशन।

4. रा० च० मा० सुंदर कांड 34, 5 छन्द 1–2, गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशन।
5. रा० च० मा०, बालकांड, 44, 2 गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशन।
6. विष्णु प्रसाद व्यास, आत्म निर्माण, साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर, द्वितीय संस्करण पृ० 126 से उद्धृत
7. रोमां० रोला, विवेकानंद, लोक भारती प्रकाशन इला०, संस्करण (2014), पृ० 121
8. रा०च०मा० बालकांड, 7 (घ) गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशन।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 31-34

SPIRITUAL PARENTING FOR THE PRESENT GENERATION

"Guiding Students, Teachers and Global Society Towards Peace, Creativity, Wisdom and Compassion."

Baburam K.C.
Principal
Mahan Siddhartha High School, Kathmandu, Nepal.



ABSTRACT :

"Education that is disconnected from spiritual values is incomplete and knowledge without moral values can become a challenge for society."

The contemporary world is witnessing unprecedented technological advancement, digital connectivity and material progress. Despite these developments, societies across the globe are facing growing challenges related to mental stress, emotional instability, family disintegration, moral decline and loss of human values. Children and adolescents are increasingly exposed to technological distractions whileb ecoming detached from emotional intimacy, cultural roots and self-awareness. In this context, the concept of spiritual parenting has emerged as an important approach for nurturing balanced, responsible and compassionate human beings. Spiritual parenting does not promote religious dogmatism; rather, it emphasizes love, self-discipline, moral responsibility, self-reflection, tolerance and awareness of life's deeper purpose. This paper examines the significance of spiritual parenting in the present generation and highlights the complementary roles of parents, teachers, schools and society in character formation. It argues that education should extend beyond academic achievement and career preparation to include emotional intelligence, ethical consciousness and spiritual awareness. The study further explores Nepal's potential contribution as a spiritually rich nation rooted in Buddhist and Vedic traditions. The paper concludes that value-based education and spiritually conscious parenting can guide future generations toward peace, wisdom, creativity, responsible citizenship and global harmony.

Keywords :

- Spiritual Parenting,

- Value-Based Education,
- Character Formation,
- Moral Development,
- Human Values

INTRODUCTION :

"True education is not merely the accumulation of knowledge; it is the awakening of consciousness that guides life in the right direction."

The twenty-first century has brought remarkable advancements in science, technology, artificial intelligence and communication. Human beings today enjoy unprecedented access to information and material comfort. However, alongside these achievements, societies are experiencing increasing levels of stress, anxiety, loneliness, intolerance and ethical confusion. Children and young people, despite having greater educational opportunities than ever before, often struggle with emotional instability, lack of purpose and weakened social relationships.

The growing gap between external achievement and internal fulfillment highlights the urgent need for a more holistic educational and parenting approach. Spiritual parenting offers such a framework by nurturing not only intellectual development but also emotional maturity, moral awareness and spiritual consciousness. It seeks to cultivate compassionate, responsible and self-aware individuals capable of contributing positively to society.

CONCEPT OF SPIRITUAL PARENTING :

Spiritual parenting refers to a conscious approach to raising children based on universal human values rather than religious dogma. It encourages self-reflection, discipline, gratitude, compassion, patience, honesty and responsibility. The primary objective is not merely to prepare children for professional success but to help them become ethically grounded and emotionally balanced human beings.

In contemporary society, many parents focus extensively on academic excellence, prestigious institutions and financial security. While these goals are important, they alone cannot guarantee happiness or fulfillment. A child may achieve material success but still struggle with emotional emptiness, lack of empathy and moral confusion if character development is neglected.

ROLE OF EDUCATION IN CHARACTER FORMATION :

Education should not be limited to preparing individuals for employment. Its broader purpose is to provide meaning, direction and wisdom for life. Genuine education helps learners distinguish between right and wrong, develop resilience during adversity and become responsible members of society.

Unfortunately, many modern educational systems have become examination-oriented, grade-

centered and excessively competitive. Such systems often prioritize intellectual achievement while giving insufficient attention to emotional and moral growth. As a result, students may excel academically yet remain vulnerable to stress, addiction, anxiety and identity crises.

Value-based education can address these concerns by integrating ethical learning, emotional intelligence, mindfulness and self-awareness into the educational process.

THE ROLE OF TEACHERS AND SCHOOLS :

Teachers play a critical role in shaping the attitudes and values of students. Beyond transmitting subject knowledge, educators serve as mentors, guides and role models. Students often learn more from the behavior and character of teachers than from formal lessons.

Schools can support spiritual development by incorporating meditation, silence, reflective practices and value-oriented discussions into daily routines. Community service projects, collaborative learning and life-oriented activities encourage students to apply ethical principles in practical situations.

A spiritually supportive school environment promotes discipline through understanding rather than fear. It nurtures dignity, respect and emotional security, helping students develop both confidence and compassion.

THE CENTRAL ROLE OF PARENTS :

Parents remain the first and most influential teachers in a child's life. Children learn primarily through observation rather than instruction. Consequently, parental behavior significantly shapes children's values, attitudes and emotional patterns.

One of the major challenges of modern parenting is the shortage of meaningful family interaction. Economic pressures and professional commitments often limit the time parents spend with their children. While material needs may be fulfilled, emotional connections frequently weaken.

Spiritual parenting emphasizes quality communication, active listening, empathy and shared experiences. Children require not only financial support but also emotional presence, moral guidance and unconditional love. Even small amounts of meaningful family interaction can profoundly influence a child's development.

SPIRITUAL EDUCATION FOR GLOBAL PEACE :

The modern world continues to face conflict, intolerance, violence and social division. These challenges cannot be solved solely through economic growth or technological innovation. Sustainable peace requires transformation at the level of human consciousness.

Spiritual education encourages compassion, coexistence, self-control and respect for diversity. The ancient philosophy of Vasudhaiva Kutumbakam-"The World is One Family"-offers a timeless vision of global harmony and collective responsibility.

When children are raised with human values and spiritual awareness, they are more likely to become responsible citizens, ethical leaders and promoters of peace. Such education strengthens emotional resilience, creativity, cooperation and social responsibility.

NEPAL'S OPPORTUNITY IN VALUE-BASED EDUCATION :

Nepal possesses a unique spiritual and cultural heritage. As the birthplace of Lord Buddha and a land enriched by Vedic wisdom, yoga, meditation and tolerance, Nepal has significant potential to contribute to global educational transformation.

By integrating modern scientific knowledge with spiritual awareness and ethical education, Nepal can present an innovative educational model for the world. Such a model would balance intellectual achievement with character formation and human development.

CONCLUSION :

Spiritual parenting has become an urgent necessity in the modern age. While technological advancement and academic achievement remain important, they are insufficient without moral values, emotional intelligence and spiritual consciousness. Parents, teachers, schools and society must work collaboratively to nurture children who are not only successful but also compassionate, responsible and self-aware.

Education gains its highest purpose when it contributes to self-realization, character formation and service to humanity. Through spiritual parenting and value-based education, future generations can develop wisdom, creativity, resilience and a commitment to peace. Such individuals will become not merely professionals, but enlightened human beings capable of building a harmonious, sustainable and compassionate world.

REFERENCES :

- Bhagavad Gita. (Various translated editions).
- Easwaran, E. (2007). The Bhagavad Gita. Nilgiri Press.
- Goleman, D. (1995). Emotional Intelligence. Bantam Books.
- Rahula, W. (1974). What the Buddha Taught. Grove Press.
- UNESCO. (2021). Education for Sustainable Development: A Roadmap. UNESCO Publishing.
- Upanishads. (Various translated editions).

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 35-39

प्राथमिक शिक्षा में भाषा और संस्कृति का समन्वय

बैजु मुण्डा
शोधार्थी, विश्वविद्यालय मुण्डारी विभाग, रांची विश्वविद्यालय रांची।

किसी सुनने, बोल सकने वाले बालक या बालिका जो कि बाल्यावस्था में हो, अपनी मातृभाषा के संपर्क में रहता है। मातृभाषा जनजातीय, क्षेत्रीय या तो जिस परिवेश में वह रहता है। वहां पर मुख्य रूप से व्यवहार में लाई जाने वाली बोली कोई भी भाषा में हो सकती है। अपने दैनिक क्रियाकलाओं जैसे – दोस्तों संग खेलना, अपने माता–पिता, दादा दादी से बातों बातों में वह अपनी मातृभाषा या उस परिवेश में उपयोग होने वाले भाषा को समझने में सक्षम होता है। उस अवस्था में उसे मातृभाषा से इतर अन्य भाषा को समझने में कठिनाई ही नहीं बल्कि समझने में भी असमर्थ रहता है। वह उन बातों को ज्यादा अच्छे से समझ सकता है, बजाए दूसरे अन्य भाषाओं के। जैसे– एक संथाल बहुल क्षेत्र में संथाली, मुण्डा बहुल क्षेत्र में मुण्डारी और गोंड बहुल क्षेत्र में गोंडी ज्यादा अच्छे तरीके से बोलने समझने के साथ–साथ पढ़े और लिखे जाएंगे।

प्राथमिक शिक्षा में भाषा और संस्कृति का संबंध अटूट और गहरा है। प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा बच्चों के सीखने, समझने और सोचने की क्षमता के विकास और सांस्कृतिक मूल्यों का मुख्य आधार होती है। इसके माध्यम से बच्चे अपनी माता–पिता, दादा–दादी और समाज के लोक व्यवहार और समाज में घटित होने वाले घटनाओं के मूल्य को सहजता से सीखते है। साथ ही अपनी सीखने की प्रवृत्ति को अधिक प्रभावी और आनंदमय बनाते हैं।

प्राथमिक शिक्षा में बच्चों की मातृभाषा उसके मानसिक विकास की नींव होती है, क्योंकि इस दौरान वह अपने सारे क्रियाकलाप अपने उस हम उम्र प्रवेश में सीखता है। जहां उस विशेष भाषा का वातावरण है।

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होने पर बच्चे घर और उसके आसपास के वातावरण और स्कूल के वातावरण के बीच आसानी से सामंजस्य बैठा पाते हैं। उन्हें असहज महसूस नहीं होती। इससे बच्चे निर्भर और बिना असहज महसूस किए तार्किक, काल्पनिक और नई चीजें सीखने की क्षमता का लगातार विकास होता है।

भाषा संवाद का साधन ही नहीं बल्कि यह संस्कृति को इस पीढ़ी से उस पीढ़ी तक ले जाने का एक मुख्य माध्यम भी है। भाषा और संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह है। भाषा केवल शब्दों या व्याकरण का समूह नहीं होकर उस समाज के पारंपरिक, रीति रिवाज, इतिहास और जीवन मूल्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने का काम करती है। वहीं संस्कृति भाषा को प्रासंगिक बनाती है। संस्कृति के बिना भाषा बेजान या केवल एक आंतरिक उपकरण बनकर ही रह जाएगी।

आखिर एक व्यक्ति अपनी शिक्षा कैसे प्राप्त करता है? बच्चे घर से अपनी संस्कृति और भाषा के साथ स्कूल में कदम रखते हैं। यदि बच्चों का स्कूल के भाषा और संस्कृति उसके घर के माहौल जैसा होगा तो वह खेलते कूदते चीजों को सीख सकते हैं। जिस तरीके से बच्चे अपने घरों में मातृभाषा में सीखते हैं। उसी प्रकार

उन्हें स्कूल में भी सीखने को मिलता है। तो उसकी सोचने समझने और तर्क करने की क्षमता का भी तेजी से विकास होता है। जब विद्यालय में बच्चों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सम्मान मिलता है तो वह अपनी पढ़ाई में मन लगाकर सीखता है और उसका आत्मविश्वास भी बढ़ता है। प्राथमिक स्तर से बच्चों को उनकी अपनी भाषा में पढ़ाकर और उनके संस्कृति जोड़कर हम उस पीढ़ी को उनके जड़ों से दूर होने से बचा सकते हैं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार से बिना मिट्टी के एक पेड़ का वजूद नहीं होता।

प्राथमिक शिक्षा के रूप में शिक्षक भाषा और संस्कृति में तालमेल कई रणनीतियों का प्रयोग करके बेहतर बना सकते हैं। पाठ्यपुस्तक की कविताओं के साथ–साथ स्थानीय (जनजाति या क्षेत्रीय) भाषा के लोकगीतों और कहानियों को शामिल करके भाषा शिक्षण का हिस्सा बना सकता है। अगर कोई शिक्षक झारखंड के खूंटी जैसे मुण्डारी क्षेत्रों में पढ़ा रहे हैं तो उसे हिंदी के किसी कविता को पढ़ाने से पहले उस क्षेत्र के प्रमुख पर्वों जैसे करम, बा (सरहुल) से संबंधित कोई गीत सुनाने के लिए कह सकता है। जिससे कि बच्चे खुशी–खुशी उस भाषा के बारीकियों को सीखेंगे। उस क्षेत्र के प्रमुख पर्व त्योहारों का उपयोग भाषाई कौशल (बोलने और लिखने) को बढ़ाने के लिए कर सकता है। जैसे – बा (सरहुल), करम, मागे पर्व त्यौहार के बाद शिक्षक बच्चों को कह सकता है – आपने पर्व त्यौहार किस प्रकार मनाया मनाया? इस पर कुछ वाक्य अपनी भाषा में बोलिए और लिखिए। इससे बच्चे उनके सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को अपनी भाषा में अपने अनुसार ढालना सीखते हैं। बच्चों के उनके पारंपरिक और स्थानीय रूप से खेले जाने वाले खेलों को भाषा शिक्षण की गतिविधि के रूप में बदला जा सकता है। स्थानीय खेल जैसे तिल गुटी (गिट्टी चाल), चुरला (छुर), आदि खेल खेलते समय बच्चों को नए शब्दों और गिनती बोलने के लिए प्रेरित कर सकते हैं और खेल खत्म होने के बाद उनके अनुभव को कक्षा में बताने के लिए कहना चाहिए। पारंपरिक सांस्कृतिक वाद्य यंत्रों और वस्तुओं के रूप में हल, डुलकि (ढोलक) घड़ा आदि बनाकर कक्षा की दीवारों को आकर्षक बनाया जा सकता है। उन चीजों के नाम मातृभाषा, हिंदी और अंग्रेजी में उसके नाम को लिखकर दर्शाया जा सकता है। जिससे बच्चे आकर्षित हो सकें। शिक्षक इन कार्यों को ब्लैकबोर्ड या चार्ट डायग्राम से भी कर सकता है। जिस तरह से दादा–दादी या नाना–नानी पहले गांव घरों में कहानी सुनाया करते थे। उसी प्रकार से महीनों में एक बार इसे स्कूलों में आयोजित किया जा सकता है। जहां बुजुर्ग आकर पारंपरिक कहानियों को सुनाएंगे और इसके बाद उन कहानियों को बच्चों को उनके शब्दों में लिखने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। ऐसे क्रियाकलापों के लिए स्थानीय प्रसिद्ध कलाकारों को भी आमंत्रित किया जा सकता है।

हम जानते हैं कि अन्य देशों की तुलना में भारत एक ऐसा देश है, जहां हर कुछ किलोमीटर पर खान–पान के साथ भाषा और संस्कृति बदल जाती है। प्राथमिक स्तर पर अलग–अलग मातृभाषा और संस्कृति को जानने वाले बच्चे एक ही कक्षा में एक साथ बैठते हैं। तो यहां समस्या खड़ी होती है कि इन्हें शिक्षित कैसे किया जाए? क्योंकि वहां दो या तीन भाषाएं जानने वाले या उससे अधिक भाषा पृष्ठभूमियों के बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे होते हैं। लेकिन वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) इस बात को साफ करती है कि बहुभाषिकता (Multilingualism) कोई बाधा नहीं है, वहीं बच्चे के संज्ञानात्मक विकास कक्षा को समृद्ध बनाने का सशक्त संसाधन है।

कई परिस्थितियों में शिक्षक मानक भाषा के अलावा उस क्षेत्र के स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को नहीं जान रहे होते हैं। इसके विपरीत बच्चे अलग–अलग क्षेत्रीय भाषाओं के पृष्ठभूमि से आते हैं और अपनी उन भाषाओं

में बात विचार करने में कुशल होते हैं। ऐसी परिस्थिति में शिक्षकों को भी उस क्षेत्र के बोलियों को बोलने, लिखने और समझने में परांगत होना चाहिए। ताकि शिक्षक और बच्चों के संवाद में बाधा उत्पन्न ना हो। ज्यादातर पाठ्य पुस्तकें और सहायक शिक्षण सामग्री मानक भाषाओं जैसे हिंदी या अंग्रेजी में होती है। स्थानीय बोलियों या संस्कृतियों को सहेजने के हिसाब से आज भी पठन–पाठन सामग्री की मात्रा बहुत कम है। समाज के कुछ भाषाओं या संस्कृतियों को श्रेष्ठ और कुछ को पिछड़ा न मानकर सभी को क्षेत्र विशेष के हिसाब से मान्यता मिलनी चाहिए।

कई बार प्राथमिक स्तर के स्कूलों में समाज के कुछ भाषा को विकसित और कुछ भाषा को पिछड़ा मान लिया जाता है। इसके कारण अपनी मातृभाषा बोलने वाले बच्चों में हीन भावना आने लगती है और वे कक्षा में चुप से रहने लगते है। परीक्षाओं का ढांचा अभी भी केवल एक या दो मानक भाषा पर आधारित है। बच्चे अपने स्थानीय या जनजातीय भाषा में ज्ञान तो रखते हैं। बावजूद इसके वे मानक भाषा में लिख नहीं पाने के कारण पिछड़ जाते हैं।

ऐसी चुनौतियों को दूर करके बहुभाषिकता को संसाधन बनाने के लिए ठोस कदम उठाए जाने चाहिए। जैसे– शिक्षक को बच्चों के घरेलू भाषा को बोलने में पूरी छूट देनी चाहिए। बच्चों को शुरुआती दौर में उसकी भाषा में ही बोलने की छूट दी जानी चाहिए और फिर बाद में धीरे–धीरे उसे विद्यालय की मानक भाषाओं के साथ जोड़ना चाहिए। इसे दोनों भाषाओं के माध्यम से सहज बनाया जा सकता है। कक्षा में ऐसी गतिविधियों को कराया जाना चाहिए जिससे बच्चे एक दूसरे की भाषा और संस्कृति सीख सके। प्राथमिक स्तर पर (कक्षा 1–5) तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा होना चाहिए। साथ ही साथ दूसरे भाषाओं को रुचिकर तरीकों से सिखाने पर जोर देना चाहिए। ताकि बच्चों पर बोझ ना पड़े। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों (B.ED/D.EL.ED) में शिक्षकों को यह जरूर प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि वे बच्चों की बोलियों का सम्मान करें। साथ ही उनके बोलियों को अभिव्यक्ति का माध्यम माने। ताकि बच्चे अपनी बातों को खोलकर प्रस्तुत कर सकें।

बहुभाषिकता को स्वीकार करने से इसके कई फायदे हैं। शोध बताते हैं कि ऐसे बच्चे जो एक से अधिक भाषाएं जानते हैं उनमें कल्पना शक्ति और समस्याओं को सुलझाने की क्षमता अन्य की तुलना में बेहतर होती है। साथ ही तार्किक सोच औरों से बेहतर होती है। जब कक्षा में बच्चे की भाषा को प्रोत्साहित किया जाता है तो वह निडरता पूर्वक स्कूल के सभी क्रियाकलापों में हिस्सा लेता हैं और उसमें स्कूल जाने की इच्छा बनी रहती है। इससे बच्चों के स्कूल छोड़ने की दर में कमी आती है।

पहले के शिक्षण व्यवस्था में बहुभाषिकता को शामिल न करना यह बड़ी भूल थी। सांस्कृतिक विविधता को भी शामिल नहीं किया गया था और इसे एक समस्या के रूप में देखा जाता था। वर्तमान समय में यह एक अनमोल पूंजी है। जो कक्षा के माहौल को एक नया रूप देती है, जहां बच्चे नए अंदाज में अपने अनुसार पढ़ते और सीखते हैं। यदि हम चाहते हैं कि प्रत्येक भारतीय बच्चों का विकास हो तो हमें कक्षा की इस विविधता को मानना चाहिए और इसे शिक्षा की मुख्य धारा का हिस्सा जरूर बनना चाहिए।

प्राथमिक स्तर की पाठ्य पुस्तक केवल अक्षरों और व्याकरणिक विषय वस्तु का संग्रह ही नहीं होता बल्कि वह किताब उन बच्चों के बाहरी दुनिया जिनसे वे अंजान हैं, उसे देखने की खिड़की होती है। उनके पाठ्य पुस्तकों में बच्चों की अपनी संस्कृति, परिवेश के साथ स्थानीय ज्ञान झलकता है तो पुस्तक कहीं ना कहीं जीवंत हो उठती है। जैसे –

करम गीत

हातु–हातु, टोला–टोला
रुम्बुल लेना रुतु–बानाम।
एन रुतु–बानाम कोते जान?
ओकोए उदुबाञ!
एला, चिमाए चुण्डुलाञ!
एन रुतु बानाम कोतेजान?

आकाड़ाको जारु ओड़ाः
तुमुल लेना सुसुन–दुराङ।
एन सुसुन दुराङ कोते जान?
ओकोए उदुबाञ!
एला, चिमाए चुण्डुलाञ!
एन सुसुन–दुराङ कोते जान?

भावार्थ – पहले गांव–गांव और टोलों टोलों में किसी भी त्योहार में बांसुरी और बनम बजते और गूंजते थे। लेकिन इस दौर में बांसुरी और बनम की गूंज कहां गई? इसका पता नहीं। अकड़ा और युवागृह पहले नाच गान से गुंजायमान रहती थी। किंतु यह गुंजायमान आज कहीं लुप्त हो गई?

यहाँ इस गीत में रुतु बनम गाँव टोला आदि जैसे सामान्य शब्दों का प्रयोग हुआ जो कि सामान्य रूप से गाँव के बच्चे ग्रामीण परिवेश में सुनते और समझते हैं।

प्राचीन काल में मुण्डा जनजातियों का प्राथमिक शिक्षा केंद्र युवागृह था। जहां बच्चों एवं युवक युवकों को उनकी जीवनशैली की शिक्षाएं दी जाती थी। इस शिक्षण शैली से युवक युवतियां अपनी भावी जीवन काल में जीवन यापन करने की शिक्षा प्राप्त करते थे। जिसकी झलक इस लोकगीत में दिखता है –

गेना गीत

गिति ओड़ाः रे डिण्डा टुइला
जारु रोसोम रे डंगुआ केंदरा
गिति ओड़ाः दो डिण्डा लो तना
जारु रोसोम दो डंगुआ बलेतन।

भावार्थ – कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन समय युवागृह में टुइला एवं केंदरा नामक वाद्य यंत्र बजाए जाते थे। लेकिन वर्तमान में यह टुइला और केंदरा युवागृह के साथ जलकर नष्ट हो रहे हैं। अर्थात वर्तमान समय में प्राचीन शिक्षण विधि जो युवागृह में दी जाती थी, वह अब धीरे–धीरे नष्ट हो गई।

निष्कर्ष –

नई शिक्षा नीति के तहत सरकार क्षेत्रीय एवं मातृभाषाओं की शिक्षा प्राथमिक विद्यालय में पठन–पाठन की बात तो करती है। लेकिन यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 झारखंड सरकार का अन्य राज्यों की तुलना में उसके कार्यालयों के दफ्तर से बस कागजों में झांकती नजर आती है। पढाई हो भी रही है तो निजी शिक्षण संस्थानों में और उच्च संस्थानों में। जबकि इसकी पढाई अनिवार्य रूप से प्राथमिक स्तर से होनी चाहिए। लेकिन ऐसा

न होना कहीं यह छलावा तो नहीं? क्या अन्य राज्यों के साथ भी यही छलावा तो नहीं हो रहा है? क्या झारखंड का निर्माण इसलिए हुआ था कि यहां के आदिवासियों और मूल निवासियों का विकास न हो? जबकि आज नई शिक्षा नीति को लागू हुए लगभग 3 साल 6 महीना हो चुके हैं। फिर भी यह अभी धरातल में पूरी तरह नहीं उतर पाया है।

संदर्भ सूची –

1. मुण्ड़ा, डॉ. रामदयाल, सेलेद – पृष्ट 98, साईल रकब पुथी सेंटर विराटी कोलकाता, 2005
2. होफमेन, फादर जॉन, एनसाइक्लोपीडिया मुण्डारिका Volume 5- E-G page 1461-1462, सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्मेंट प्रिंटिंग बिहार एंड ओड़िसा पटना, 1932
3. मुण्ड़ा गेना लोक गीत, ऐसे गीत जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तांतरित होती आई हो।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 40-44

21वी सदी का सोशल मीडिया और हिंदी का बदलता परिदृश्य : भाषा, संस्कृति एवं प्रभाव

डॉ. दीपिका शर्मा

वर्तमान समय मीडिया का युग होने की कारण सूचना के विभिन्न साधनों में वृद्धि हो रही है। यही कारण है कि यह समय सूचना का प्रोद्योगिकी काल कहलाता है। सूचना तथा विचारों का आदान–प्रदान करना ही मीडिया का मुख्य उद्धेश्य होता है। इसके उद्धेश्य की प्रप्ति के लिए मीडिया बहुत सारी भाषाओं का प्रयोग करता है। हिंदी भाषा का प्रयोग भी इसी क्षेत्र में अधिक होने के कारण हिंदी न केवल साहित्य की भाषा रह गई अपितु राजनीतिक, पत्रकारिता, बैंकिंग, वैज्ञानिक इत्यादि क्षेत्रों में अपनी बुलंदी का ध्वज लहरा रही है। "हिंदी साँस में, पानी में, पहाड़ में, खेत में, शहर में, देहात में है इसलिए जाहिर है कि हिंदी की धमक मीडिया में भी है। वर्तमान समय में मीडिया और हिंदी भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ है। जहाँ मीडिया की भाषा हिंदी बनी है, वहीं हिंदी की लोकप्रियता भी मीडिया से बढ़ी है। मीडिया ने हिंदी को विश्व स्तर पर विशिष्ट पहचान दिलाई है।"[1]

आज 21वी सदी का सोशल मीडिया पूर्ण रूप से सामाजिक–तकनीकी परिदृश्य में ढल चूका है। यह केवल संचार का साधन ही नहीं रह गया अपितु सार्वजनिक विचार–विमर्श, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का आदान–प्रदान तथा व्यक्तिगत पहचान का निर्माण करने का भी एक माध्यम बन चुका है। "इसीलिए मीडिया प्रजातंत्र का चौथा आधार स्तंभ बना हुआ है। इस आधार स्तंभ ने सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक. धार्मिक आदि गतिविधियों को गतिशील बनाने में अथवा सामाजिक परिवर्तन लाने का कार्य प्राचीन काल से ही किया है। यही मीडिया आज विभिन्न क्षेत्रों में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।"[2]

पुरातन रूप से ही हिंदी समृद्ध–सहज साहित्यिक परम्परा को समेटे व्याकरण के नियमों से बंधी तथा सांस्कृतिक–सामाजिक चेतना से सम्बन्धित भाषा बनी रही है परन्तु आज के समय के डिजिटल स्त्रोतों ने इसका प्रयोग करना इतना सरल, सहज और प्रयोगात्मक बना दिया है कि अब यह सोशल मीडिया के सभी प्रकार के मंचों, विभिन्न ब्लोग्स, ई–पत्रिका, ऑनलाइन–समाचार, यूट्यूब जैसे बड़े स्तरों पर भी इस्तेमाल की जाने लगी है। जिससे हिंदी का रूप मानक हिंदी से अलग होकर क्षेत्रीय बोलियाँ, अंग्रेजी शब्दों, रोमन लिपि–प्रतीकों से समाविष्ट हो गया है। "यह स्थिति हिंदी के लोकतंत्रीकरण का संकेत भी देती है। जहाँ भाषा अभिजात वर्ग से निकलकर जनसामान्य की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन रही है।"[3]

मीडिया ओर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को हम दो भागों में बाँट सकते हैं। पत्र, पोस्टर, और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में रेडियो, दूरदर्शन, संगणक, इन्टरनेट आते हैं। इस मीडिया के अतिरिक्त जब हम आज के दौर में सोशल मीडिया की बात करते हैं तो एक कंप्यूटर पर आधारित तकनीक है। "जो लोगों को ऐसा मंच प्रदान करती है जहां वे अपने विचार, प्रतिक्रिया, मत आदि सांझा कर सकते हैं। यह इन्टरनेट पर आधारित है जिसका उपयोग

दस्तावेज, वीडियो, फोटोग्राफ, सूचना या विज्ञान सम्प्रेषित करने के लिए करते हैं। सोशल मीडिया के अंतर्गत उस सारे वेबसाइट और एप्लीकेशन की चर्चा की जा सकती है जो संचार व सामग्री सांझा करने की सुविधा प्रदान करते हैं।"[4]

हिंदी भाषा के क्षेत्र में भी सोशल मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। सोशल मीडिया में हिंदी का प्रयोग बढ़ता ही जा रहा रहा है। एक समय था जब मात्र प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का वर्चस्व था लेकिन इन्टरनेट के प्रभाव से सोशल मीडिया ने समाज को प्रभावित करना आरंभ कर दिया, जिससे समाज में हिंदी भी अपना पारम्परिक रूप छोड़कर एक डिजिटल रूप धारण कर रही है।

सोशल मीडिया पर हिंदी का बदलता परिदृश्य :

किसी भी समाज में भाषा एक जीवंत अभिव्यक्ति होती है। समाज में होने वाले परिवर्तनों से वहां की भाषा और संस्कृति पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। समाज के जीवन–बोध के परिवर्तन से भाषा के शब्दों संरचनात्मक, अभिव्यक्ति प्रक्रिया और सम्प्रेष्ण प्रक्रिया भी बदलती है। 21वी सदी के दूसरे दशक के शुरू में ही डिजिटल के क्षेत्र में ऐसी क्रान्ति आ गई है कि सोशल मीडिया में होने वाले तीव्रात्मक बदलाव ने सूचना के आदान–प्रदान करने के रूप को भी पूरी तरह बदल कर रख दिया है।

"सोशल मीडिया एक ऐसी तकनीक है जो कंप्यूटर, नेटवर्क के माध्यम से अपने उपयोगकर्ता को संवाद स्थापित करने की सुविधा प्रदान करती है। उपयोगकर्ता आमतौर पर इस माध्यम का प्रयोग करने के लिए डेस्कटॉप, कंप्यूटर, लैपटॉप, टेबलेट एवं मोबाइल फोन पर आधारित प्रोद्योगिकियों के माध्यम से सोशल मीडिया की सेवाओं का उपयोग करते हैं।"[5]

जैसे कि भाषा संप्रेषण का सशक्त साधन होता है इसलिए हिंदी जो भारत में सबसे अधिक बोली और समझी, लिखी जाने वाली भाषा है। यही कारण है कि आज सोशल मीडिया पर हिंदी के पारम्परिक रूप में परिवर्तित कर उसे नवीन स्वरूप के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता रहा है। जिससे सोशल मीडिया पर हिंदी का प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है, जिसके मूल रूप से तीन कारण हैं – हिंदी का तकनीकी विकास, बाजारवाद का दबदबा, हिंदी या अन्य भाषा के साथ जनता का जुड़ाव। इस सब कारणों ने सोशल मीडिया के स्तर पर हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का परिदृश्य ही बदल कर रख दिया है।

सोशल मीडिया से हिंदी भाषा पर प्रभाव :

सोशल मीडिया के विकास से हिंदी एक वैश्विक और तकनीकी भाषा बन चुकी है। इसने हिंदी भाषा के व्याकरण के नियमों, मानकों तथा बनावट को पूरी तरह प्रभावित किया है। मुख्य रूप से सोशल मीडिया से हिंदी भाषा पर जो प्रभाव देखने को मिलते हैं वो इस प्रकार हैं –

1. **हिंग्लिश का विकास** – आज के समय में युवा पीढ़ी द्वारा सोशल मीडिया पर हिंदी और अंग्रेजी मिश्रित भाषा का चलन बढ़ चूका है, जिससे उसको विचारों का आदान–प्रदान करने में सहजता का अनुभव होता है। "अंग्रेजी शब्दों और वाक्यांशों का हिंदी वाक्यों में मिश्रण डिजिटल पीढ़ी के बीच स्वाभाविक संप्रेषण का माध्यम बन गया है, जिसे मीडिया ने भी सहज रूप से अपनाया है।"[6] कई भाषा विज्ञान के अध्ययनों में भी मिलता है कि 90.7% उपभोक्ताकर्ता बातचीत करते समय अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करके स्वयं को अच्छे तरीके से व्यक्त कर सकते हैं।

2. **संक्षिप्त और दृश्य संकेतों का इस्तेमाल** – आज समय बचाने के उद्धेश्य से सोशल मीडिया पर शब्दों के

छोटे रूप का चलन बढ़ गया है "दृश्यात्मकता सोशल मीडिया युग की एक अन्य प्रमुख विशेषता है। टेक्स्ट्स के साथ–साथ चित्र, विडियो, इन्फोग्रापिक्स और इमोजी का प्रयोग हिंदी मीडिया की भाषा को नया आयाम देता है।"[8]

3. भाषा का सरल होना और व्याकरण में शिथिलता का आना – सोशल मीडिया के विभिन्न प्लेटफॉर्म्स (फेसबुक, इन्सटाग्राम) पर हिंदी का प्रयोग होने से भाषा की मौलिकता तो समाप्त हो गई है अपितु उसमें एक प्रकार की अनौपचारिकता भी आ गई है "डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर भाषा अधिक अनौपचारिक, भाव प्रधान और त्वरित हो गई है। व्याख्यात्मक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि ये परिवर्तन केवल भाषिक नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों से भी जुड़े हुए हैं।"[9] जिससे भाषा के व्याकरणिक नियमों में शिथिलता आ चुकी है। "क्रिस्टल के अनुसार, "भाषा परिवर्तन में शब्दावली, व्याकरण, व्यावहारिकता और शैली में परिवर्तन शामिल है।"[10]

4. यूनिकोड तथा ध्वनि टाइपिंग का विकास – सोशल मीडिया के बढ़ते विकास ने हिंदी में यूनिकोड और मोबाइल आवाज टाइपिंग या लिखने को भी सरल बना दिया है। "लाइव अपडेट, ट्विट–आधारित रिपोर्टिंग ओर कमेंट सेक्शन ने लेखन शैली को संवादात्मक और तात्कलिक प्रतिक्रिया प्रधान बना दिया है।"[11] हिंदी भाषा पर सोशल मीडिया की प्रधानता होने पर देवनागरी पर रोमन लिपि का वर्चस्व हो गया है। "डिजिटल प्लेटफार्म पर हिंदी का प्रयोग विविध रूपों में दिखाई देता है मानक हिंदी, बोलचाल की हिंदी, क्षेत्रीय शब्दावली और हिंगलिश का मिश्रित रूप।"[12]

5. लोकतंत्रीकरण होना – सोशल मीडिया ने यहाँ तक संभव हो सके हिंदी भाषा को इतना सरल और लोकप्रिय बना दिया है कि इन्टरनेट पर हिंदी से सम्बन्धित सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाती है। "डिजिटल मीडिया ने इस पांरपरिक एकाधिकार को समाप्त कर अभिव्यक्ति का पूर्ण लोकतंत्रीकरण कर दिया है। आज प्रत्येक लेखक ब्लॉग, व्यक्तिगत वेबसाइट और सोशल मीडिया के माध्यम से अपना स्वयं का प्रकाशक बन गया है।"[13]

सोशल मीडिया ने हिंदी भाषा के पारम्परिक रूप को जिस प्रकार परवर्तित कर दिया है ठीक उसी तरह भारतीय संकृति पर भी सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकारों के प्रभाव डाले हैं।

सोशल मीडिया से भारतीय संस्कृति पर सकारात्मक प्रभाव :

1. सांस्कृतिक प्रचार और विरासत : सोशल मीडिया ने हिंदी को भौगोलिक सीमाओं को पार करते हुए विदेशों में भारतीय संस्कृति को इतना लोकप्रिय बना दिया है कि इसने भारतीय हस्त कला, पांरपरिक संगीत एवं नृत्य के विभिन्न रूपों को विश्व स्तर पर पहचान दिलाई है इसके साथ ही इसने आम लोगों को एक मंच देकर उनकी प्रतिभा को आवाज देने की सुविधा दी है।

सोशल मीडिया से भारतीय संस्कृति पर नकारात्मक प्रभाव :

2. भारतीय रीति–रिवाजों और मूल्यों का पतन : यहाँ एक तरफ सोशल मीडिया ने भारतीय संस्कृति पर सकारात्मक प्रभाव डाला है, वही इसने संस्कृति पर नकारात्मक प्रभाव भी डाला है। आज की युवा पीढ़ी सोशल मीडिया के इतना नियन्त्रण में आ चुकी है कि वह भारतीय पांरपरिक मूल्यों तथा रीति–रिवाजों से दूर होते जा रहे हैं,जिससे उनका पारिवारिक तथा सामाजिक जुड़ाव समाप्त होता जा रहा है।

निष्कर्ष :

अतः यह कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया के युग में हिंदी भाषा तथा संस्कृति का परिदृश्य बहुत हद तक गतिशील एवं बहुआयामी हो चुका है। इसने यहाँ हिंदी को संकुचित दायरे से निकालकर वैश्विक धरातल पर खड़ा कर डिजिटल अर्थव्यवस्था को एक नया आधार प्रदान किया है वही यह हिंदी भाषा एवं भारतीय संस्कृति के लिए अवसर और चुनौतियाँ दोनों को ही प्रस्तुत भी करता है। यह परिवर्तन न तो सकारात्मक है और नकारात्मक है अपितु यह मात्र एक संक्रमण काल की भाषाई प्रक्रिया है। आवश्यकता यह है कि हिंदी तथा संस्कृति सोशल मीडिया के सहयोग, लोकतंत्र और तीव्रता वाले संचार को अपनाते हुए अपने भाषिक संतुलन, नैतिक मूल्य एवं सांस्कृतिक उतरदायित्व बरकरार रखे। ऐसा करने पर ही सोशल मीडिया पर हिंदी भाषिक रूप केवल सशक्त ही नहीं होगा बल्कि समाज को एक समृद्ध और उज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सं. रविंदर जाधव, केशव मोरे, मीडिया और हिंदी बदलती प्रवृतियाँ, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 174.
2. प्रो. कलानाथ मिश्र, साहित्य यात्रा, अभ्युदय, पटना, 2018, पृष्ठ–19.
3. अनुज बरमोला, डिजिटल युग में हिंदी भाषा के रूपांतरण की उभरती प्रवृतियाँ, अक्षरासूर्य, Emerging Trends in Language, Literature and Culture, Vol. 13, No. 05 (2006), सहायक प्राध्यापक, वृंदावन कॉलेज द्वारका, नगर, बंगलरु (http://aksharasurya.com/index.php/latest/article/view/603.
4. Egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/1/unit-13. सोशल मीडिया में सामाजिक मनोविज्ञान के अनुप्रयोग, पृष्ठ–229.
5. अंजु चौधरी, सोशल मीडिया पर हिंदी भाषा का प्रयोग एवं महत्व, राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान, रूडकी, प्रवाहिनी, अंक, 2018, पृष्ठ 11.
6. रिंकू कुमारी, डॉ. ऋचा वर्मा, सोशल मीडिया के प्रभाव से हिंदी मीडिया की भाषा में बदलाव, International Journal of creative research thoughts (IJCRT). An international open access, peer reviewed, refered journal volume-14, 3 march 2026/ISSN:2320-2882, पृष्ठ –16.
7. डॉ. कुंचन आचार्य, इन्टरनेट और भाषायी विविधता और सोशल मीडिया पर हिंदी का नया स्वरूप : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाऐं, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर, ISSN : 2347–8012, Peer reviewed research journal, नया सृजन, अंक–8, जनवरी–जून 2022, (साहित्यिक शोध पत्रिका), पृष्ठ 40.
8. डॉ. कुंचन आचार्य, इन्टरनेट और भाषायी विविधता और सोशल मीडिया पर हिंदी का नया स्वरूप : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाऐं, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर, ISSN : 2347–8012, Peer reviewed research journal, नया सृजन, अंक–8, जनवरी–जून 2022, (साहित्यिक शोध पत्रिका), पृष्ठ 17
9. डॉ. कुंचन आचार्य, इन्टरनेट और भाषायी विविधता और सोशल मीडिया पर हिंदी का नया स्वरूप :

चुनौतियाँ एवं सम्भावनाऐं, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर, ISSN : 2347–8012, Peer reviewed Research Journal, नया सृजन, अंक–8, जनवरी–जून 2022, (साहित्यिक शोध पत्रिका), पृष्ठ 17.

10. डॉ. कुंचन आचार्य, इन्टरनेट और भाषायी विविधता और सोशल मीडिया पर हिंदी का नया स्वरूप : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाऐं, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर, ISSN : 2347-8012, Peer Reviewed Research Journal, नया सृजन, अंक–8, जनवरी–जून 2022, (साहित्यिक शोध पत्रिका), पृष्ठ 38.
11. नगेन्द सिंह, डिजिटल पत्रिका में हिंदी का बदलता रूप, International Journal of Leading Research Publication (IJLRP) E-ISSN : 2582-8010, पृष्ठ –3.
12. नगेन्द सिंह, डिजिटल पत्रिका में हिंदी का बदलता रूप, International Journal of Leading Research Publication (IJLRP) E-ISSN : 2582-8010, पृष्ठ –3.
13. श्याम मिश्रा, डिजिटल मीडिया के दौर में हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता का बदलता स्वरूप, ISSN : 2455–2232, पृष्ठ–99.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 45-47

वित्तीय साक्षरता का निवेश निर्णयों पर प्रभाव

Dr. DILIP KUMAR PARSENDIYA
ASSISTANT PROFESSOR (COMMERCE)
GOVT. ADARSH P. G. COLLEGE, JHABUA (M.P.)

सारांश :

वर्तमान वैश्विक एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में निवेश को आर्थिक सुरक्षा, संपत्ति निर्माण तथा दीर्घकालीन वित्तीय स्थिरता का प्रमुख साधन माना जाता है। किंतु निवेश के निर्णय केवल आय या बचत पर ही निर्भर नहीं करते, बल्कि व्यक्ति की वित्तीय समझ, जानकारी और जागरूकता पर भी आधारित होते हैं। इसी संदर्भ में वित्तीय साक्षरता की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। वित्तीय साक्षरता से आशय उस क्षमता से है, जिसके माध्यम से व्यक्ति आय, व्यय, बचत, निवेश, ऋण और जोखिम से संबंधित सही निर्णय ले सकता है। भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ एक ओर वित्तीय उत्पादों और सेवाओं की संख्या तेजी से बढ़ रही है, वहीं दूसरी ओर आम नागरिकों में वित्तीय ज्ञान का स्तर अपेक्षाकृत कम है। परिणामस्वरूप निवेश संबंधी निर्णय अक्सर भावनाओं, अफवाहों या अपूर्ण जानकारी के आधार पर लिए जाते हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि वित्तीय साक्षरता निवेश निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करती है तथा इसके माध्यम से आर्थिक सशक्तिकरण कैसे संभव है।

वित्तीय साक्षरता की अवधारणा :

वित्तीय साक्षरता का तात्पर्य केवल धन गिनने या बचत करने की क्षमता से नहीं है, बल्कि इसमें बजट बनाना, वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण, विभिन्न निवेश विकल्पों की समझ, जोखिम और प्रतिफल का आकलन तथा दीर्घकालीन योजना बनाना भी शामिल है। OECD के अनुसार, वित्तीय साक्षरता ज्ञान, कौशल, दृष्टिकोण और व्यवहार का ऐसा संयोजन है जो व्यक्ति को प्रभावी वित्तीय निर्णय लेने में सक्षम बनाता है। वित्तीय साक्षरता के प्रमुख घटक में वित्तीय ज्ञान, वित्तीय कौशल, वित्तीय दृष्टिकोण, वित्तीय व्यवहार आदि है। इन घटकों का समुचित विकास व्यक्ति को बेहतर निवेश निर्णय लेने में सहायता करता है। निवेश निर्णय एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है, जिसमें निवेशक विभिन्न चरणों से गुजरता है। इनमें निवेश उद्देश्य का निर्धारण, जोखिम सहनशीलता का मूल्यांकन, उपलब्ध निवेश विकल्पों का विश्लेषण, उचित विकल्प का चयन तथा निवेश के पश्चात् निगरानी शामिल है।

वित्तीय साक्षरता का स्तर जितना अधिक होता है, निवेश निर्णय की प्रक्रिया उतनी ही तर्कसंगत और वैज्ञानिक होती जाती है। वित्तीय रूप से साक्षर निवेशक जोखिम और प्रतिफल के बीच संतुलन बनाकर निर्णय लेता है, जबकि कम साक्षर व्यक्ति प्रायः अल्पकालिक लाभ या दूसरों की सलाह पर निर्भर रहता है। वित्तीय साक्षरता और निवेश निर्णयों के बीच गहरा एवं प्रत्यक्ष संबंध पाया जाता है। विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि जिन व्यक्तियों का वित्तीय ज्ञान अधिक होता है, वे अधिक विविधीकृत और सुरक्षित निवेश पोर्टफोलियो

बनाते हैं। वित्तीय साक्षरता के अंतर्गत निवेशकों की जोखिम को समझने और प्रबंधित करने की क्षमता, दीर्घकालीन निवेश की प्रवृत्ति, धोखाधड़ी और गलत निवेश योजनाओं से बचाव, कर नियोजन और सेवानिवृत्ति योजना में सुधार आदि सम्मिलित है। इस प्रकार वित्तीय साक्षरता न केवल निवेश की मात्रा को बढ़ाती है, बल्कि निवेश की गुणवत्ता में भी सुधार करती है।

शोध प्रविधि :

इस शोध पत्र में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अनुसंधान पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया है, जिसमें पुस्तकों, शोध पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, RBI, SEBI तथा व्ब्ब द्वारा प्रकाशित दस्तावेजों का विश्लेषण किया गया है। अनुसंधान का उद्देश्य वित्तीय साक्षरता और निवेश निर्णयों के बीच संबंध को सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से समझना है।

भारत में वित्तीय साक्षरता की स्थिति :

भारत में वित्तीय साक्षरता का स्तर अभी भी संतोषजनक नहीं माना जा सकता। RBI और SEBI द्वारा किए गए विभिन्न सर्वेक्षणों के अनुसार, बड़ी आबादी को बुनियादी वित्तीय अवधारणाओं जैसे ब्याज दर, मुद्रास्फीति और जोखिम का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों, महिलाओं, असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों और निम्न आय वर्ग में वित्तीय साक्षरता की कमी अधिक देखी जाती है। इसके परिणामस्वरूप निवेश के स्थान पर सोना, नकद या अचल संपत्ति जैसे पारंपरिक साधनों को प्राथमिकता दी जाती है। भारत सरकार और विभिन्न नियामक संस्थाओं द्वारा वित्तीय साक्षरता बढ़ाने के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। प्रमुख पहलों में प्रधानमंत्री जन–धन योजना, भारतीय रिज़र्व बैंक की वित्तीय साक्षरता सप्ताह, SEBI की निवेशक जागरूकता कार्यक्रम, राष्ट्रीय वित्तीय शिक्षा रणनीति आदि। इन पहलों का उद्देश्य आम नागरिकों को औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जोड़ना और निवेश के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना है। वित्तीय साक्षरता की कमी निवेश निर्णयों में कई समस्याएँ उत्पन्न करती है, जैसे उच्च जोखिम वाले और अव्यावहारिक निवेश, पोंजी योजनाओं और धोखाधड़ी का शिकार होना, अपर्याप्त सेवानिवृत्ति योजना, ऋण जाल में फँसना, इन समस्याओं का समाधान केवल वित्तीय शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से ही संभव है। वित्तीय साक्षरता का प्रभाव केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि इसका व्यापक सामाजिक और आर्थिक प्रभाव भी पड़ता है। वित्तीय रूप से साक्षर नागरिक अधिक बचत और निवेश करते हैं, जिससे पूंजी निर्माण को बढ़ावा मिलता है। इसके अतिरिक्त, वित्तीय साक्षरता आर्थिक असमानता को कम करने, महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण तथा समावेशी विकास को प्रोत्साहित करने में भी सहायक होती है। वित्तीय साक्षरता का स्तर विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं व्यक्तिगत कारकों से प्रभावित होता है। इनमें शिक्षा स्तर, आय, आयु, पेशा, सामाजिक परिवेश, तकनीकी पहुँच तथा वित्तीय संस्थानों से संपर्क प्रमुख हैं। उच्च शिक्षा एवं नियमित आय वाले व्यक्तियों में निवेश से संबंधित ज्ञान अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। वहीं निम्न आय वर्ग और असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों में वित्तीय जानकारी का अभाव देखा जाता है।

विभिन्न निवेश विकल्पों पर वित्तीय साक्षरता का प्रभाव :

वित्तीय साक्षरता का सीधा प्रभाव निवेश विकल्पों के चयन पर पड़ता है। वित्तीय रूप से साक्षर निवेशक बैंक जमा, म्यूचुअल फंड, शेयर, बॉन्ड, बीमा और पेंशन योजनाओं जैसे विविध साधनों में निवेश करते हैं। इसके विपरीत कम वित्तीय ज्ञान वाले निवेशक प्रायः सोना, नकद या चिट–फंड जैसी पारंपरिक अथवा असुरक्षित योजनाओं पर निर्भर रहते हैं। जोखिम निवेश का अभिन्न अंग है। निवेशकों को बाजार जोखिम, तरलता जोखिम

एवं मुद्रास्फीति का ज्ञान होना आवश्यक है। साक्षर निवेशक पोर्टफोलियो विविधीकरण, दीर्घकालीन दृष्टिकोण और नियमित समीक्षा के माध्यम से जोखिम को नियंत्रित कर सकते हैं। व्यवहारिक वित्त के अनुसार निवेश निर्णय केवल तर्क पर आधारित नहीं होते, बल्कि भावनाएँ, पूर्वाग्रह और सामाजिक प्रभाव भी इसमें भूमिका निभाते हैं। वित्तीय साक्षरता इन व्यवहारिक पूर्वाग्रहों, जैसे अति–आत्मविश्वास, झुंड प्रवृत्ति और नुकसान से बचने की प्रवृत्ति को कम करने में सहायक होती है। महिलाओं की वित्तीय साक्षरता का स्तर बढ़ने से उनके निवेश निर्णय अधिक स्वतंत्र और प्रभावी बनते हैं। वित्तीय रूप से सशक्त महिलाएँ न केवल अपने लिए बल्कि परिवार की आर्थिक सुरक्षा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इससे लैंगिक आर्थिक असमानता को कम करने में सहायता मिलती है। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स, मोबाइल ऐप्स और ऑनलाइन ट्रेडिंग के बढ़ते उपयोग ने निवेश को सरल बनाया है। किंतु डिजिटल निवेश के लिए डिजिटल वित्तीय साक्षरता आवश्यक है। साइबर सुरक्षा, ऑनलाइन धोखाधड़ी और डिजिटल जोखिमों की समझ निवेशकों को सुरक्षित निर्णय लेने में सक्षम बनाती है।

निष्कर्ष :

वित्तीय साक्षरता को बढ़ाने के लिए विद्यालय स्तर से ही वित्तीय शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कार्यस्थलों, स्वयं सहायता समूहों और डिजिटल माध्यमों के माध्यम से भी वित्तीय जागरूकता कार्यक्रम संचालित किए जाने चाहिए। समग्र अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है, कि वित्तीय साक्षरता निवेश निर्णयों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आधार है। वित्तीय ज्ञान और समझ के अभाव में निवेश निर्णय जोखिमपूर्ण और अव्यवस्थित हो जाते हैं। वहीं वित्तीय रूप से साक्षर व्यक्ति दीर्घकालीन दृष्टि से सुरक्षित एवं लाभकारी निवेश करता है। अतः आवश्यक है कि वित्तीय साक्षरता को शिक्षा व्यवस्था, सरकारी नीतियों और सामाजिक अभियानों के माध्यम से व्यापक रूप से बढ़ावा दिया जाए। इससे न केवल व्यक्तिगत निवेश निर्णयों में सुधार होगा, बल्कि आर्थिक विकास, पूंजी निर्माण और सामाजिक सशक्तिकरण को भी गति मिलेगी।

संदर्भ सूची :

1. Reserve Bank of India – Financial Literacy Reports.
2. SEBI – Investor Awareness Publications.
3. OECD (2018) Financial Literacy Framework.
4. Lusardi, A-Mitchell (2014) Financial Literacy and Economic Outcomes.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 48-53

Emerging Role of Innovative Technology in the Indian Agriculture Sector

Dr. Indu Kumari
Assistant Professor, Dept. of Economics,
B. N. College, Bhagalpur, T. M. Bhagalpur University, Bhagalpur.

Abstract :

Across the world, the Indian economy is generally perceived as an agricultural economy. Its role is very important to the Indian economy because a large number of the population depend on agriculture, either directly or indirectly, for earning their livelihood. Many people have been involved in farm and non-farm activities. The farmer and landless labourers are directly involved in agricultural work and the other side non-farming activities means allied activities of agriculture which give employment opportunities to the landless workers. As a result, the emergence of new technology from 1960 in the rural economy led to substantial changes recorded in crop production and agricultural production. This study is based on four objectives. The first objective is to understand the concept of innovative technology with respect to the agriculture sector. The second objective is to explain the importance of innovative technology (artificial intelligence, machine learning, etc.) in agriculture. Third is to find out the challenges' for implementing technology.

Introduction :

An increase in agricultural production due to the innovation of new technology and the green revolution has given the way for achieving one of the developmental goals, which is self-reliance in the field of food grains. The innovative technology has been providing the expansion of cropping areas and it has led to increasing agricultural diversification which has generated employment by adopting multiple cropping. However agricultural labourers shifted to other allied works as a result of the use of capital-intensive techniques in this field. Modernization of agriculture is getting stronger while the adoption of advanced technology, digital technology such as artificial intelligence, cloud infrastructure, machine learning and robotics etc.

The demand for AI in the agriculture sector has increased day-by-day as this sector grows rapidly. Indian farmers have been using this technology to increase work efficiency because it has been checking the soil condition, weather forecasting, looking for the productivity of crops, irrigation

management, mapping of crops, and health care for animals. AI has been used as an effective tool for forecasting and management of agricultural work. AI is very useful for agricultural diversification because it enables farmers to produce quality-based products that they can sell in the desired market at the fastest rate of accessibility. Mainly agricultural diversification is concerned with crop and the shift of the workforce from farm activity to other allied non-farm activities.

The maximum population of rural areas works in the agriculture sector, so the development of this sector provides profitable employment for those people living in rural areas which can be helpful to overcome problems like unemployment and poverty. Diversification in agriculture is also helpful for those who have been creating disguised unemployment; hence it is beneficial for those who wish to work in productive activities because agriculture is overloaded and risky. There are many sub-sectors of non-farm activities, food processing industries, agro-processing industry, tourism, leather industry which have been utilizing innovative technology.

As per the economic survey 18.8 % (2021-22) employment has been provided by the agriculture sector and 3.9 % (2021-22) has contributed to the total Gross Value Added of India. The worker forces have shifted into two directions that are allied activities and nonfarm activities. Allied activities are livestock, fisheries, horticulture and poultry etc. So, it has been noticed by the economic survey that the farmers' income has risen due to the digitalization of the agriculture sector.

Review of literature :

Smart farming enables the farmer to think about the productivity of agriculture and its risk should be managed by the use of AI Technique. Agriculture 4.0 is known as technology- driven agricultural systems. Some literature review as follows :

- Raj and Prahadeeswaran (2025), conducted several studies and found IoT based irrigation systems effectively improved uses of water efficiency and crop productivity. AI- enabled yield forecasting model has increased its accuracy and they also enlightened the role of drone technology which has minimised the uses of water and fertilizers by site-specific application.
- Spanaki et al. (2022), has studied the AI driven track Research and classified its function into disease detection, yield prediction, crop monitoring, weed management and supply chain optimization. They discussed machine learning algorithms and prediction analytics influencing decision-making of farmers and it also made them aware of agricultural risk.
- Duguma and Bai (2024), tested the internet of things (IoT), that digital networking enables agriculture efficiency by the enhancement of automatic irrigation systems, weather stations and sensors. They suggested that IoT coordinate with the temperature, crop health, humidity and real time monitoring of soil moisture as a result it decreases input cost and increases productivity of agriculture.
- Padhiary et al.(2025), they found that Drone, Robotics, GPS-guided machinery and Remote

Sensing empowered farmers to apply pesticide, water and fertilizers as per the requirement of crops.

- Bertoglio et al. (2021), has found five major research areas in agriculture that are side-specific, Remote Sensing, climate-smart agriculture, Artificial Intelligence and IoT. These are concurrent with these technologies generating new Digital Agricultural Revolution.
- Rizzo et al. (2024), they found in their literature reviews that farm size, education, extension services, Government support and extension services impactful laying the function of sustainable agriculture innovation.

Objectives :

- To understand the concept of innovative technology with respect to the agriculture sector.
- To explain the importance of innovative technology (artificial intelligence, machine learning, etc.) in agriculture.
- To find out the challenges of implementing technology.

Concept of innovative technology in agriculture :

Innovative technology in the field of agriculture refers to the shifting of traditional farming methods to modern methods. A technology-intensive technique used by the individual and the organization for the production of food grain and its processing to increase the sustainability of the farmers. Technology driving supporting systems will increase the socioeconomic standard of the Indian farmer. Traditional farming methods depended on animals capability, traditional tools, organic manure, irrigation depends on monsoon .Used mixed cropping and rotation.

Innovative technology in the agriculture sector refers to the use of scientific technology or modern machinery equipment, advanced tools, digital tools to improve the productivity of the Productivity of cultivating land, efficiency of the farmer profitability and substantial development in the agriculture sector. Involvement of technology has been transforming the traditional farming method to advanced cultivating methods. The new methods have been to maximize the utilization of natural resources and factor production like land, water, labour, and organization.

Importance of innovative technology :

Innovative technology plays a vital role in the agricultural sector. It is increasing the productivity of land and the profitability of farmers. Purity of agriculture based on drones, satellite data help monitoring soil health, IoT, sensor crop condition and paste outbreaks in real time. Biotechnology and genetic engineering have been introducing seeds that are pest resistant, high-yielding, drought-resistant and boosting productivity. Smart irrigation systems likewise drip irrigation and automated sprinkle technique diminishes water wastage and enhances water uses efficiently. The use of modern tools like harvester,seeders and tractor decreases labour cost and increases maximization of productivity.

Artificial intelligence has been used by apps for the prediction of sowing, irrigation and harvesting. Agriculture markets enabled by platforms like e-NAM (India) which connects farmers to a large market for ensuring better prices.

The digital agriculture mission was approved 2 September 2024 with a 2,817 crore budget. Digital public infrastructure (DPI) for agriculture has been announced in 2023-24. DPI represents the data which have been associated with the farmers, farmer-centric services and it provides combined data of central and state government innovations. The digital agriculture mission with three keys of digital public infrastructure: Agristack soil profile, mapping and Kristi decision support system (DSS).

The Ministry of Agriculture and farmer welfare has implemented policies on 'Agriculture and Farmers Welfare' and 'Agriculture Research and Education' for the Welfare of farmers including the management of agriculture inputs.

Table No. 1, An Allocation of Budget Agriculture

Section	2024-25 ,Actual	2025-26, RE	2026-26, BE	% Change from RE 2025-26 to BE 2026-27
Agriculture and farmers	1,29,933	1,23,089	1,30,561	6 %
Agriculture Research and Education	9,811	10281	9,967	-3 %
Total	139744	1,33,370	1,40,528	3 %

Note : BE-budget estimates and RE-revised estimates

Source : Expenditure Budget Ministry of Agriculture and Farmers Welfare Union budget 2026-27, PRS.

Challenges of Indian agriculture for adopting innovation Technology :

- **High Cost** : In these days life technology is very costly. The increasing price of this modern technology makes it difficult to afford for the common people. The middle class people without proper financial support cannot access these facilities.
- **Lack of Digital Knowledge** : one of the main reasons for the lack of digital literacy in rural areas is that many villages are far and secluded from urban areas. As a result people often have limited access to knowledge and educational resources. This allows the farmers to adopt and use digital tools and modern resources.
- **Infrastructural Gap :** One of the main reasons is poor infrastructure in agricultural areas, weak internet connectivity and limited facilities make it difficult to use modern or innovative

Technology effectively.

- **Fragmented land holding** : The main challenge is that many farmers in India have a small and scattered form which makes it difficult to use the modern resources or technology and apply large scale farming solutions.

Methodology :

The methodology of the study shows the flow to which the research is concerned. It is an important portion of the research which has highlighted the sampling method, source of data and statistical tools and techniques used for analyzing data. This study is based on secondary data. This has been collected from print media and electronic media, such as newspapers, magazines, journals and libraries etc.

Findings :

There are some findings of the study which has backed up the objective of the study. It has four findings. The study finds that the concept of innovative technology has been changing since 1960 because the new forms of innovative technology have created historical development in India's agricultural production. This study explained that the innovation technology is very important for the farmer's well-being as this new technology provides tremendous benefits. This study identified several challenges which have been faced by the farmers as well as the government while implementing digital technology across the country. This study also finds that the workforces have been diverting to allied activities as they have become more aware of it.

Conclusion :

It is clear that new technology is emerging in the Indian agricultural sector but still many rural areas are out of touch with its benefits. So there are needs for spectacular changes in agricultural areas and also to make it more vibrant by diversification. Agriculture production should be linked with the marketing of the manufacturing sector, the manufacturing sector to the tertiary sector rapidly through the use and accessibility of launched innovative technology.

Reference :

- Bertoglio, R., Corbo, C., Renga, F. M., & Matteucci, M. (2021). The Digital Agricultural Revolution: A bibliometric analysis of literature review.
- Duguma, A. L., & Bai, X. (2024). How the Internet of Things technology improves agricultural efficiency. Artificial Intelligence Review, 58, 63.
- Padhiary, M., Kumar, A., & Sethi, L. N. (2025). Emerging technologies for smart and sustainable precision agriculture. Discover Robotics, 1(6).
- Pandey, S., & Mishra, S. (2024). Understanding innovation and technological adoption in

agriculture: A systematic literature review with thematic analysis. European Economic Letters, 14(1). European Economic Letters

- Raj, M., & Prahadeeswaran, M. (2025). Revolutionising agriculture: A review of smart farming technologies for a sustainable future. Discover Applied Sciences, 7, 937.
- Rizzo, G., Migliore, G., Schifani, G., & Vecchio, R. (2024). Key factors influencing farmers' adoption of sustainable innovations: A systematic literature review and research agenda. Organic Agriculture, 14, 57–84.
- Spanaki, K., Sivarajah, U., Fakhimi, M., Despoudi, S., & Irani, Z. (2022). Disruptive technologies in agricultural operations: A systematic review of AI-driven AgriTech research. Annals of Operations Research, 308, 491–524.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 54-59

गोरखा एकीकरण के दौरान भारतीय राजवाड़ों की भूमिका : एक ऐतिहासिक–राजनीतिक अध्ययन

डॉ. जितेन्द्र कुमार
सहायक आचार्य, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग,
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

सारांश :

अठारहवीं शताब्दी में पृथ्वीनारायण शाह के नेतृत्व में नेपाल का एकीकरण दक्षिण एशिया के राजनीतिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस प्रक्रिया में जहाँ एक ओर गोरखा शक्ति का सैन्य और कूटनीतिक कौशल निर्णायक रहा, वहीं दूसरी ओर उत्तर भारत के सीमावर्ती भारतीय राजवाड़ों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण रही। यह शोध गोरखा एकीकरण (1740–1816) के दौरान भारतीय राजवाड़ों विशेषकर कुमाऊँ, गढ़वाल, अवध तथा गोरखपुर क्षेत्र की राजनीतिक, सैन्य और आर्थिक नीतियों का विश्लेषण करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इन राजवाड़ों ने गोरखा विस्तार के प्रति न तो पूर्ण समर्थन दिया और न ही पूर्ण विरोध किया, बल्कि उन्होंने परिस्थितियों के अनुसार "संतुलन की यथार्थवादी नीति" अपनाई। शोध में यह भी पाया गया है कि भारतीय राजवाड़े गोरखा राज्य और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच एक "बफर जोन" के रूप में कार्य कर रहे थे। व्यापारिक संबंधों, सीमावर्ती संघर्षों तथा कूटनीतिक संतुलन के माध्यम से उन्होंने क्षेत्रीय स्थिरता बनाए रखने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त एंग्लो–नेपाल युद्ध के दौरान भारतीय राजवाड़ों की भूमिका निर्णायक रूप से ब्रिटिश पक्ष की ओर झुकी, जिसके परिणामस्वरूप गोरखा राज्य की विस्तारवादी नीति पर नियंत्रण स्थापित हुआ और सुगौली संधि (1816) के माध्यम से आधुनिक नेपाल की सीमाएँ निर्धारित हुईं। गोरखा एकीकरण केवल एक राष्ट्रीय प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि यह एक व्यापक क्षेत्रीय शक्ति–संघर्ष था, जिसमें भारतीय राजवाड़ों ने अपने हितों की रक्षा हेतु संतुलन, कूटनीति और व्यावहारिकता पर आधारित नीति अपनाई। यह अध्ययन आधुनिक भारत–नेपाल संबंधों तथा सीमा–राजनीति को समझने के लिए भी महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

मुख्य शब्द :– पृथ्वीनारायण शाह, गोरखा एकीकरण, भारतीय राजवाड़े, ईस्ट इंडिया कंपनी, एंग्लो–नेपाल युद्ध।

प्रस्तावना –

अठारहवीं शताब्दी में पृथ्वीनारायण शाह के नेतृत्व में नेपाल का एकीकरण दक्षिण एशिया के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस प्रक्रिया में केवल आंतरिक गोरखा शक्ति ही निर्णायक नहीं थी, बल्कि भारत के सीमावर्ती राजवाड़ों विशेषकर उत्तर भारत के छोटे–छोटे राज्योंकृकी भूमिका भी महत्वपूर्ण रही। गोरखा विस्तार और भारतीय रियासतों के बीच संबंध सहयोग, संघर्ष और रणनीतिक संतुलन तीनों रूपों में दिखाई देते हैं। नेपाल

क्षेत्र कई छोटे राज्यों में विभाजित था। पृथ्वीनारायण शाह ने 1743 के बाद एकीकरण अभियान शुरू किया। उसी समय भारत में मुगल साम्राज्य का पतन और ईस्ट इंडिया कंपनी का उदय हो रहा था इस अस्थिरता ने सीमा क्षेत्रों को राजनीतिक रूप से अत्यंत संवेदनशील बना दिया। इस संक्रमणकालीन दौर में उत्तर भारत के सीमावर्ती भारतीय राजवाड़े अवध, गोरखपुर, कुमाऊँ–गढ़वाल बिहार और तराई क्षेत्र के छोटे राज्य ने गोरखा विस्तार के प्रति विविध प्रतिक्रियाएँ दीं, जो इस शोध का मुख्य केंद्र है।

शोध के उद्देश्य –

- गोरखा एकीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करना।
- भारतीय राजवाड़ों (अवध, कुमाऊँ, गढ़वाल आदि) की भूमिका का अध्ययन।
- गोरखा–भारतीय संबंधों के सैन्य, आर्थिक और कूटनीतिक आयामों का विश्लेषण।
- एंग्लो–नेपाल युद्ध में भारतीय राजवाड़ों की भूमिका स्पष्ट करना।
- आधुनिक भारत–नेपाल संबंधों पर इसके प्रभावों का मूल्यांकन।

शोध प्रश्न –

- क्या भारतीय राजवाड़ों ने गोरखा एकीकरण में सक्रिय भूमिका निभाई?
- उनकी नीति "संतुलन" पर आधारित थी या "स्वार्थ" पर?
- क्या भारतीय राजवाड़े गोरखा विस्तार को रोक सकते थे?
- क्या भारतीय राजवाड़े गोरखा विस्तार को रोक सकते थे?
- गोरखा एकीकरण पर ब्रिटिश नीति का क्या प्रभाव पड़ा?
- क्या यह प्रक्रिया आधुनिक भारत–नेपाल सीमा विवादों से जुड़ी है?

शोध परिकल्पना –

भारतीय राजवाड़ों ने गोरखा एकीकरण के दौरान "संतुलन की यथार्थवादी नीति (Realist Balance Strategy) अपनाई, जिसका उद्देश्य अपने क्षेत्रीय हितों की रक्षा करना था, न कि किसी एक शक्ति का पूर्ण समर्थन करना।

भारतीय राजवाड़ों की प्रमुख भूमिकाएँ –

ब्रिटिशकालीन भारत में गोरखा एक प्रमुख सैन्य जाति के रूप में सामने आये। कुल 1,40,797 वर्ग किमी क्षेत्र में फैले नेपाल, जिसका अधिकांश क्षेत्र पहाड़ी है प्रारम्भ से ही दो बड़ी संस्कृतियों तिब्बती मंगोलीय एवं इन्डो आर्य का समन्वय माना जाता रहा है। नेपाल के उत्तर में वसने वाली शेरपा तथा भोटिया पश्चिमी क्षेत्र में बसने वाली गुरंग तथा खस पूर्वी क्षेत्र में बसी थारू और बोक्सा जातियों से मिलकर नेपाली समाज का निर्माण हुआ है। प्राचीन काल से लिच्छवी मल्ल आदि वंशों ने यहाँ शासन किया। 12वीं सदी में भारत में हो रहे तुर्क आक्रमणों और उनके द्वारा अपमानित होने के भय से कुछ राजपूत सुदूर नेपाल में जाकर बसने लगे। ये सर्वप्रथम पालपा में बसे और तत्पश्चात् धीरे–धीरे पालपा से जुड़े क्षेत्रों को अपने अधिकार में लेकर इन्होंने अपनी सीमाओं को फैलाया। सन् 1559 में द्रव्यशाह ने 'गोरखा शहर' पर अधिकार कर अपनी पहचान को 'गोरख्याली' शब्द के साथ जोड़ा। गोरखा कोई एक विशेष जाति नहीं थी वरन इन दिनों आये तथा पहले बसे मानव समूह गोरखा कहलाने लगे। इसमें से कुछ जातियाँ स्वभाव में लड़ाकू रही थी। अपने पड़ोसी पहाड़ी क्षेत्रों में लूटपाट तथा मारकाट करने

वाली यह जाति भौगोलिक परिस्थितियाँ और राजपूती परम्परा से सम्बद्ध होने के कारण अपनी सैन्य प्रतिभा का प्रदर्शन लाई थी। गोरखा अपनी वीरता के कारण सर्वप्रथम स्थानीय (नेपाली) सेना में भर्ती हुये और इनकी सैन्य जाति के रूप में पहचान बनने लगी। धीरे–धीरे उनकी महत्वाकांक्षा बढ़ने लगी। 18वीं शताब्दी में पृथ्वी नारायण शाह गोरखा जाति का पहला साम्राज्यवादी शासक बना। इस समय काठमान्डू घाटी तीन विभिन्न राज्यों में विभक्त थी। काठमाण्डू, पाटन और भट्टगाँव। शेष प्रदेश को नेपाल के नाम से जाना जाता था जो मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्र था। पृथ्वी नारायण शाह एक महत्वाकांक्षी शासक था और एक विशाल साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न देखता था। 1769 तक उसने सम्पूर्ण नेपाल पर विजय प्राप्त कर अपने स्वप्न को साकार रूप प्रदान किया। अब वह नेपाल से बाहर साम्राज्य विस्तार का सपना देखने लगा। लेकिन उसकी अचानक मौत हो गयी और दूसरे गोरखा शासकों ने इस स्वप्न को पूरा करने की ठानी। 1812 तक गोरखा साम्राज्य की सीमाएँ काफी फैल गयी थी लेकिन अब कम्पनी सरकार गोरखा साम्राज्य विस्तार के पूर्णतया विरुद्ध थी, तथा किसी न किसी बहाने गोरखों से संघर्ष का इरादा रखती थी। तब गोरखों ने अपना साम्राज्य विस्तार नेपाल से दक्षिण की तरफ किया। कम्पनी इस हस्तक्षेप को सहन न कर सकी। अतः कम्पनी सरकार और गोरखों के मध्य कुछ गाँवों को लेकर सीमा विवाद पैदा हो गया। इस विवाद ने अन्त में नेपाल युद्ध (1814–16) का रूप ले लिया।

इस युद्ध की रूपरेखा तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा तैयार की गयी। इस युद्ध का अन्त सुगौली की सन्धि के साथ हुआ। 1816 में इस सन्धि को स्वीकृति मिल गयी। इसके द्वारा काली नदी को ब्रिटिश भारत तथा नेपाल के बीच की सीमा–रेखा मान लिया गया। सुगौली की सन्धि से अंग्रेजों को दोतरफा फायदा हुआ, पहला कुमाऊँ–गढ़वाल जैसे पर्वतीय प्रदेश तथा व्यापारिक महत्वांकाक्षा को बढ़ावा देने वाले क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन हो गये और दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि एक लड़ाकू जाति (सैन्य जाति) की प्राप्ति। युद्ध के दौरान गोरखों की वीरता का प्रदर्शन अंग्रेजों को सराहनीय लगा। अतः नेपाल युद्ध के दौरान गोरखों की शौर्य गाथाएं अंग्रेजों के मन–मस्तिष्क पर उतर गयी। कम्पनी जो भारत में एकछत्र राज्य स्थापित करने का सपना देख रही थी, कम्पनी भली भाँति जानती थी कि यदि गोरखों से मित्रता की जाये और उन्हें अपनी सेवा में लिया जाय तो भविष्य में यह कम्पनी के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा तथा गोरखों की शक्तिशाली सेना की मदद से वे पूरे हिन्दूस्तान पर एकछत्र राज्य स्थापित करने में सफल होंगे। गोरखों को 'इण्डियन आर्मी' में शामिल करने का पहला प्रस्ताव प्रस्तुत करने का श्रेय आक्टरलोनी को जाता है।

अतः सर्वप्रथम सिरमूर बटालियन की नींव रखी गयी। फिर नसीरी पलटन (मित्र सेना) की तीन बटालियनों की स्थापना कर गोरखा रेजीमेन्ट की नींव रखी गयी। प्रत्येक बटालियन की आठ कम्पन्यों में 120 अस्थाई सैनिक रखे गये। इन बटालियनों में से प्रथम को प्रथम नसीरी रेजीमेन्ट तथा द्वितीय को 'द्वितीय नसीरी रेजीमेन्ट' नाम दिया गया। इन्हीं दिनों शिमला के पास दो बटालियनों वाली एक रेजीमेन्ट स्थापित की गयी। इसके अतिरिक्त एक अलग वटालियन कुमाऊँ (अल्मोड़ा) में बनायी गयी। यही बटालियन आगे चलकर कुमाऊँ प्रोविन्सियल कोर कहलाई। इस बटालियन में गोरखों के अतिरिक्त कुमाऊँनियों और गढ़वालियों को भी भर्ती किया गया था। यद्यपि सर्वप्रथम स्थापित की गयी इन अस्थाई बटालियनों से ब्रिटिश भारत में गोरखा रेजीमेन्ट की नींव तो रखी गयी परन्तु नेपाल द्वारा भविष्य में और भर्ती की आज्ञा नहीं दी गयी। 1817 में तृत्तीय ऐंग्लो–मराठा युद्ध के समय अंग्रेजों को सेना के विस्तार की आवश्यकता महसूस हुई अतः यहीं से सेना में गोरखों की अवैध भर्ती की शुरुआत

हुई जो 1886 तक चलती रही। 1825 में एडवर्ड पैगेट भारतीय सेना के कमाण्डर इन चीफ नियुक्त हुये। उन्होंने एक प्रस्ताव रखा कि नेपाल से सीधी भर्ती करके गोरखा रेजीमेण्ट का विस्तार किया जाये, ताकि कुछ और नयी बटालियनों का निर्माण किया जा सके। इसी समय गार्डनर, काठमाण्डू के नये रेजीडेन्ट नियुक्त हुये उन्होंने एक सलाह दी कि ऐसी भर्ती व्यवस्था के लिए नेपाल के साथ समझौता करना उपयुक्त रहेगा, लेकिन समस्या का समाधान नहीं हो पाया। 1833 में रेजीडेन्सी का कार्यभार हडसन ने सभाँला और उसने गोरखों मुख्यतया गुरंग जाति को भारतीय सेना में एक नियमित सैनिक के रूप में भर्ती पर जोर दिया। हडसन का मानना था कि गोरखे सम्पूर्ण एशिया में सर्वाधिक श्रेष्ठ सैनिक साबित हुये हैं, अगर उन्हें अच्छा वेतन एवं पेंशन लाभ दिया जाए तो कम्पनी की सेना में गोरखा सैनिकों की अधिक भर्ती होगी तथा साथ ही उनके ऊपर से नेपाली राष्ट्रीयता का असर भी कम किया जा सकेगा। लेकिन भर्ती की समस्या अभी भी हल नहीं हो पायी। 1850 में नेपाल में राणा प्रशासन स्थापित हुआ। अब कम्पनी सरकार तथा नेपाल दरबार के बीच कुछ मधुरता आने लगी। जिसकी झलक 1857 में विद्रोह के समय देखने को मिली। इस विद्रोह के समय नेपाल द्वारा कम्पनी सरकार की मदद हेतु अपने सैनिक दस्ते भेजे गये। लेकिन गोरखा सैनिकों की भर्ती अभी भी गलत तरीकों से ही होती थी। 1857 के विद्रोह के समय कम्पनी सरकार की विभिन्न रेजीमेन्टों द्वारा विद्रोह कर दिया गया। अतः कम्पनी सरकार ने विद्रोही कौमों की भर्ती को कम करना आरम्भ कर दिया फलस्वरूप गोरखा भर्ती को प्रोत्साहन और बढ़ावा मिलने लगा। बफर स्टेट (Buffer State) की भूमिका– भारतीय राजवाड़े गोरखा राज्य और भारतीय मैदानी शक्तियों के बीच "बफर" बने विशेषकर अवध और तराई क्षेत्र ने गोरखा विस्तार को सीधे रोकने की बजाय संतुलन बनाए रखा स इससे गोरखा विस्तार को प्रारंभिक चरण में अप्रत्यक्ष लाभ मिला।

सैन्य सहयोग और विरोध –

कुछ स्थानीय राजाओं ने गोरखा विस्तार का विरोध किया। विशेषकर कुमाऊँ और गढ़वाल क्षेत्रों में संघर्ष हुआ। उदाहरण : कुमाऊँ और गढ़वाल पर गोरखा आक्रमण स्थानीय राजाओं की हार और गोरखा नियंत्रण स्थापित। इससे स्पष्ट होता है कि सभी भारतीय राजवाड़े सहयोगी नहीं थे। भारतीय राजवाड़ों ने गोरखा और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच संतुलन बनाए रखा। कई बार उन्होंने किसी एक पक्ष का खुला समर्थन नहीं किया। यह "प्राग्मेटिक पॉलिटिक्स" का उदाहरण है। अप्रत्यक्ष ब्रिटिश हस्तक्षेप का माध्यम भारतीय रियासतें ब्रिटिश प्रभाव में आ रही थीं। इनके माध्यम से ईस्ट इंडिया कंपनी को गोरखा गतिविधियों की जानकारी मिलती थी। यह आगे चलकर एंग्लो–नेपाल युद्ध का आधार बना।

गोरखा विस्तार और भारतीय राजवाड़ों के बीच संघर्ष :

(1) कुमाऊँ–गढ़वाल युद्ध – गोरखाओं ने इन क्षेत्रों पर कब्जा किया स्थानीय राजाओं की पराजय।

(2) तराई क्षेत्र पर नियंत्रण – कृषि और राजस्व के लिए महत्वपूर्ण भारतीय राजाओं और गोरखाओं के बीच प्रतिस्पर्धा।

एंग्लो–नेपाल युद्ध में भारतीय राजवाड़ों की भूमिका :

एंग्लो–नेपाल युद्ध के दौरान कई भारतीय राजवाड़े ब्रिटिश पक्ष में रहे उन्होंने गोरखा विस्तार को रोकने में सहायता की परिणामस्वरूप सुगौली संधि (1816) हुई।

निष्कर्ष –

आजादी के तुरन्त बाद भारत में ग्याहरवी गोरखा राइफल का जन्म हुआ। लखनऊ को इसका सेन्टर बनाया गया। भारत के लिए गोरखा सैनिको की भर्ती केन्द्रों से होती रही लेकिन ब्रिटेन ने अपने लिए नये भर्ती केन्द्र खोले लेकिन 1955 में भारत सरकार की सिफारिश पर नेपाल ने इन भर्ती केन्द्रों को बन्द करवा दिया ब्रिटेन को पाँच सालों के लिए नेपाल के अन्दर ही भर्ती की सुविधा प्रदान की गई। फलस्वरूप एक भर्ती केन्द्र पाटन और एक अस्थाई भर्ती केन्द्र पाखली हवा में खोला गया। 1958 में नेपाल ने भर्ती की सुविधा को अगले दस वर्षों के लिए बढ़ा दिया तथा पाखली हवा के भर्ती केन्द्र को बन्द कर नया भर्तीं केन्द्र पोखरा में खोल दिया। आजादी के बाद भारतीय गोरखा राइफलों में अनेक परिवर्तन किये गये। अब गोरखा सैनिकों को भारतीय सैन्य अफसरों के नेतृत्व में भी कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। गोरखा रेजीमेन्टों में अफसरों की कम संख्या को देखते हुए बहुत से सूबेदारों, सूबेदार मेजरों को (जो पढ़े लिखे थे) कमीशन देकर लेफ्टीनेन्ट तथा कैप्टन तक बनाया गया। आजाद भारत में गोरखा सैनिकों ने स्वयं को भारत पाक युद्ध में उलझा हुआ पाया। इसके बाद वे 1962 के भारत–चीन युद्ध, 1965 और 1971 के भारत पाक युद्ध में पुनः सक्रिय रहे और उनके अपूर्व योगदान ने पुनः उन्हें अनेक पुरस्कारों और सम्मानों का हकदार बनाया। गोरखा सैनिकों ने अपनी वीरता, कर्मठता और साहस से न सिर्फ भारत अपितु विश्व के सैन्य इतिहास में अपना विशेष स्थान बनाया है। भारत में सिर्फ गोरखा रेजीमेण्ट ही ऐसी है जो कभी किसी विद्रोह में शामिल नहीं रही। और न ही कभी आन्तरिक रूप से विद्रोह या असन्तोष व्यक्त किया। अपने कर्त्तव्यों के प्रति इस विदेशी जाति ने अपनी सेवा परम्परा और सैन्य आदर्शों को सदैव बनाये रखा।

अतः इनकी कर्मठता, वीरता और प्रतिबद्धता विश्व के सैन्य इतिहास में हमेशा उदाहरण की तरह प्रस्तुत होती रहेगी। वर्तमान समय में गोरखा सैनिक भारत–ब्रिटेन और नेपाल की सीमाओं में कार्य कर रहे है लेकिन ब्रिटिश सरकार अपनी सेवाओं में इनकी संख्या घटा रही है, जो इस वफादार जाति के प्रति एक अनउत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। क्योंकि नेपाल की अर्थव्यवस्था बेहतर न होने के कारण बेरोजगार सैनिकों को रोजगार उपलब्ध कराने की समस्या गम्भीर हो रही है। गोरखा एकीकरण केवल नेपाल की आंतरिक प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि यह एक क्षेत्रीय शक्ति–संघर्ष था जिसमें भारतीय राजवाड़ों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। भारतीय राजवाड़ों ने न तो पूरी तरह समर्थन किया, न ही पूर्ण विरोध उन्होंने अपने हितों के अनुसार "संतुलन की नीति" अपनाई यह प्रक्रिया आगे चलकर भारत–नेपाल संबंधों की नींव बनी।

सन्दर्भ :

1. जोशी, एम० सी० (1986) नेपाल हिमालय जियोलाजिकल पर्सपेक्टिव, पेज– 51
2. ओलफील्ड, एस० ए० (1974) इण्डियन हिस्टोरिकल रिसर्चेज स्कैचेज फ्रॉम नेपाल वाल्यूम, 35, पेज– 44
3. बैन्सोटार्ड एडिन, (1890) द गुरख्याज, पेज–10
4. स्टिलर लुडविग एफ (1975) द राइज ऑफ द हाउस आफ गोरखा, पेज–26
5. रतूड़ी, हरिकृष्ण (1928) गढ़वाल का इतिहास, पेज– 213
6. चौधरी, रमाकान्त (1960) ऍग्लो नेपाली रिलेशन्स, पेज–69
7. कर, एच० सी० (1990) मिलेट्री हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पेज– 450

8. एटकिन्सन, ई० टी० (1973) हिमालयन गजेटियर वाल्यूम,6 पेज– 625–26
9. सिंह, राजेन्द्र (1963) हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन आर्मी, पेज–28
10. चौन्ट क्रिटोफर (1935) गुरखा दि इनस्टैन्ट हिस्ट्री ऑफ एन एलाइट फाइटिंग फोर्स, पेज–56
11. जी० ए० डी० डिपार्टमेण्ट, (1919) फाइल संख्या, 704 रिक्रूटमेण्टस ऑफ डोटियाल्स, पेज–16
12. Shaha, R. (1990). Modern Nepal: A political history 1769–1955 (Vol. 1). New Delhi: Manohar Publications.
13. Stiller, L. F. (1973) The rise of the House of Gorkha: A study in the unification of Nepal, 1768–1816. Kathmandu: Human Resources Development Research Centre.
14. Ratudi, H.K.(1980) Garhwal ka itihas ,History of Garhwal. Dehradun: Winsar Publishing.
15. Pradhan, K.L.(1991) Thapa politics in Nepal With special reference to Bhim Sen Thapa, 1806–1839, New Delhi.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 60-64

भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी का स्थान

ज्योति

सहायक प्रोफेसर, आर. पी.एस. कॉलेज ऑफ एजुकेशन खोड. अटेली मंडी (महेंद्रगढ़) हरियाणा

सारांश (Abstract)

भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी को अत्यंत सम्माननीय और महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों, वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत तथा बौद्ध और जैन साहित्य में नारी को ज्ञान, शक्ति, करुणा, सृजन और संस्कृति की वाहक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी का अधिकार प्राप्त था। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी विदुषियो ने भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय संस्कृति में नारी को देवी स्वरूप माना गया है। सरस्वती ज्ञान की, लक्ष्मी समृद्धि की तथा दुर्गा शक्ति की प्रतीक है। यह परंपरा नारी के प्रति सम्मान और आदर की भावना को दर्शाती है। रामायण की सीता, महाभारत की द्रौपदी तथा अन्य महान नारियों के चरित्र भारतीय समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

यद्यपि मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति में कुछ गिरावट आई, फिर भी अनेक महिलाओं ने अपने साहस, नेतृत्व और ज्ञान से समाज को नई दिशा दी। आधुनिक भारत में महिलाओं ने शिक्षा, विज्ञान, राजनीति, साहित्य और खेल के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त कर भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों को आगे बढ़ाया है। अतः भारतीय ज्ञान परंपरा नारी को केवल परिवार की आधारशिला नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास की प्रमुख शक्ति मानती है। वर्तमान समय में नारी सम्मान, समानता और सशक्तिकरण के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा के आदर्श अत्यंत प्रासंगिक और प्रेरणादायक है।

बीज शब्द (Keywords) :

भारतीय ज्ञान परंपरा, नारी, वैदिक काल, गार्गी, मैत्रेयी, नारी सशक्तिकरण, भारतीय संस्कृति, शिक्षा, समाज।

प्रस्तावना :

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध परंपराओं में से एक है। यह परंपरा केवल शिक्षा, दर्शन और आध्यात्मिकता तक समिति नहीं है, बल्कि जीवन के प्रत्येक पक्ष को अपने भीतर समाहित करती है। भारतीय संस्कृति में नारी को विशेष सम्मान और गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। यहाँ नारी को केवल परिवार की आधारशिला हि नहीं, बल्कि ज्ञान, शक्ति, समृद्धि और सृजन की प्रतीक माना गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी को देवी स्वरूप माना गया है। यही कारण है कि ज्ञान की देवी सरस्वती, शक्ति की देवी दुर्गा तथा धन की देवी लक्ष्मी की पूजा की जाती है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में नारी को समाज और संस्कृति की

संरक्षिका तथा मानव सभ्यता की निर्माता माना गया है।

1. भारतीय ज्ञान परंपरा का अर्थ :

भारतीय ज्ञान परंपरा का तात्पर्य उस ज्ञान–संपदा से है जो वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण, महाभारत, बोद्ध एवं जैन साहित्य तथा अन्य प्राचीन ग्रंथो में निहित है। इस परंपरा का मूल उद्देश्य मानव जीवन को सत्य, धर्म, ज्ञान और नैतिक मूल्यों के मार्ग पर चलाना है।

भारतीय चिंतन में नारी को पुरुष की सहधर्मिणी, सहयोगी और सम्मान भागीदार माना गया है। परिवार, समाज और राष्ट्रीय के निर्माण में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया गया है।

2. वैदिक काल में नारी का स्थान :

वैदिक काल को भारतीय इतिहास में नारी के स्वर्णिम युग के रूप में देखा जाता है। इस काल में महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने तथा समाज के विभिन्न कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाने का अधिकार था।

वैदिक काल की प्रमुख विशेषताएं :–

1. महिलाओं को वेद अध्ययन का अधिकार प्राप्त था।
2. वे यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थी।
3. उन्हें विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता थी।
4. विवाह के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार था।
5. समाज में उन्हें सम्मानजनक स्थान प्राप्त था।

वैदिक विदुषियाँ

1. गार्गी :

गार्गी वैदिक युग की प्रसिद्ध विदुषी थी। उन्होंने दार्शनिक विषयों पर गहन अध्ययन किया और विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ किए। उनका नाम ज्ञान और बुद्धिमत्ता का प्रतीक माना जाता है।

2. मैत्रेयी :

मैत्रेयी एक महान दार्शनिक और विदुषी थी। उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान को भौतिक संपत्ति से अधिक महत्वपूर्ण माना। उनके विचार आज भी प्रेरणादायक है।

3. लोपामुद्रा :

लोपामुद्रा ऋग्वेद की प्रसिद्ध ऋषिका थी। उनके द्वारा रचित मंत्र ऋग्वेद में संकलित है। यह दर्शाता है कि महिलाओं का साहित्य और ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान था।

3. भारतीय शास्त्रों में नारी का महत्व :

भारतीय शास्त्रों में नारी को अत्यंत सम्मानित स्थान दिया गया है।

मनुस्मृति में कहा गया है– "**यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता**"।

अर्थात् जहां नारी का सम्मान होता है, वहां देवताओं का निवास होता है। यह श्लोक भारतीय समाज में नारी के महत्व और गरिमा को स्पष्ट करता है। नारी को परिवार और समाज की उन्नति का आधार माना गया है।

4. **देवी स्वरूप में नारी :**

भारतीय संस्कृत में नारी को देवी के रूप में पूजा जाता है।

1. **माँ सरस्वती :**

ज्ञान, विद्या और कल की देवी है। शिक्षा और बुद्धि की अधिष्ठात्री मानी जाती है।

2. **माँ लक्ष्मी :**

धन, स्मृद्धि और सौभाग्य की देवी है। उन्हें परिवार की खुशहाली का प्रतीक माना जाता है।

3. **माँ दुर्गा :**

शक्ति और साहस की प्रतीक है। वे अन्याय और अधर्म के विरुद्ध संघर्ष का संदेश देती है।

इन देवियों की पूजा भारतीय समाज में नारी के प्रति आदर और सम्मान को दर्शाती है।

5. **रामायण और महाभारत काल में नारी :**

1. **रामायण में माता–सीता** त्याग, धैर्य, मर्यादा और आदर्श जीवन का प्रतीक है। उन्होंने कठिन परिस्थितियों में भी अपने कर्तव्य का पालन किया।
2. **महाभारत में द्रौपदी** साहस, आत्मसम्मान और न्याय की प्रतीक है। उन्होंने अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई और धर्म की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
3. **कुंती** कुंती धैर्य, त्याग और मातृत्व का आदर्श उदाहरण है। उन्होंने अनेक कठिनाइयो का सामना करते हुए अपने पुत्रों का मार्गदर्शन किया।

6. **बौद्ध और जैन परंपरा में नारी :**

1. **बौद्ध परंपरा** के अंतर्गत भगवान बुद्ध ने महिलाओं को संघ में प्रवेश की अनुमति दी। इससे महिलाओं को शिक्षा और आध्यात्मिक उन्नति का अवसर प्राप्त हुआ।
2. **जैन परंपरा :** जैन धर्म में भी महिलाओं को आध्यात्मिक साधना और मोक्ष प्राप्ति का अधिकार दिया गया। अनेक जैन साध्वियो ने धर्म के प्रचार– प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

7. **मध्यकालीन भारत में नारी :**

मध्यकाल में अनेक सामाजिक राजनीतिक कारणों से महिलाओं की स्थिति में कुछ गिरावट आई। फिर भी कई महिलाओं ने अपने शाहस और नेतृत्व सें इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान बनाया।

कुछ प्रमुख महिलाएँ, जैसे –

1. **रजिया सुल्तान :** दिल्ली सल्तनत की पहली और एकमात्र महिला शासक थी। उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता साहस और कुशल प्रशासन से यह सिद्ध किया कि महिलाएँ भी सफल नेतृत्व कर सकती है।
2. **मीराबाई :** मध्यकालीन भारत की प्रसिद्ध कृष्ण भक्त और कवयित्री थी। उनकी रचनाओं ने भक्ति साहित्य को समृद्ध किया और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का संदेश दिया।

इन महिलाओं ने समाज को एक दिशा प्रदान की।

8. **आधुनिक भारत में नारी :**

आधुनिक भारत में महिलाओं ने शिक्षा, विज्ञान, राजनीति, साहित्य, खेल और प्रशासन के क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त की है।

कुछ प्रमुख उदाहरण जैसे :–

1. **सावित्रीबाई फुले :** भारत की पहली महिला शिक्षिकाओं में से एक थी। उन्होंने महिलाओं और वंचित वर्गों की शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया तथा सामाजिक सुधार आंदोलन का नेतृत्व किया।
2. **सरोजिनी नायडू :** भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की सबसे प्रमुख नेता थी अपनी प्रभावशाली कविताओं और नेतृत्व क्षमता के कारण उन्हे ''भारत कोकिला'' कहा जाता है।
3. **कल्पना चावला :** विज्ञान और अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में महिलाओं की उपलब्धियाँ का प्रतीक है। उन्होंने भारतीय युवाओं, विशेषकर लड़कियों को बड़े सपने देखने और उन्हें पूरा करने की प्रेरणा दी।

इन महिलाओं ने भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्य को आधुनिक युग में आगे बढ़ाया।

9. भारतीय ज्ञान परंपरा और नारी सशक्तिकरण :

- भारतीय ज्ञान परंपरा नारी को केवल अधिकारी नहीं देती, बल्कि उसे समाज के निर्माण की शक्ति भी मानती है।
- नारी सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं को शिक्षा, सम्मान अवसर, अधिकार और आत्मनिर्भरता प्रदान करना है, ताकि वे समाज में सम्मानपूर्वक और स्वतंत्रता रूप से जीवन जी सके।
- नारी सशक्तिकरण से महिलाओं का विकास होता है जिससे परिवार, समाज और राष्ट्र की प्रगति सुनिश्चित होती है।
- आज नई शिक्षा नीति (NEP 2020) की महिला शिक्षा और समान अवसरों पर विशेष बल देती है।

10. निष्कर्ष :

भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी को सदैव सम्मान, गरिमा और उच्च स्थान प्राप्त है। वैदिक काल की विदुषियों से लेकर आधुनिक भारत की सफल महिलाओं तक, नारी ने ज्ञान, संस्कृति और समाज के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय संस्कृति का मूल संदेश है की नारी केवल परिवार की आधारशिला नहीं, बल्कि संपूर्ण समाज और राष्ट्र की प्रगति का केंद्र है।

यदि भारतीय ज्ञान परंपरा के आदर्शों को सही रूप से अपनाया जाए, तो महिलाओं के सम्मान, समानता और सशक्तिकरण को और अधिक बढ़ावा मिल सकता है।

अतः हमे नारी के प्रति सम्मान, समानता और सहयोग की भावना को विकसित करना चाहिए ताकि एक सशक्त, समृद्ध और समतामूलक समाज का निर्माण हो सके।

संदर्भ (References)

1. ऋग्वेद।
2. यजुर्वेद।
3. बृहदारण्यक।
4. उपनिषद।

5. रामायण।
6. महाभारत।
7. मनुस्मृति।
8. University Grants Commission. भारतीय ज्ञान परंपरा अध्ययन सामग्री।
9. Ncert.nic.in. इतिहास एवं भारतीय संस्कृति संबंधी पाठ्य सामग्री।
10. Indianculture.gov.in. भारतीय सांस्कृतिक विरासत एवं विज्ञान परंपरा।
11. Indianculture.gov.in. भारतीय संस्कृति से संबंधित आधिकारिक जानकारी।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 65-69

Tourism Perspective of Madhya Pradesh : Government Efforts

Krishnakant Sharma, Author
Akash Pandey, Co-Author
Research Scholar, School of Social Sciences, DAVV Indore (M.P)

Abstract :

Madhya Pradesh, the "Heart of Incredible India," is rising to prominence on the world tourism map thanks to its rich folk traditions, religious and cultural sites, historical riches, and an abundance of natural resources. Madhya Pradesh is home to beautiful landscapes, a rich cultural legacy, a wide variety of historical sites, fauna, and sacred places. Madhya Pradesh is a veritable gold mine of architectural wonders and cultural legacy, with a history stretching back thousands of years. The state's majestic forts, palaces, and temples serve as reminders of its illustrious past.

The Madhya Pradesh tourist Policy 2025, which aims to restructure tourist operations and investment plans, is at the center of this change.

Madhya Pradesh is a prime example of how tourism can strike a balance between modern innovation, community empowerment, and history preservation. The state has something to offer everyone, whether it's strolling through UNESCO monuments, discovering village life, seeing a tiger in the wild, or finding comfort in spirituality.

Keyword's :

Madhya Pradesh, Tourism, Heritage Sites, Religious Tourism, MP Government, Government of India.

Research Methodology :

This study examines Madhya Pradesh's tourism potential from a cultural, spiritual, and strategic standpoint using a qualitative and exploratory research methodology. The following elements form the foundation of the methodology :

1. **Gathering Secondary Data :** Information was gathered from reliable sources, such as :
   - Reports from the Indian government's Ministry of Tourism
   - Annual tourist data and publications from the Madhya Pradesh Tourism Board.

2. Articles from MPinfo.org :

Introduction :

Madhya Pradesh is India's second-largest state in terms of area. Madhya Pradesh is part of the ancient Gondwana landmass. It is among the planet's oldest regions. Primitive individuals from the Stone Age lived in Madhya Pradesh. Many Places in Madhya Pradesh have evidence of ancient Chalcolithic civilization, megaliths, etc. Many regions of Madhya Pradesh were part of great empires like the Mauryans, Guptas, Mughals, British Empire, etc.

The state topography has plateaus with the Vindhya and Satpura mountain ranges, eastern lowlands, winding rivers, rugged hills and ravines, as well as the largest forest area among states, having 12 National Parks and 9 Tiger reserves attracting wildlife enthusiasts. Madhya Pradesh is the home of globally recognized 3 UNESCO World Heritage Sites in the permanent list and 15 in the tentative list. Madhya Pradesh is becoming the new tourism powerhouse of India. Between 2020 and 2024, the state had a remarkable 526% increase in visitor numbers. Over 13.41 crore tourists visited the state's diverse cultural, natural, and historical sites in 2024, including 32.8 million foreign tourists. Tourism plays a key role in linking people. Tourism in Madhya Pradesh today exemplifies the concept of "Vikas bhi, Virasat bhi," in which development coexists with historical conservation, sustainability, and inclusion.

Review of Literature :

Every literature related to tourism in Madhya Pradesh represents a bright sight of the sector, predicting immense growth and as a hotspot for attracting tourists due to its vividly rich sub-sector offering choices like Natural Sites, Religious Places, Medical Tourism, etc., having a spillover effect on economy, infrastructure, job creation, etc.

Objective :

- To provide an overview of tourism related to Madhya Pradesh.
- To study government efforts for promoting tourism in Madhya Pradesh.
- Identifying Major Tourist Hotspots of Madhya Pradesh.

Scenario of Tourism in Madhya Pradesh :

Madhya Pradesh, as its name implies, is located in the heart of India. Every year, the state celebrates Madhya Pradesh Tourism Day on 24th May. The state provides all of the major pillars of Indian tourism, including adventure sports, pilgrimage, wildlife, heritage, and Buddhism. Madhya Pradesh is home to a legacy of timeless beauty passed down from the golden rulers of India. Forts that are at least 2,000 years old, erotic sculptures that are simply amazing, Buddhist relics that are difficult to locate, caves that contain the splendour of nature, locations that depict India's rich traditions, and paintings that commemorate human existence are some of Madhya Pradesh's main draws. Travellers

will come across architectural marvels, including forts, palaces, and museums that are difficult to discover anywhere else in India.

Sector Highlights :

1) Heart of Incredible India home to World Heritage sites, holy sites, waterfalls'.
2) Rich Cultural & Natural Heritage: 2 Jyotirlingas, 9 tiger reserves, 12 national parks, 3 biosphere reserves.
3) Wildlife Capital: Known as the Tiger, Vulture, Leopard, Gharial & Cheetah State.
4) Rising Tourism: Mahakal Lok, Ujjain – footfall growth from 9.6 lakh (2021) to 6.5 crore (2024).

Additionally, MP has received recognition for its tourism initiatives; from 2015 to 2017, it won the Best Tourism State National Award three times in a row. To take tourism to the next level, the state government founded the Madhya Pradesh Tourism Board (MPTB) in 2017. The MPTB focuses on building skills, finding and developing tourist locations and infrastructure, supporting sustainable tourism practices, and marketing destinations to both domestic and foreign travellers using a variety of advertising mixes. The Board's main goals are to enhance tourism through sustainable public-private partnerships, investor facilitation, skill development, national and international publicity and promotion of tourist attractions, and the identification and development of tourism infrastructure. Madhya Pradesh Tourism adopted several campaigns, out of which some became major creative and attracted tourists to Madhya Pradesh, as follows :

- **Hindustan Ka Dil Dekho (2006)**
- **MP Ajab Hai, Sabse Gajab Hai (2010) :** A popular series of rural advertisements that showcase the state's distinctive, charming, and uncommon cultural events.
- **Rang Hai Malang Hai (2013)**
- **MP Mein Dil Hua Bacche Sa (2016) :** An award-winning, nostalgic campaign that sparked children's interest in the state by fusing handcrafted miniatures with captivating stories.
- A digital post-lockdown campaign called Intezaar Aapka (2020) welcomes visitors back to the state's natural and cultural sites.
- The 'PM Shri Tourism Air Service' is to enhance connectivity for tourist destinations.

Recently, the state government has adopted policy initiatives to enhance Madhya Pradesh's standing as a top travel destination, with two major policies :

A) The Madhya Pradesh Tourism Policy 2025 :

The Madhya Pradesh Tourism Policy 2025 offers a comprehensive road map for making the state a premier travel destination by promoting private investment, improving tourist infrastructure, and encouraging sustainable and immersive travel.

The policy aims to :

- Restore and Promote Heritage Sites : Supporting conservation efforts and promoting cultural tourism.
- Hold cultural festivals that showcase local music, art, and culture to attract tourists.
- Build Heritage Hotels: Encouraging the adaptable transformation of old buildings into hotels.

B) The Madhya Pradesh Film Tourism Policy 2025 :

In order to create new employment and investment opportunities, Madhya Pradesh was designated as a top location for both domestic and foreign film productions by the Film Tourism Policy–2025. In addition to using film to promote tourism, this approach will give local artists, technologists, and youth opportunities.

Additionally, the state budget of year 2026-27 shows the commitment of the state towards promoting tourism is clearly visible through provisions made in the budget as follows :

Rs 13,851 crore funds allocated for Simhastha 2028 (The Ujjain Simhastha 2028 will be held on the sacred banks of the Shipra River for more than two months, from March 27 to May 27, 2028. Madhya Pradesh has set aside Rs 2,055 crore for tourist purposes. Budget allocates Rs 50 crore for projects in Gwalior, Bhojpur, Bundelkhand, and Khajuraho that promote religious and cultural tourism. 9,600 persons have already benefited from the MP Tirth Darshan Yojana.

Government of India's schemes and projects related to Madhya Pradesh :

To enhance and promote tourism in the State of Madhya Pradesh, the Ministry of Tourism, Government of India, has launched several projects under its various schemes.

The Ministry offers Central Financial Assistance (CFA) to State Governments, Union Territory (UT) Administrations, and Central Agencies under its programs, such as Swadesh Darshan and PRASHAD, for the development of infrastructure, thematic tourism circuits, and the comprehensive development of designated pilgrimage and heritage sites. The projects under these schemes are chosen for development after consulting with the State Governments and UT Administrations.

- **Swadesh Darshan Scheme projects in Madhya Pradesh :**
- **Wildlife Circuit -** Development of Wildlife Circuit at Panna- Mukundpur – Sanjay - Dubri- Bandhavgarh- Kanha- Mukki- Pench in Madhya Pradesh.
- **Buddhist Circuit -** Development of Buddhist Circuit in Sanchi- Satna-Rewa- Mandsaur- Dhar in Madhya Pradesh.
- **Heritage circuit -** Development of Heritage Circuit (Gwalior – Orchha – Khajuraho – Chanderi – Bhimbetka – Mandu), Madhya Pradesh.
- **Eco Circuit -** Development of Gandhisagar Dam - Mandleshwar Dam - Omkareshwar Dam - Indira Sagar Dam- Tawa Dam- Bargi Dam- Bheda Ghat- Bansagar Dam- Ken River under the

Eco Circuit theme.

- **PRASHAD SCHEME (Pilgrimage Rejuvenation and Spiritual Heritage Augmentation Drive) Projects :**
- Development of Omkareshwar.
- Khajuraho in Madhya Pradesh is one of the places that the Ministry of Tourism has recognised for development as an Iconic Tourist Site.

To ensure better connectivity to the tourist attractions, the Ministry provides funding for the development of last-mile connectivity, helipads, jetties, wayside amenities, cruises, parking, battery-operated vehicles, etc.

Findings -

Madhya Pradesh, also known as "The Heart of Incredible India," offers a plethora of tourism options and is rich in wildlife, spirituality, legacy, and natural beauties, a convergence of culture, heritage, wildlife, pilgrimage, leisure, and adventure. By 2028, tourism is expected to expand to 5% of GDP. With major investments in infrastructure and cooperation, Madhya Pradesh's tourism industry is expected to contribute 8–10% of the state's GDP by 2047.

Conclusion -

Madhya Pradesh has positioned tourism as a growth engine that connects infrastructure, legacy, spirituality, nature, and rural life, connecting people rather than just an industry. The Madhya Pradesh Tourism is playing an anchor role in promoting tourism, be it through its interactive ad campaigns, policy measures, etc.

References

- https://www.mpinfo.org/Home TodaysNews?newsid=%C2%B2%C2%B0%C2%B2%C2%B5%C2%B0%C2%B8%C2%B2%C2%B8%C3%8E%C2%B1%C2%B9%C2%B2&fontname=%C3%86%C3%AF%C3%AE%C3%B4%C3%85%C3%AE%C3%A7%C3%AC%C3%A9%C3%B3%C3%A8&LocID=32&pubdate=08/28/2025
- https://www.facebook.com/jansampark.madhyapradesh/posts/madhya-pradesh-emerging-as-indias-new-tourism-powerhousethe-state-has-registered/1186913926917715/
- https://www.madhyapradeshdmc.com/destination-news-and-updates/madhya-pradesh-tourism-statistics-and-growth.html
- https://travel.economictimes.indiatimes.com/news/destination/states/mp-tourism-eyes-tourism-growth-to-5-of-gdp-by-2028/119645605
- https://sws.invest.mp.gov.in/sectors/tourism
- https://www.pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=1579775&reg=3&lang=2

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 70-74

तुलसीदास के साहित्य में रामभक्ति का स्वरूप

डॉ. के. माधवी
एसोसिएट प्रोफेसर, मंच कला विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

सारांश :

गोस्वामी तुलसीदास हिंदी साहित्य के भक्ति काल के प्रमुख कवि हैं। उनके साहित्य में रामभक्ति केवल धार्मिक भावना नहीं, बल्कि सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक चेतना का आधार है। तुलसीदास ने भगवान राम को मर्यादा, आदर्श और लोकमंगल के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। उनके काव्य में भक्ति का स्वरूप दास्य, स्नेह, समर्पण, लोककल्याण तथा निर्गुण–सगुण समन्वय से युक्त दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में तुलसीदास के साहित्य में रामभक्ति के विविध आयामों का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द : रामभक्ति, तुलसीदास, भक्ति आंदोलन, रामचरितमानस, सगुण भक्ति, लोकमंगल।

प्रस्तावना :

भक्ति काल हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में भक्ति को जनसाधारण तक पहुँचाने में अनेक संत–कवियों का योगदान रहा। इनमें गोस्वामी तुलसीदास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से रामभक्ति को लोकजीवन से जोड़ा। तुलसीदास की भक्ति केवल ईश्वर–आराधना नहीं, बल्कि मानव जीवन के आदर्शों की स्थापना का माध्यम भी है। उनके साहित्य में राम एक आदर्श पुत्र, आदर्श राजा, आदर्श पति और लोकनायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

तुलसीदास का जीवन एवं साहित्यिक परिचय :

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म प्रायः 1532 ई. माना जाता है। वे रामानंद संप्रदाय से प्रभावित थे। उनकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

1. रामचरितमानस
2. विनय पत्रिका
3. कवितावली
4. गीतावली
5. दोहावली
6. हनुमान चालीसा

इन रचनाओं में रामभक्ति का विविध रूपों में चित्रण हुआ है।

1. **सगुण साकार भक्ति** – तुलसीदास सगुण रामभक्ति के उपासक थे। उन्होंने राम को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया। उनके राम मानव रूप में होते हुए भी ईश्वर हैं। तुलसीदास के अनुसार निर्गुण ब्रह्म भक्तों

के प्रेमवश सगुण रूप धारण करता है।

'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।

गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।'

यहाँ तुलसीदास ने निर्गुण और सगुण के समन्वय की भावना व्यक्त की है।

2. **दास्य भाव की भक्ति** – तुलसीदास की भक्ति में दास्य भाव प्रमुख है। वे स्वयं को राम का सेवक मानते हैं। उनके काव्य में विनम्रता, आत्मसमर्पण और सेवा–भाव स्पष्ट दिखाई देता है।

विनय पत्रिका में वे कहते हैं –

''अब प्रभु दया करहु एहि बारा।'

यहाँ भक्त की करुण पुकार और पूर्ण समर्पण व्यक्त हुआ है।

3. **लोकमंगल की भावना** – तुलसीदास की रामभक्ति केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं है। उसमें लोककल्याण की व्यापक भावना निहित है। रामचरितमानस में रामराज्य का वर्णन आदर्श शासन व्यवस्था के रूप में मिलता है –

'दैहिक दैविक भौतिक तापा।

रामराज नहिं काहुहि व्यापा।।'

यहाँ रामराज्य सामाजिक न्याय, समानता और सुख–शांति का प्रतीक है।

4. **नैतिक एवं आदर्शवादी भक्ति** – तुलसीदास ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया। उनके साहित्य में सत्य, धर्म, करुणा, त्याग, सेवा और कर्तव्य जैसे मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। रामभक्ति व्यक्ति को नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

5. **समन्वयवादी दृष्टि** – तुलसीदास ने शैव और वैष्णव मतों में समन्वय स्थापित किया। उन्होंने राम और शिव दोनों की महिमा का वर्णन किया। रामचरितमानस के आरंभ में वे शिव की वंदना करते हैं –

'बंदउँ गुरू पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।'

इस प्रकार उनका साहित्य धार्मिक समन्वय और सहिष्णुता का संदेश देता है।

6. **सहज और लोकभाषा में भक्ति** – तुलसीदास ने संस्कृत के स्थान पर अवधी और ब्रजभाषा का प्रयोग किया, जिससे रामभक्ति जनसाधारण तक पहुँची। उनकी भाषा सरल, सरस और भावपूर्ण है। यही कारण है कि उनका साहित्य आज भी जनमानस में लोकप्रिय है।

तुलसीदास की रामभक्ति की विशेषताएँ :

- भक्ति और ज्ञान का समन्वय
- लोकमंगल की भावना
- आदर्शवाद एवं नैतिकता
- सरल एवं जनभाषा का प्रयोग
- समर्पण और दास्य भाव
- धार्मिक समन्वयवाद

तुलसीदास की रामभक्ति का सामाजिक प्रभाव :

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज को नई दिशा प्रदान की। उस समय भारतीय

समाज राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक विषमता और धार्मिक आडंबरों से ग्रस्त था। तुलसीदास ने रामभक्ति के माध्यम से समाज में नैतिकता, सदाचार और एकता का संदेश दिया। उनका साहित्य आज भी भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण आधार है। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में भक्ति, विनय, आत्मसमर्पण तथा ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम की भावना प्रमुख रूप से व्यक्त हुई है। प्रस्तुत चित्र में संकलित पद मुख्यतः विनय–प्रधान भक्ति से संबंधित हैं। इनमें भक्त और भगवान के मध्य दास्य भाव, आत्मनिवेदन तथा निष्काम प्रेम का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। इन पदों को शोधात्मक भाषा में रूपांतरित करने पर इनके दार्शनिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक पक्ष अधिक स्पष्ट होकर सामने आते हैं।

1. यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
   आस बिखास भरोसो, हरि जीव–जड़ताई।।
2. चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि–सिधि बिपुल बड़ाई।
   हेतु–रहित अनुराग रामपद, बढ़ु अनुदिन अधिकाई।।
3. कुटिल करमलै जाइ मोहि, जहँ– जहँ अपनी बरियाई।
   तहँ–तहँ जनि छिन छोह छाँडियों, कमठ–अण्ड की नाई।।
4. यदि जगमें, जहँ लगि या तुनकी, प्रीति–प्रतीति सगाई।
   ते सब तुलसीदास प्रभु ही सों हो हि सिमिटि इक ठाई।।

कवि भगवान राम से प्रार्थना करते हुए कहता है कि उसके जीवन में केवल प्रभु के प्रति अटूट विश्वास बना रहे। वह सांसारिक सुख, संपत्ति, यश तथा सिद्धियों की कामना नहीं करता, बल्कि निष्काम भाव से रामचरणों में प्रेम चाहता है। इस पद में गोस्वामी तुलसीदास ने निष्काम भक्ति की भावना को व्यक्त किया है। कवि भगवान राम से निवेदन करता है कि उसके हृदय में ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था और विश्वास बना रहे। वह सांसारिक वैभव, बुद्धि, संपत्ति अथवा सिद्धियों की अपेक्षा नहीं करता। उसके लिए सर्वोच्च प्राप्ति प्रभुचरणों में अनन्य प्रेम है।

कवि यह भी स्पष्ट करता है कि मनुष्य मोह और अहंकार के कारण संसार में आसक्त हो जाता है, परंतु सच्चा भक्त उन्हीं बंधनों को त्यागकर ईश्वर में अपनी चेतना को केंद्रित करता है। यहाँ तुलसीदास ने भक्ति को आत्मिक शुद्धि तथा मोक्ष का साधन माना है।

2. रघुवर तुमको मेरी लाज.....

कवि भगवान राम को पतित–पावन एवं दीनबंधु मानते हुए उनसे अपनी रक्षा और उद्धार की प्रार्थना करता है। वह स्वयं को शरणागत भक्त के रूप में प्रस्तुत करता है। इस पद में भक्त की पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना व्यक्त हुई है। गोस्वामी तुलसीदास भगवान राम को करुणामय, पतितों का उद्धार करने वाला तथा दीन–दुखियों का सहायक बताते हैं। कवि स्वयं को एक असहाय जीव के रूप में प्रस्तुत करता है और प्रभु से अपनी मर्यादा एवं प्रतिष्ठा की रक्षा करने का निवेदन करता है।

यहाँ तुलसीदास की भक्ति दार्शनिक दृष्टि से शरणागति–भाव पर आधारित है। भक्त का विश्वास है कि ईश्वर ही मानव जीवन के दुखों का निवारण कर सकता है। यह पद भक्ति आंदोलन की उस परंपरा को पुष्ट करता है जिसमें ईश्वर की कृपा को मुक्ति का प्रमुख साधन माना गया है।

3. ऐसी मूढ़ता या मन की.....

कवि मानव मन की चंचलता और अज्ञानता का वर्णन करते हुए कहता है कि मनुष्य रामभक्ति को छोड़कर सांसारिक आकर्षणों में उलझा रहता है। यह स्थिति चातक पक्षी के उदाहरण से स्पष्ट की गई है। इस पद में मानव मन की अस्थिरता तथा सांसारिक मोह के प्रति उसकी प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि मनुष्य ईश्वर–भक्ति रूपी अमृत को त्यागकर नश्वर संसार के आकर्षणों में भटकता रहता है।

कवि ने चातक पक्षी का उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार चातक केवल स्वाति नक्षत्र की वर्षा की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार सच्चे भक्त को केवल ईश्वर की कृपा की कामना करनी चाहिए। सांसारिक सुख क्षणभंगुर हैं, जबकि रामभक्ति शाश्वत शांति और आनंद प्रदान करती है। यह पद मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें मानव जीवन की आंतरिक द्वंद्वात्मक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

4. 'कुटिल करम ते जाइ मोहि, जहाँ–तहाँ भएँ हानि।
तहँ–तहँ जनमि दिन दाह दुख, करहु कृपा भगवानि।'

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य अपने कुटिल कर्मों एवं सांसारिक आसक्तियों के कारण निरंतर दुःखों का अनुभव करता है, किन्तु ईश्वर की कृपा ही उसे मुक्ति का मार्ग प्रदान कर सकती है। कवि तुलसीदास भगवान राम से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि मनुष्य का जीवन तभी सार्थक हो सकता है, जब वह सांसारिक सुख, संपत्ति, यश तथा सिद्धियों के मोह को त्यागकर निष्काम भाव से ईश्वर की आराधना करे। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने निष्काम भक्ति की भावना को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार सच्ची भक्ति वही है, जिसमें भक्त बिना किसी स्वार्थ के भगवान राम के प्रति प्रेम, श्रद्धा और समर्पण का भाव रखता है।

समग्र विश्लेषण –

इन पदों में तुलसीदास की भक्ति भावना के निम्न स्वरूप स्पष्ट होते हैं–

1. निष्काम भक्ति की प्रधानता।
2. दास्य एवं शरणागति भाव।
3. ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास।
4. सांसारिक मोह का विरोध।
5. आत्मिक शुद्धि और मोक्ष की आकांक्षा।
6. लोकभाषा में गहन आध्यात्मिक चिंतन।

तुलसीदास ने सरल भाषा में गूढ़ दार्शनिक तत्वों को प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि उनका साहित्य जनमानस में आज भी अत्यंत लोकप्रिय और प्रेरणादायक है।

उपसंहार :

प्रस्तुत पदों में गोस्वामी तुलसीदास की रामभक्ति का अत्यंत मार्मिक एवं दार्शनिक स्वरूप व्यक्त हुआ है। इन रचनाओं में भक्त और भगवान के संबंध को प्रेम, समर्पण तथा विश्वास के आधार पर स्थापित किया गया है। तुलसीदास का यह काव्य केवल धार्मिक साहित्य नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना और नैतिक मूल्यों का

महत्वपूर्ण स्रोत भी है।

लोकजीवन से जुड़ी तुलसीदास की भक्ति केवल ईश्वर–आराधना नहीं, अपितु मानव जीवन के आदर्शों की स्थापना का सशक्त माध्यम भी है। उनके साहित्य में राम को आदर्श पुत्र, आदर्श राजा, आदर्श पति तथा लोकनायक के रूप में चित्रित किया गया है। तुलसीदास के काव्य में भक्ति, विनय, आत्मसमर्पण तथा ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम की भावना अत्यंत प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त हुई है। भक्त और भगवान के मध्य दास्य भाव, आत्मनिवेदन तथा निष्काम प्रेम का अद्‌भुत सामंजस्य उनके काव्य को विशिष्ट आध्यात्मिक गरिमा प्रदान करता है।

संदर्भ :

1. भजन संग्रह. (सं. 2038) गोविन्दभवन कार्यालय।
   गोरखपुर : गीता प्रेस, पृ. 4
2. (भजन संग्रह. (सं. 2038) गोविन्दभवन कार्यालय।
   गोरखपुर : गीता प्रेस , पृ. 4

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 75-78

भारत में दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए डिजिटल पुस्तकालय : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Dr. MANISH CHOUDHARY
ASSISTANT PROFESSOR (POLITICAL SCIENCE)
MATA JIJA BAI GOVT. GIRLS P.G. COLLEGE INDORE (M. P.)

सारांश :

भारत में दृष्टिबाधित व्यक्तियों की संख्या 2023 की WHO रिपोर्ट के अनुसार 4.95 मिलियन से अधिक है। शिक्षा और ज्ञान तक समान पहुँच एक मौलिक अधिकार है, परन्तु प्रिंट माध्यम की सीमाओं के कारण दृष्टिबाधित समुदाय के लिए यह चुनौतीपूर्ण रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र भारत में दृष्टिबाधितों के लिए पुस्तकालय सेवाओं के ऐतिहासिक विकास, वर्तमान सहायक प्रौद्योगिकियों, डिजिटल फॉर्मेट्स, और रूपांतरण उपकरणों का विश्लेषण करता है। अध्ययन का उद्देश्य उपलब्ध संसाधनों, सरकारी योजनाओं, और मौजूदा कमियों की पहचान करना है। निष्कर्ष बताते हैं कि तकनीकी प्रगति के बावजूद जागरूकता, लागत और सुलभ कंटेंट की कमी प्रमुख बाधाएं हैं। शोध में पुस्तकालयों को अधिक समावेशी बनाने हेतु नीतिगत सुझाव भी दिए गए हैं।

Keywords : दृष्टिबाधित, डिजिटल पुस्तकालय, DAISY, स्क्रीन रीडर, ब्रेल डिस्प्ले, सुगम्य पुस्तकालय, सहायक प्रौद्योगिकी।

प्रस्तावना :

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य सभी के लिए समावेशी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना है। दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए ज्ञान तक पहुँच का माध्यम पारंपरिक रूप से ब्रेल लिपि रही है। किंतु ब्रेल पुस्तकों का उत्पादन महंगा, धीमा और भंडारण की दृष्टि से कठिन है। 21वीं सदी में सूचना प्रौद्योगिकी ने इस समस्या का समाधान डिजिटल और ऑडियो माध्यमों से किया है। भारत में 1995 के दिव्यांगजन अधिनियम और 2016 के त्च्व्क् अधिनियम ने जानकारी की सुगमता को कानूनी अधिकार बनाया है। इस पृष्ठभूमि में यह शोध पत्र डिजिटल पुस्तकालयों की भूमिका का परीक्षण करता है। भारत में दृष्टिबाधितों के लिए ऑडियो और डिजिटल पुस्तकों का इतिहास 1963 से आरंभ होता है। नेशनल एसोसिएशन फॉर द ब्लाइंड, इंडिया ने सर्वप्रथम रील–टू–रील टेप पर ऑडियोबुक बनाना शुरू किया। यह सेवा मुख्यतः स्वयंसेवकों द्वारा पुस्तकें पढ़कर रिकॉर्ड करने पर निर्भर थी। तकनीकी क्रम–विकास निम्नानुसार है :

1. **1960–1980 :** टेप युग : भारी और सीमित नेविगेशन वाले कैसेट टेप।
2. **1990–2000 :** CD युग : डिजिटल ऑडियो ने गुणवत्ता बढ़ाई, पर नेविगेशन अब भी रैखिक था।
3. **2000 के बाद :** DAISY फॉर्मेट : Digital Accessible Information System ने क्रांति ला दी।

DAISY किताबें MP3 आधारित होती हैं जिनमें उपयोगकर्ता अध्याय, पृष्ठ, पैराग्राफ और वाक्य स्तर तक जा सकता है। यह दृष्टिबाधित छात्रों और शोधार्थियों के लिए गेम–चेंजर साबित हुआ।

4. **2010 के बाद : ऑनलाइन डिजिटल लाइब्रेरी :** क्लाउड स्टोरेज और स्मार्टफोन के प्रसार से Sugamya Pustakalaya जैसे प्लेटफॉर्म अस्तित्व में आए।

वर्तमान में सक्षम ट्रस्ट, DAISY Forum of India और NIVH देहरादून जैसे संगठन स्कैन–एंड–रीड तकनीक और AI आधारित OCR पर काम कर रहे हैं।

सहायक उपकरण और प्रौद्योगिकियां :

डिजिटल किताबें पढ़ने के लिए हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर दोनों आवश्यक हैं। समर्पित हार्डवेयर डिवाइसेज विशेष रूप से दृष्टिबाधितों के लिए डिजाइन किए गए हैं। डिवाइस का नाम, प्रकार, अनुमानित कीमत, प्रमुख विशेषता इस प्रकार है–

1.	Focus 40 Blue रिफ्रेशेबल ब्रेल डिस्प्ले रू. 2,00,000	कंप्यूटर से जुड़कर स्क्रीन टेक्स्ट को ब्रेल में बदलता है।
2.	BrailleMe ब्रेल डिस्प्ले रू. 45,000 से शुरू, IIT बॉम्बे के छात्रों द्वारा विकसित।	अपेक्षाकृत किफायती।
3.	Orbit Reader 20 ब्रेल डिस्प्ले + नोट टेकर रू. 32,745 भारतीय भाषाओं का समर्थन।	ADIP योजना में सब्सिडी उपलब्ध।
4.	Divya Nayan पर्सनल रीडिंग मशीन रू. 24,000	प्रिंटेड टेक्स्ट की फोटो खींचकर ऑडियो में बदलता है। CSIR विकसित।
5.	Victor Reader Stream DAISY प्लेयर रू. 25,000 – रू. 35,000	DAISY, MP3, TXT, DOC सपोर्ट। बुकमार्क, वॉइस नोट फीचर।

स्क्रीन रीडर सॉफ्टवेयर :

ये सॉफ्टवेयर कंप्यूटर या फोन की स्क्रीन पर मौजूद टेक्स्ट को स्पीच में बदलते हैं। Windows के लिए NVDA : 2006 में शुरू हुआ मुफ्त और ओपन–सोर्स स्क्रीन रीडर। आज वैश्विक स्तर पर सबसे लोकप्रिय है। हिंदी समेत 50+ भाषाएं सपोर्ट करता है। JAWS : सबसे पुराना और फीचर–रिच पेड सॉफ्टवेयर। सालाना लाइसेंस लगभग रू. 7,000 से शुरू। कॉर्पोरेट और सरकारी क्षेत्र में प्रचलित। Windows Narrator : Windows 2000 से मुफ्त में बिल्ट–इन। Windows 10/11 में काफी उन्नत और भारतीय भाषाओं में बेहतर। SAFA : C-DAC द्वारा भारतीय भाषाओं के लिए बनाया गया था, परन्तु NVDA के व्यापक उपयोग के बाद इसका प्रचलन कम हो गया है। Linux के लिए Orca : GNOME डेस्कटॉप के लिए डिफॉल्ट स्क्रीन रीडर। मुफ्त और ओपन–सोर्स। BRLTTY : ब्रेल डिस्प्ले को Linux कंसोल से जोड़ने के लिए बैकग्राउंड डेमन। स्मार्टफोन के लिए TalkBack : Android में बिल्ट–इन, मुफ्त स्क्रीन रीडर। VoiceOver: iOS में बिल्ट–इन, मुफ्त। Kibo App: भारतीय स्टार्टअप द्वारा विकसित। कैमरा से प्रिंटेड टेक्स्ट स्कैन करके 13 भाषाओं में ऑडियो में बदलता है। डिजिटल फॉर्मेट और रूपांतरण प्रक्रिया दृष्टिबाधितों के लिए सभी डिजिटल फॉर्मेट समान रूप से सुलभ नहीं

हैं। EPUB : सबसे सुलभ फॉर्मेट। रीफ्लोएबल टेक्स्ट होने के कारण स्क्रीन रीडर से अध्याय, पेज, लिंक नेविगेशन आसान है। DAISY : ऑडियो–आधारित फॉर्मेट, पर पूर्ण नेविगेशन संरचना के साथ। पाठ्यपुस्तकों के लिए सर्वोत्तम। DOC/DOCX: MS Word फाइलें यदि सही हेडिंग स्टाइल से बनाई जाएं तो सुलभ होती हैं। PDF: सबसे बड़ी चुनौती। यदि PDF इमेज–बेस्ड या स्कैन किया हुआ है तो स्क्रीन रीडर उसे नहीं पढ़ सकता। टेक्स्ट–बेस्ड PDF में भी टैगिंग न होने पर रीडिंग ऑर्डर गलत हो जाता है। चूंकि अधिकांश शैक्षिक सामग्री PDF में है, रूपांतरण आवश्यक हो जाता है। Android पर मोबाइल ऐप्स ePUBator : ओपन–सोर्स, ऑफलाइन ऐप। PDF से EPUB बनाता है। इंटरनेट न चाहिए होने से डेटा गोपनीयता बनी रहती है। Ebook Converter : ऑनलाइन टूल। कई फॉर्मेट सपोर्ट करता है पर इंटरनेट आवश्यक। मुफ्त वर्जन में विज्ञापन होते हैं। कंप्यूटर पर Calibre सॉफ्टवेयर 200–300 पेज की स्कैन पुस्तक को EPUB में बदलने की प्रक्रिया :

1. Calibre इंस्टॉल करें और 'Add books' से PDF जोड़ें।
2. किताब सिलेक्ट करके 'Convert books' पर क्लिक करें। आउटपुट फॉर्मेट EPUB चुनें।
3. स्कैन PDF के लिए 'Heuristic Processing' टैब में 'Enable Heuristic Processing' टिक करें।
4. OCR के लिए 'Tesseract OCR' प्लगइन इंस्टॉल करना पड़ सकता है। भारतीय भाषाओं के लिए भाषा पैक अलग से डाउनलोड करें।
5. 'OK' दबाने पर प्रोसेसिंग शुरू होगी। OCR की गुणवत्ता स्कैन की DPI पर निर्भर करती है। 300 DPI न्यूनतम अनुशंसित है।

भारत में पुस्तकालय सेवाएं : प्रकार और संरचना :

दृष्टिबाधितों के लिए पुस्तकालय 4 मुख्य प्रकार के हैं, 1. ब्रेल पुस्तकालय : NAB, NIVH जैसे संस्थानों में भौतिक ब्रेल पुस्तकें। सीमित संख्या और रखरखाव महंगा। 2. ऑडियो पुस्तकालय : टॉकिंग बुक लाइब्रेरी। स्वयंसेवकों द्वारा रिकॉर्ड की गई किताबें। 3. डिजिटल पुस्तकालय : Sugamya Pustakalaya भारत का सबसे बड़ा क्राउड–सोर्स ऑनलाइन प्लेटफॉर्म है। DAISY Forum of India द्वारा संचालित। 6.8 लाख से अधिक किताबें, 23 भाषाओं में। प्रमाणित दृष्टिबाधित सदस्य मुफ्त में डाउनलोड कर सकते हैं। 4. समावेशी सार्वजनिक पुस्तकालय : दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी जैसे कुछ पुस्तकालयों में अलग 'ब्रेल कॉर्नर' बनाया गया है जिसमें DAISY प्लेयर और स्क्रीन रीडर युक्त कंप्यूटर हैं। पुस्तकालयों की आवश्यक संरचना इस प्रकार है –

1. **सुलभ कंटेंट :** ब्रेल, ऑडियो, EPUB/DAISY फॉर्मेट में सामग्री।
2. **सहायक तकनीक :** ब्रेल डिस्प्ले, स्क्रीन रीडर युक्त कंप्यूटर, स्कैनर।
3. **मानव संसाधन :** प्रशिक्षित पुस्तकालयाध्यक्ष जो सहायक तकनीक का ज्ञान रखते हों।
4. **भौतिक सुगमता :** रैंप, टैक्टाइल पाथ, ऑडियो साइनेज।

चुनौतियां और सुझाव :

अध्ययन में तीन प्रमुख चुनौतियां सामने आईं है, आर्थिक बाधा : Focus 40 Blue जैसे डिवाइस रू. 2 लाख के हैं। JAWS का लाइसेंस रू. 80,000+ तक जाता है। ADIP योजना के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँच कम है। जागरूकता की कमी : कई शिक्षण संस्थानों और छात्रों को NVDA जैसे मुफ्त विकल्पों या Sugamya Pustakalaya की जानकारी नहीं है। सुलभ कंटेंट का अभाव : भारत में प्रकाशित होने वाली कुल पुस्तकों में से 1% से भी कम सुलभ फॉर्मेट में उपलब्ध हैं। 'Marrakesh Treaty' पर हस्ताक्षर के बावजूद प्रकाशकों द्वारा

कॉपीराइट छूट का लाभ नहीं उठाया जा रहा। UGC और NCERT को सभी पाठ्यपुस्तकों का सुलभ EPUB/ DAISY वर्जन प्रकाशन के साथ अनिवार्य करना चाहिए। BrailleMe और Orbit Reader जैसे भारतीय उपकरणों का बड़े पैमाने पर उत्पादन करके कीमत रू. 15,000 से कम लानी होगी। प्रत्येक जिला पुस्तकालय में कम से कम एक 'समावेशी टेक्नोलॉजी कॉर्नर' स्थापित किया जाए जिसमें स्क्रीन रीडर, स्कैनर और प्रशिक्षित स्टाफ हो। स्कूलों में 'डिजिटल एक्सेसिबिलिटी' को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए ताकि भविष्य के प्रकाशक और डेवलपर जागरूक बनें।

निष्कर्ष :

सूचना प्रौद्योगिकी ने दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए ज्ञान के द्वार खोले हैं। 1963 के टेप रिकॉर्डर से लेकर 2026 के AI आधारित Kibo ऐप तक, यात्रा प्रभावशाली रही है। NVDA और Sugamya Pustakalaya जैसे मुफ्त संसाधनों ने लागत की बाधा काफी हद तक कम की है। फिर भी, डिजिटल डिवाइड, महंगे हार्डवेयर और सुलभ कंटेंट की कमी के कारण पूर्ण समावेशन का लक्ष्य अधूरा है। डिजिटल पुस्तकालय केवल तकनीक नहीं, बल्कि समानता का उपकरण है। इसे मजबूत करके ही हम 'सबके लिए शिक्षा' के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. World Health Organization. (2023). World Report on Vision. Geneva: WHO.
2. National Association for the Blind, India. (2020). Annual Report 2019-20. Mumbai: NAB.
3. DAISY Forum of India. (2024). Sugamya Pustakalaya User Statistics. Retrieved from http://sugamyapustakalaya.in
4. Government of India. (2016). The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016. New Delhi: Ministry of Law and Justice.
5. IIT Bombay. (2019). BrailleMe: Affordable Refreshable Braille Display. Product Brochure.
6. C-DAC. (2015). SAFA Screen Reader for Indian Languages. Pune: C-DAC.
7. NV Access. (2024). NVDA 2024.1 User Guide. Queensland: NV Access Limited.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 79-86

JUVNILE DELINQUENCY : PREVENTION THROUGH LEGAL EDUCATION AT SCHOOL LEVEL

Manohar Singh Mewada
Assistant Professor, Govt. Law College Shajapur.

Abstract :

Children being important asset, every effort should be made for them to develop an in-depth understanding of various issues relating to the juvenile delinquency to identity delinquent problems so that they become mentally alert and morally healthy endowed with the skills and motivations needed by the society .The youngsters between a minor age group are easily attracted to the temptation of life and thus tend into criminality. As often said, the child of today is the citizen of tomorrow , the criminal tendency in youngsters must therefore be timely curbed so that they do not turn into habitual criminals in their future. Most of the countries are presently tackling the problem of juvenile delinquency on priority basis. In India also there has been a demand to launch a legal subject at school level so that the juveniles do not turn into delinquency in there future life and become a robust citizen.

Keywords- Delinquency, Prevention, Education, Fundamental right, Legal awareness, Problem etc.

Introduction :

Socrates wrote a paragraph over 2400 years ago that might will have appeared in a morning paper of today, may be reproduced here to understand the problem -

"Children now love luxury, they have bad manners, contempt for authority, and they show disrespect for elders and love chatter in place of exercise. Children no longer rise when elder enter the room. They contradict their parents. Chatter be for company, gobble up clarities at table, cross their legs and tyrannize over their teachers."

It is apparent therefore, that the deviant behavior of children has posed problems from the time immemorial and what has changed only the methods of preventing themselves from delinquency. It must be realized that, there is an urgent need of an effective legal educational plan for school going students.

In those countries where every child goes to school (just like India now when free and compulsory education has been a fundamental right for the children of 6-14 yrs.) the impact of educational institutions is very significant and preventive programs can therefore, be launched in an effective manner through the schools. Three goals of school education have been suggested in this context.

- Developing a new value system in which the school would be a force working against the discrimination and rejection experienced by pupils draw from the lower classes.
- Making the schools an instruments for fostering work attitudes, self esteem and job skills to improve the employability of graduates of school in deprived areas.
- Providing school experience designed to improve the self image of delinquency prone children.

It is with this end as *Nobel laureate Gabrial Mistral* Long ago observed :

"We are guilty of many errors and many faults, but our worst crime is abandoning the children the foundation of life. Many of the things we need can wait, the child cannot, right now is the time his bones are being formed, his blood is being made and his senses are being developed. To him we cannot answer ' Tomorrow.' His name is today"

Thus right now is a time to introduce the plan of "Legal education" at school level.

Objectives and Aim :

The main objectives and aims of the proposed research work is summarised as follows :-

- To examine the impact of legal education at school level in preventing the juveniles from delinquency.
- To explored the expected curriculum of legal education for school going children.
- To prepare the students to accept the social responsibility by conducting preventive programmes as a project work at the school level.
- To promote the legal awareness among the school going children.
- To aware the children about the law relating to the child needs.
- To investigate the role of schools in delinquency prevention.

Hypothesis :

Hypothesis is a specific, testable prediction about what we expect to happen in a study. It limits the scope of the study. It enables to develop a specific direction. Hypothesis assists in the careful and focused analysis of data collected. The hypothesis formulated for this study are following :-

Whether the legal education at school level be designed to protect the pupils from delinquency!

Hypothesis 1- Higher be the standard of education, higher will be the protection level of juveniles

from delinquency.

***Hypothesis** 2*- Higher the legal awareness among the adolescent will make them alert of crime.

Research methodology :

The research done for this study will be a mixed method approach. The proposed research work is aimed to focus largely on legal provisions relating to the children need. This research is concerned with the deep study of provisions relating to juvenile delinquency in legal provisions which may be helpful in preventing the school going children from delinquency.

My work is based on doctrinal and non doctrinal method of research.

The proposed work involves literature of children related laws and functions of various institutions which are engaged in handling juveniles. The Primary technique for collecting the relevant material through law books of different writer, journal, articles on the subject and papers presented by jurists, scholars and editorials etc.

I will try to generate educators opinion presently employed in Shajapur district and the opinion of public, various intellectual, judges, writers and jurists etc.

I have to use both primary as well as secondary source of investigation.

I hope both these techniques will help me in completing the proposed research work.

Why legal education is compulsory at School level :

The only alternative to suppress criminality among children and adolescents is to import them proper education in the schools and homes. As well planned scheme of education will intellectually prepare them to accept social responsibility. Active Co-operation between teacher and delinquents parents is also necessary to solve the problems of teenagers and thus reduce the incidence of juvenile delinquency. The educational institutions may perhaps serve best of intensity preventive programs and suppress juvenile delinquency.

Schools are the place where the children spend their majority of their time everyday. The environment of school effects very much on the habits and characters of children. Therefore the efforts be made to launch an educational program relating to the prevent the juvenile from delinquency. Studies on juvenile delinquency generally suggest that the primary education can serve best to prevent youngsters from indulging in criminal behavior.

In M.P. the study of legal education "Delinquency Prevention" at school level is more essential. It is a developing state where rocketing population growth has resulted in over urbanization. People start moving from rural to urban areas. In this state children belonging to poor families always suffer from complex due to lack of food clothes and education consequently they commit crime like theft and pick pocketing etc. Growth of slums and many other living conditions demand an immediate

solution to those problems. Government is taking several steps bus is not successful everywhere. Participation of researchers and educationalists are, therefore, of utmost importance by planning the delinquency prevention program through primary education.

A well planned scheme of legal education in school regarding delinquency prevention would prove as an integral part of the education it will made the students aware of the various problems relating to the juvenile delinquency. It will not only bring out the various causes of delinquency but will also suggest the means to solve this problem. It will be helpful in fostering the positive attitude and beware the students from delinquency. The students will be able to identify the delinquency. It will also make the students aware of issues relating to the delinquency prevention at global level.

Legal education at school level :

The idea that basic legal education must be introduced at the level of secondary education is now gaining ground.

The Central Board of Secondary Education (CBSE) had announced in 2013 that legal education would be offered as an elective subject for students of Classes XI and XII. Unfortunately, this approach is yet to yield the desired results. More than 70,000 candidates sat for the CLAT examination, hoping to secure a seat in the national law universities. Breaking away from past when law was considered as a 'last resort' profession, it is today attracting the brightest of minds. As things stand today, these students are acquiring education related to law from coaching institutes rather than schools. The interest of students in the field of law should be kindled in the school itself. By the time the students appear for their law school entrance examinations, they must be clear about why they want to join these institutions.

Issues and challenges :

Several issues need be addressed to ensure the success of legal school education at school level.

- ***First*,** there is a need to revise the pedagogical approach to legal education in schools.
- ***Secondly*,** legal education must be given the same importance as other subjects such as biology, chemistry, physics, math's, accounts and economics.
- ***Thirdly*,** keeping legal studies as an optional or elective subject is bound to blunt the efficacy of the initiative.
- ***Fourthly*,** there is a dearth of trained educators who are both well versed with the scope of the laws as well as the ability to simplify them.

There is a need to create a class of educators who can impart legal education effectively while appealing to the imagination of the students. Involving young law graduates as instructors to support

the core faculty in the schools can produce better results.

As evidenced by the mushrooming of law universities, much investment has been made by the State as well as private bodies into the nurturing of law as a professional course. These higher education institutions can play a vital role in the realization of the requirements laid out above. Law schools can help design the pedagogy as well as course structures tailored to such needs and requirements. Law schools can also undertake the responsibility of upgrading the skills of existing personnel as well as training new educators. The possibility of the engagement of established law schools and legal academics must be explored by the Ministry of Education, as also the Boards of Secondary Education.

Proposed work and the work already done compared :

Although the proposed pre-education plan, like certain reformatory institutions is based on the principle of individualization of treatment of juvenile delinquency and both include a program of guidance and assistance to the delinquents, yet two differ in some aspects the fundamental points of difference them are noted below :-

- It has been alluded that proposed work is probably the first stage of delinquency prevention scheme and the work already done (as the work of various institutions which are presently engaged in handling juveniles) being the last stage of correctional scheme.
- Another notable distinction between the proposed and the work already done is that former is an educational scheme based on the principal of " *Prevention is better than cure"* while the latter are institutions where adolescent offender receive training in lieu of imprisonment so that they can be reformed under conditions which are different from these of prisons.
- The goals of school education in this context are, developing a new value system; making the schools an instrument for fostering work attitudes, self-esteem and job skills; providing school experiences designed to improve the self image of delinquency prone children. While the correctional institutions prepares the juvenile delinquents for normal life in society by providing him facilities for industrial training and disciplined life.
- Undoubtedly the education scheme and reformatory institutions engaged in handling juvenile offenders are parts of the treatment of juvenile delinquency but the two have different purposes. Former may be deemed as a matter of right but latter is not.
- Delinquency prevention essentially involves elimination of conditions which are conducive to crime causation but treatment involves reformation of the offender to reclaim him as a useful member of the community

Jurists view on legal education at school level :

Perhaps the best remedy to contain this evil is to educate pupils about the harmful effects of

juvenile delinquency this kind of education would be most beneficial for the adolescents and school going students . The voluntary social organizations and mass media can also usefully impart this education. Scientifically correct knowledge and education about evil effects of delinquency should infect form a part of regular curriculum at the school level.

Some criminologists suggests that imparting legal education and providing correct knowledge about delinquency to the juveniles would help them to understand delinquency better than get addicted to aberration which border on crimes. The lack of properly trained of qualified staff for the purpose may, however pose practical difficulties in imparting legal education to youngsters at school level. Then again, the question as to at what exact age or stage the legal education should be introduced and the curriculum of teaching the subjects are also some of the debatable issues connected with the subject.

Enrico Ferri the noted Italian criminologist, Once observed that most of the progressive countries today are engaged in safeguarding the interest of their adolescents by adopting a educational policy which can be best protect the juveniles from delinquency. Obviously, the success in eliminating the delinquency from juveniles which is otherwise known Juvenile Defense, largely depends on the efficacy of educational program administered in a particular country. That is the reason why present century has witnessed revolutionary changes in criminological thinking modern criminologists are engaged in working out a common educational program which would be uniformly acceptable to the whole country. The ultimate object is to minimize incidence of delinquency by an effective scheme of legal education through schools.

Prof. *Gillin* has aptly observed that it is not the humanity within the criminal but the criminality with in the human being which needs to be curbed through effective education.

It must be accepted that past independence era brought in its wake a growing realization of the need of change in attitudes towards the treatments of delinquents with advanced knowledge of human behavior the role of school environment in the correctional field cannot be under estimated. Adequate education and intensive propaganda against the conduct involving law violations can contribute to reduce delinquency considerably.

"Prevention of crime should be treated as everyone's concern" unless this broader outlook is developed among the members of society , elimination of delinquency seems rather difficult. The traditional outlook that crime prevention is solely the concern of law enforcement agencies, must be changed and it should be treated as a social cause necessitating involvement of every citizen. Then only the crusade against crime prevention can succeed and public tranquility maintained in the community.

Significance of the study :

The significance of the proposed thesis works may be deemed as follows :-

- The main aim of the proposed thesis is to focus on the need of legal education, dealing with the various aspects like main causes of the juvenile delinquency; Law regarding the Juvenile; Preventive measures of juvenile delinquency: Objective of Juvenile Justice Act, 2015.
- The purposed thesis leads the curriculum of legal education at school level which shall be of immense utility to all those who are involved in delinquency prevention.
- It is sincerely hope that the proposed work would found useful not only by the school going students but also by the Teachers, Lawyers, Judges and Law administrators.
- Prevention of juvenile from delinquency is also important part of overall strategy in this direction, and dissemination of relevant information to the innocent delinquent can be much useful to achieve objectives in this process.

Conclusion and suggestions :

There is no any material on delinquency prevention at school level which can adequately fulfill the needs of the students as they fail to give the coherent and integral picture. As a research scholar I felt the need of a thesis work explaining the various aspects relating to the delinquency prevention through legal education at school level.

An attempt is therefore made by this article to enunciate the under laying concept of the urgent need of legal education at school level"

Following are the suggestions made which can be adopted to introduce the scheme of legal education at school level.

- It has been generally believed among different sections and groups of the society that legal education is only for the law students, lawyers etc. But no one ever thought that how important role can basic legal education plays in our daily life. It is very necessary for every person to have certain basic knowledge of law, otherwise it would become very difficult for him to tackle several problems, from consumer protection to fundamental rights. There are certain laws and regulation, basic knowledge of which is very necessary for a person, even if doesn't belong to a group which is related to legal field. Lack of knowledge is the main reason that certain rights of a person get violated so easily.
- The main reason why a normal person do not take the violation of his rights seriously, is that he lives under a belief that he would have to pay certain amount to the concerned lawyer. Moreover, he is scared of the legal process and the judicial system of the country. And, indeed he is not wrong. But there is another way which can be used to know how your rights can be protected from getting

violated.

- It has been said that "Knowledge is the Power", and indeed it is not wrong. It is responsibility of education system to make a common man aware of his legal rights and how these legal rights can be saved. Current education system in schools lays emphasis on imparting quality education. However, it is missing out on legal education and is, therefore, complete without it.
- The scheme, therefore, seeks to provide for making legal education compulsory in all educational institutions right from primary school level to senior secondary level in order to make it a part of school curriculum.

References :

- Ahmad siddique : Criminology : Problems and Prospective.
- N. V. Paranjpe : Criminology and Penology.
- Shyamdhar Singh : Principles of Criminology.
- *Wikipedia and Internet.*

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 87-90

युवा राजनीति और सांस्कृतिक कूटनीति : भारत–नेपाल संबंधों में यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम और एनसीसी कैडेट्स की भूमिका

लेफ्टिनेंट डॉ. प्रमिला कबीर कुरेठिया
सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान,
माता जीजाबाई शासकीय स्वशासी स्नाकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला, इंदौर, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश :

भारत–नेपाल संबंधों की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक गहराई ने दोनों देशों को एकदूदूसरे का स्वाभाविक साझेदार बनाया है। साझा धार्मिक परंपराएँ, मिथिला और लुम्बिनी जैसे सांस्कृतिक केंद्र, तथा सामाजिक समानता ने इन संबंधों को स्थायित्व प्रदान किया है। परंतु बदलते वैश्विक परिदृश्य में इन संबंधों को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए युवा राजनीति और सांस्कृतिक कूटनीति की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है।

इस शोध–पत्र में यह विश्लेषण किया गया है कि कैसे यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम और एनसीसी कैडेट्स भारतदृनेपाल संबंधों में सेतु का कार्य करते हैं। यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम युवाओं को शिक्षा, संस्कृति और राजनीति के विविध आयामों से परिचित कराता है। यह कार्यक्रम न केवल सांस्कृतिक पुल का निर्माण करता है, बल्कि लोकतांत्रिक चेतना और राजनीतिक समझ को भी गहरा करता है। इसी प्रकार एनसीसी कैडेट्स अनुशासन, नेतृत्व और आपदा प्रबंधन सहयोग के माध्यम से द्विपक्षीय विश्वास को मजबूत करते हैं। वे राजनीतिक समाजीकरण और नागरिक जिम्मेदारी के प्रशिक्षण के जरिए भविष्य के नेतृत्व को तैयार करते हैं।

मुख्य शब्द – युवा राजनीति, सांस्कृतिक कूटनीति, भारत–नेपाल संबंध, यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम, एनसीसी कैडेट्स।

प्रस्तावना –

भारत–नेपाल संबंध केवल संधियों और राजनीतिक समझौतों पर आधारित नहीं हैं, बल्कि यह साझा संस्कृति, परंपरा और सामाजिक जीवन की गहरी जड़ों से निर्मित हैं। दोनों देशों के बीच रामायण, बुद्ध और मिथिला जैसी सांस्कृतिक धरोहरें एक ऐसा पुल बनाती हैं जो सीमाओं से परे जाकर लोगों को जोड़ती हैं। परंतु आज की वैश्विक राजनीति में केवल ऐतिहासिक जुड़ाव पर्याप्त नहीं है, संबंधों को स्थिर और भविष्य–मुखी बनाने के लिए युवाओं की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है।

युवा राजनीति इस संदर्भ में एक नई ऊर्जा का स्रोत है। यह युवाओं को लोकतांत्रिक मूल्यों, नेतृत्व और राजनीतिक समाजीकरण से जोड़ती है। वहीं सांस्कृतिक कूटनीति कला, साहित्य और शिक्षा के माध्यम से विश्वास निर्माण करती है। इन दोनों आयामों को जोड़ने का कार्य यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम और एनसीसी कैडेट्स करते हैं। यह शोध–पत्र इस बात पर केंद्रित है कि कैसे युवाओं के बीच संवाद और सहयोग भारत–नेपाल संबंधों को नई

दिशा दे सकता है।

युवा राजनीति और सांस्कृतिक कूटनीति का सैद्धांतिक ढाँचा :

भारत–नेपाल संबंधों के अध्ययन में युवा राजनीति और सांस्कृतिक कूटनीति का सैद्धांतिक ढाँचा अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह ढाँचा यह समझने में मदद करता है कि किस प्रकार युवाओं की राजनीतिक चेतना और सांस्कृतिक आदान–प्रदान द्विपक्षीय संबंधों को स्थिरता और सहयोग की दिशा प्रदान करते हैं।

युवा राजनीति का आधार राजनीतिक समाजीकरण है। इसमें युवाओं को लोकतांत्रिक मूल्यों, नेतृत्व क्षमता और नागरिक जिम्मेदारी से जोड़ा जाता है। दूसरी ओर, सांस्कृतिक कूटनीति का सैद्धांतिक आधार सॉफ्ट पावर है। Joseph Nye के अनुसार, सॉफ्ट पावर वह शक्ति है जो आकर्षण और सांस्कृतिक प्रभाव के माध्यम से संबंधों को मजबूत करती है। भारत–नेपाल संबंधों में सांस्कृतिक कूटनीति भाषा, साहित्य, कला और परंपरा के जरिए विश्वास निर्माण करती है। इस प्रकार युवाओं की सक्रिय भागीदारी केवल सामाजिक सहयोग तक सीमित नहीं, यही ढाँचा भारत–नेपाल संबंधों में भविष्य की स्थिरता और सहयोग का आधार बनता है।

यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम की भूमिका :

भारत–नेपाल संबंधों में यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम एक ऐसा मंच है जो युवाओं को एक–दूसरे की सामाजिक संरचना, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और सांस्कृतिक परंपराओं को समझने का अवसर प्रदान करता है। इस कार्यक्रम का सबसे बड़ा योगदान शैक्षिक सहयोग है। विश्वविद्यालयों और संस्थानों के बीच छात्र विनिमय से युवाओं को न केवल नई शिक्षा प्रणाली का अनुभव मिलता है, बल्कि वे सीमापार शोध और नवाचार में भी भाग लेते हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण पहलू राजनीतिक चेतना है। वे लोकतंत्र की गहराई को समझते हैं। इससे राजनीतिक समाजीकरण को बल मिलता है तीसरा आयाम सांस्कृतिक पुल है। नृत्य, संगीत, साहित्य और कला के कार्यक्रमों के माध्यम से युवाओं को एक–दूसरे की परंपराओं को जानने का अवसर मिलता है। हाल के वर्षों में आयोजित 2024 भारत–नेपाल यूथ डायलॉग और 2025 सोशल मीडिया अभियान इसके जीवंत उदाहरण हैं। यह कार्यक्रम युवाओं को भविष्य के नेतृत्व और सांस्कृतिक कूटनीति के वाहक के रूप में तैयार करता है।

एनसीसी कैडेट्स की भूमिका :

एनसीसी केवल सैन्य अनुशासन का प्रशिक्षण देने वाला संगठन नहीं है, बल्कि यह युवाओं को नेतृत्व, सामाजिक जिम्मेदारी और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की भावना से भी जोड़ता है।

एनसीसी कैडेट्स भारत–नेपाल युवा आदान–प्रदान कार्यक्रम में सक्रिय भागीदारी करते हैं। वे सांस्कृतिक कार्यक्रमों, खेल प्रतियोगिताओं और शैक्षिक यात्राओं के माध्यम से दोनों देशों के युवाओं के बीच विश्वास और मित्रता का वातावरण निर्मित करते हैं। इस प्रकार वे सांस्कृतिक कूटनीति के वास्तविक वाहक बनते हैं, जो राजनीतिक स्तर पर भी द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करता है।

इसके अतिरिक्त, एनसीसी कैडेट्स आपदा प्रबंधन और सामाजिक सेवा में भी अग्रणी रहते हैं। नेपाल में आए भूकंप या भारत में आई बाढ़ जैसी परिस्थितियों में कैडेट्स ने राहत और पुनर्वास कार्यों में सहयोग दिया है। सीमावर्ती क्षेत्रों में एनसीसी कैडेट्स जागरूकता अभियान चलाकर नागरिकों को सुरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा के महत्व से अवगत कराते हैं, साथ ही, डिजिटल युग में कैडेट्स सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर युवा संवाद को

बढ़ावा देते हैं, जिससे भारत–नेपाल संबंधों को आधुनिक आयाम मिलता है। अंततः, एनसीसी कैडेट्स केवल अनुशासन और नेतृत्व के प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे शांति दूत के रूप में क्षेत्रीय स्थिरता और सहयोग को भी मजबूत करते हैं।

द्विपक्षीय राजनीति और युवा संवाद :

भारत–नेपाल संबंधों में द्विपक्षीय राजनीति और युवा संवाद का महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है। द्विपक्षीय राजनीति केवल राजनयिक समझौतों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें युवाओं की सक्रिय भागीदारी भी शामिल है, जो भविष्य की स्थिरता और सहयोग की नींव रखते हैं।

युवा संवाद इस प्रक्रिया का सबसे जीवंत पहलू है। जब भारत और नेपाल के युवा यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम जैसे मंचों पर मिलते हैं, तो वे न केवल सांस्कृतिक आदान–प्रदान करते हैं, बल्कि राजनीतिक दृष्टिकोणों को भी साझा करते हैं। इससे लोकतांत्रिक मूल्यों की समझ गहरी होती है और द्विपक्षीय राजनीति को जन–आधारित समर्थन मिलता है।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ :

इसके सबसे बड़ी चुनौती संसाधनों और अवसरों की असमानता है। इसके अलावा, राजनीतिक अस्थिरता और नीतिगत बाधाएँ भी द्विपक्षीय कार्यक्रमों को प्रभावित करती हैं। साथ ही, डिजिटल युग में सूचना का दुरुपयोग और फेक न्यूज जैसी समस्याएँ भी युवा संवाद को चुनौती देती हैं।

इन चुनौतियों के बावजूद, भविष्य में कई संभावनाएँ मौजूद हैं। एनसीसी कैडेट्स और युवा संगठनों के माध्यम से सांस्कृतिक आदान–प्रदान को और व्यापक बनाया जा सकता है संयुक्त प्रशिक्षण शिविर, खेल प्रतियोगिताएँ और शैक्षिक यात्राएँ युवाओं को नेतृत्व और सहयोग का व्यावहारिक अनुभव देती हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर युवा संवाद मंच स्थापित है।

इसके अलावा, आपदा प्रबंधन और पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में संयुक्त पहल, भारत–नेपाल संबंधों में युवा राजनीति और सांस्कृतिक कूटनीति को नई ऊर्जा और स्थिरता प्राप्त होगी।

निष्कर्ष :

भारत–नेपाल संबंधों में युवा राजनीति और सांस्कृतिक कूटनीति को सशक्त बनाने में एनसीसी कैडेट्स और यूथ एक्सचेंज प्रोग्राम की भूमिका निर्णायक रही है। इन कार्यक्रमों ने दोनों देशों के युवाओं को साझा मंच प्रदान किया है, जहाँ वे न केवल सांस्कृतिक परंपराओं का आदान–प्रदान करते हैं बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों और राजनीतिक विश्वास को भी गहरा करते हैं, भविष्य में यदि इन प्रयासों को नीतिगत समर्थन और संसाधनों का विस्तार मिले, तो भारत–नेपाल संबंधों में युवा राजनीति और सांस्कृतिक कूटनीति और भी सशक्त होगी।

संदर्भ सूची :

1. भारत सरकार, विदेश मंत्रालय. (2024). भारत–नेपाल युवा आदान–प्रदान पहलें और सांस्कृतिक सहयोग. नई दिल्ली : विदेश मंत्रालय प्रकाशन. प्राप्त किया गया https://mea.gov.in से।
2. नेपाल युवा एवं खेल मंत्रालय. (2023). युवा संवाद और सांस्कृतिक कूटनीति पर वार्षिक रिपोर्ट. काठमांडू

: मंत्रालय प्रकाशन. प्राप्त किया गया https://moys.gov.np से।

3. सिंह, आर. (2022). भारत–नेपाल संबंधों में युवा राजनीति की भूमिका. एशियन पॉलिटिकल स्टडीज जर्नल, 18(2), 75.92.

4. शर्मा, पी. (2021). सांस्कृतिक कूटनीति और द्विपक्षीय सहयोग : भारत–नेपाल संदर्भ. जर्नल ऑफ इंटरनेशनल रिलेशंस, 10(1), 44–60.

5. एनसीसी निदेशालय, भारत. (2022). एनसीसी कैडेट्स और अंतरराष्ट्रीय युवा सहयोग. नई दिल्ली : रक्षा मंत्रालय प्रकाशन.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 91-93

कश्मीर शैव दर्शन में मोक्ष की अवधारणा : एक दार्शनिक अध्ययन

डॉ. प्रतिमा राय

सहायक प्राध्यापक, माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इंदौर।

भारतीय ऋषियों के लिये दार्शनिक चिंतन का मुख्य लक्ष्य जीवन के दुःखों को दूर करना है। तात्विक प्रश्नों का विवेचन तो केवल साधन रूप ही है। इसलिये भारतीय दर्शन में विभिन्न सम्प्रदाय केवल विचार प्रणाली ही नहीं अपितु जीवन प्रणाली भी है। जीवन का आत्यान्तिक दुःखों से निवृति ही मोक्ष है।

मोक्ष भारतीय दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। वास्तव में मोक्ष की अवधारणा को लेकर जो मतभेद विभिन्न दर्शनों में पाये जाते है वह आत्मा में स्वरुप के विषय में मत की भिन्नता के कारण है। अपूर्ण ज्ञान अथवा आत्मा के वास्तविक स्वरुप से अनभिज्ञता 'बंधन' है तथा पूर्ण ज्ञान अथवा आत्मा के वास्तविक स्वरुप को जानना ही "मोक्ष" है। सभी दर्शन आत्मा के स्वरुप के अनुकुल ही मोक्ष की अवधारणा का प्रतिपादन करते है। वास्तव में आत्मा असीम है और आनन्द स्वरुप है, परन्तु अज्ञान के कारण उसमें सीमितता, परिच्छिन्नता, अनित्यता, दुःखयतः आदि की प्रतीति होती है। आत्मा अपने वास्तविक स्वरुप से सच्चिदानंद रूप असीम, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है किन्तु बंधन के कारण अथवा अपूर्ण ज्ञान के कारण उसे अपने वास्तविक स्वरुप की विस्मृति हो जाती है। फलतः वह अपने को असीम समझने लगता है। पुनः अपने वास्तविक स्वरुप में स्थित होना अथवा वास्तविक पूर्ण शक्तियों का जानना ही कश्मीर शैव दर्शन में मोक्ष कहा गया है।

शैव अद्वैत साहित्य का विकास कश्मीर में हुआ। इसे ''त्रिक शास्त्र'', ''त्रिकशासन'' अथवा केवल सामान्य रूप से 'त्रिक' और कभी–कभी विशिष्ट दशा में रहस्य सम्प्रदाय और त्रियम्बक सम्प्रदाय भी कहा जाता है। "त्रिक शब्द त्रिमूर्ति धोतक है – सिद्ध, नम्बर और मालिनी। त्रिमूर्ति का तात्पर्य शिव, शक्ति और अणु अथवा पति, पाश और पशु अथवा शिव, शक्ति और नर या अन्ततः परादेवी, अपरादेवी और परापर देवी है। इसे 'त्रिमूर्ति, इसलिये कहते है कि यह वास्तिवक सत्ता के संबंध में तीन प्रकार की ज्ञान पद्धति अभेद, भेद और भेदाभेद की व्याख्या प्रस्तुत करता है।

कश्मीर शैव दर्शन पर वैदिक पद्धतियों का अत्यधिक प्रभाव है तथा यह अद्वैतवादी तंत्रों का परिणाम है। पति, पशु तथा पाश के प्रत्यय श्वेताश्वर उपनिषद में उपलब्ध होते है। इसमें रुद्र को परम देवता स्वीकार किया गया है, जो अपनी शक्ति के माध्यम से लोकों पर शासन करते है। वे प्रत्येक जीवात्मा में विद्यमान है तथा महाप्रलय से सृष्टि का संहार करते है। समस्त भूतों में स्थित होने के कारण शिव सर्वव्याप्त तथा अति सूक्ष्म है, उनकी कृपा से ही जीव बंधन से मुक्त होता है वह सभी आत्माओं की आत्मा अर्थात परमात्मा है। इस प्रकार शैवमत को अनादि माना जाता है। स्वयं शिव ही शैवमत के आदि उपदेष्टा माने जाते है। शैव धर्म में अनेक

सम्प्रदाय देखने को मिलते है। वामन पुराण में चार प्रकार है (1) शैव (2) पाशुपत (3) कापालिक (4) कालामुख शैव सम्प्रदाय में कर्ता शिव है, करण शक्ति, उत्पादन बिन्दु है। इसमें चार पद है– विद्या, क्रिया, योग और चर्चा। इसी प्रकार इनमें तीन पदार्थ है – पति, पशु और पाश। पति–शिव, पशु–जीवात्मा, पाश–बंधन है। जीव पाश से मुक्त होकर सर्वव्यापी, शिव बन जाता है। शिव लीला ससीम स्वरुप को धारण करता है तथा पुनः स्वेच्छा से ही पूर्ण रूप को भी ग्रहण करता है क्योंकि शिव को यह ज्ञान रहता है कि बंधन और मोक्ष अथवा सृष्टि की प्रक्रिया उसकी लीला मात्र है। शिव की दृष्टि में बंधन और मोक्ष मात्र लीला ही है किन्तु बद्धात्मा की दृष्टि से बंधन और मोक्ष वास्तविक है। बंधन की स्थिति में उसे अपने वास्तविक स्वरुप का ज्ञान नहीं रहता। वास्तविक स्वरुप का ज्ञान करने के लिये साधनों अथवा उपायों की आवश्यकता होती है। मोक्ष प्राप्त कर लेने पर अथवा अपने वास्तविक स्वरुप को जान लेने पर आत्मा के लिये भी यह लीला मात्र ही रह जाता है, किन्तु जब तक पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती तब तक बंधन और मोक्ष सत्य है।

कश्मीर शैव दर्शन के अनुसार मोक्ष पूर्णतः की स्थिति है। मोक्ष में आत्मा पूर्ण आनन्द स्वरुप स्वयं शिव ही हो जाता है। इस स्थिति में भेद ज्ञान अथवा द्वैत ज्ञान, अभेद ज्ञान अथवा अद्वैत ज्ञान में परिणत हो जाता है। ''यह और वह'' का भेद ज्ञान ''सब मैं ही हूँ'' में परिणत हो जाता है। आत्मा यह जानने लगता है कि सारा विश्व उसका ही विभव है। इस स्थिति में आत्मा (जीवन मुक्ति की स्थिति में) जो भी कर्म करता है वह उसकी स्पन्दन क्रिया होती है। इस प्रकार कश्मीर शैव दर्शन में जीवन मुक्ति की अवस्था में भी कर्म (स्पन्दन क्रिया) संभव है। कश्मीर शैव दर्शन में कर्म (ऐच्छिक कर्म) अपूर्णता का द्योतक है न कि स्पन्द क्रिया। अतः पूर्णतः की स्थिति में चूंकि आत्मा का कर्म स्पन्द क्रिया में परिणत हो जाता है इसलिये जीवन मुक्ति से यह संभव है। इस दर्शन में कर्म और क्रिया को भिन्न माना गया है। शिवा की क्रिया स्पन्द रुप में है ऐच्छिक नहीं। यह स्वभाविक है जो शिव में स्वयमेव होती है। स्पन्द क्रिया अपूर्णता से प्रेरित कर्म नहीं है बल्कि यह परमानन्द की सहज अभिव्यक्ति है। स्पन्द अर्थात शिव क्रिया का कम्पन सभी भेदों को कारण है। इसमें पहचान शाम्भव, शाक्त और अणव हेतु आध्यात्मिक अनुशासन अनिवार्य है। स्पन्द शाखा में तीन साधनों का प्रतिपादन है। जिसकी व्याख्या शिवसूत्र के तीन अध्यायों में है। इस सम्प्रदाय के अनुसार जीवात्मा और सर्वोच्च आत्मा (शिव) में अद्वैत है परन्तु मल के कारण जीवात्मा अपने अद्वैत का प्रत्यक्ष नहीं आणव, कर्म और माया। मल का विनाश तीन साधनों द्वारा संभव कर सकती। मल तीन है – शाम्भव, शाक्त और आणव। शिव की कृपा से इन साधनों के माध्यम से जीवात्मा निर्मल हो जाती है एवं स्वतंत्र होकर शिव से अपने अद्वैत को पहचान कर लेती है।

आणवोपाय –

इसे क्रियोपाय भी कहते है। यह वह मार्ग है जिसमें साधना के वाह्य रूपों का प्रयोग आत्मानुभुति के लिये किया जाता है। इस मार्ग के मुख्य कार्य मूर्ति पूजा (लिंग पूजा) अथवा मंत्रों, जप पाठ, तीर्थाटन, योग इत्यादि है। मंत्रों के जप को इस मार्ग में विशेष स्थान प्राप्त है। यह मार्ग साधना पथ का प्रथम चरण है। विषयों से प्रभावित व्यक्ति इस मार्ग का अनुशरण करते है। क्रिया प्रधान होने के कारण इसे कर्म मार्ग कहा जाता है यह सद्विद्या स्तर की साधना है।

शाक्तोपाय इसे ज्ञानोपाय भी कहा जाता है। यह क्रिया योग से उच्चतर मार्ग है। इस मार्ग के साधक द्वैत ज्ञान से अद्वैत ज्ञान की ओर अग्रसर होने का प्रयास करता है। इस प्रयास में साधक आत्म ज्ञान के लिये "आत्मा ही सब कुछ है'' का अभ्यास करता है। इसके बारंबार अभ्यास करने से अद्वैत ज्ञान दृढतर हो जाता है। इसमें

ज्ञान के ही प्रधान्य होने से हम इस मार्ग को ज्ञानोपाय कहते है।

शाम्भोपा –

इसे इच्छाशक्ति या इच्छोपाय भी कहते है। इसके प्रयोग से आत्मनूभूति के लिये प्रयास किया जाता है। साधन के इस स्तर पर इच्छा शक्ति का सच शक्तियों पर प्रधान्य होता है। यह साधना का आध्यात्मिक स्तर है जहां अहम का समर्पण किया जाता है तथा सर्वाहभाव का अभ्यास किया जाता है।

कश्मीर शैव दर्शन में मोक्ष की अवधारणा को समझने के पश्चात हम यही निष्कर्ष निकालते है कि सामान्य रूप से भारतीय दर्शन में मोक्ष को दो अर्थों में लिया जाता है – निषेधात्मक तथा भावात्मक। निषेधात्मक अर्थ में बंधन (मल अथवा अज्ञान) से निवृति मोक्ष है तथा भावात्मक अर्थ में स्वरुप (वास्तविक स्वरुप) को प्राप्ति ही मोक्ष है। स्वरुप की प्राप्ति में मोक्ष प्राप्त कर उसे ही प्राप्त किया जाता है जो पहले से ही प्राप्त है। इस अवस्था में कोई नवीन वस्तु प्राप्त नहीं होती। देखने में लगता है कि यह नवीन अवस्था की ही प्राप्ति है, किन्तु वास्तव में यह पूर्णावस्था की ही प्राप्ति है। यह उसकी भावत्मक अवस्था है।

इसकी दूसरी अवस्था के अनुसार आणव आदि मलों से निवृत होकर स्वरुप की प्राप्ति ही मोक्ष है। यह मोक्ष की निषेधात्मक अवस्था कहलाती है।

कर्म, भक्ति तथा ज्ञान की दृष्टि से आणवोपाय कर्म मार्ग अथवा कर्म योग है, शाक्तोपाय ज्ञान मार्ग है तथा शाम्भवोपाय भक्ति मार्ग है। योग की दृष्टि से आणवोपाय हठयोग है, शाक्तोपाय राजयोग है तथा शाम्भवोपाय अध्यात्म योग है। आणवोपाय को हठयोग इसलिये कहा जाता है क्योंकि इसमें योग की बाह्य शारीरिक क्रियाऐं, यथा यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि किया जाता है। शाक्तोपाय राजयोग है क्योंकि योग की मानसिक क्रियाऐं ध्यान, मनन, भावना, मन्त्र आदि का अभ्यास किया जाता है तथा शाम्भवोपाय को अध्यात्म योग इसलिये कहा जाता है क्योंकि इसमें योग की आध्यात्मिक साधनाऐं यथा धारणा, समाधि द्वारा पूर्णहम से एकाकार होया जाता है।

इन साधनों की अन्तिम चरण प्रत्याभिज्ञा है। शाम्भवोपाय की ही अन्तिम स्थिति में पूर्णाहम से एकाकार हो जाना प्रत्यभिज्ञा है। इसे अनुपाय कहा जाता है क्योंकि इस स्तर पर किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक क्रिया नहीं की जाती है। इस अवस्था में पूर्ण ज्ञान बिना किसी प्रयास के ही हो जाता है। शाम्भवोपाय और अनुपाय में कोई विशेष अन्तर नहीं है। शाम्भवोपाय की ही उच्चतम अवस्थिति को अनुपाय कहते है। इसके द्वारा आनन्द शक्ति पूर्ण रुप से प्रकाशित हो जाती है। इसलिये इसे आनन्दोपाय भी कहते है तथा इस उपाय द्वारा ही प्रत्यभिज्ञा होने इसे प्रत्याभिज्ञोपाय भी कहते है। प्रत्यभिज्ञा साधन एवं साध्य दोनों है क्योंकि स्वरुप की पहचान (साध्य) के लिये स्वरुप की पहचान (साधन) ही किया जाता है।

वस्तुतः उपरोक्त साधनों के अभ्यास से मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है यही कश्मीर शैव दर्शन में मोक्ष की अवधारणा प्रतीत होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. कश्मीर शैविज्म, जे०सी० चटर्जी, काश्मीर, ग्रन्थावली श्रीनगर, 1914
2. काश्मीर शैवदर्शन, बलजिन्नाथ पण्डित, श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू, 1973
3. शैवमत, यदुवंशी झा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1955
4. तन्त्रालोक, अभिनवगुप्ता, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1918

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 94-99

Dr. B. R. Ambedkar's *The Buddha and His Dhamma* and the Quest for Global Peace : A Democratic Perspective

Pravesh Bhalse
Research Scholar, Department of Political Science,
Mata Jijabai Govt Girls PG College, Indore (M.P) India

Abstract :

The contemporary world faces multiple challenges including armed conflicts, democratic decline, social inequalities, religious extremism, human rights violations, and environmental crises. These challenges necessitate the search for an ethical and democratic framework capable of promoting sustainable global peace. Dr. B. R. Ambedkar's *The Buddha and His Dhamma* presents such a framework through its synthesis of Buddhist ethics and democratic values. Ambedkar reinterpreted Buddhism as a rational, humanistic, and socially engaged philosophy grounded in liberty, equality, fraternity, wisdom, and compassion. This paper examines Ambedkar's democratic interpretation of Buddhism and explores its relevance for contemporary peace-building. It argues that Ambedkar's conception of Dhamma provides the moral foundation necessary for democracy, while democracy offers the institutional framework through which Buddhist ethical principles can be realized. The paper concludes that Ambedkar's democratic Buddhism offers a comprehensive and globally relevant paradigm for achieving positive peace based on justice, human dignity, social inclusion, and international cooperation.

Keywords : Ambedkar, Democracy, Buddhism, Dhamma, Global Peace, Social Justice, Human Rights, Fraternity, Democratic Ethics.

1. Introduction :

Peace has remained one of humanity's most cherished aspirations. Yet despite remarkable advances in science, technology, and economic development, the contemporary world continues to witness violence, war, discrimination, inequality, and social fragmentation. Traditional approaches to peace often focus on political agreements, military deterrence, or economic cooperation. However, sustainable peace requires deeper ethical and social foundations capable of transforming human

relationships and institutions.

Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar (1891–1956), one of the foremost political philosophers and social reformers of modern India, offered such a framework through his democratic thought and his reinterpretation of Buddhism. While Ambedkar is widely celebrated as the principal architect of the Indian Constitution and a champion of social justice, his contribution to peace studies and democratic ethics deserves greater scholarly attention.

His final major work, *The Buddha and His Dhamma* (1957), represents the culmination of his intellectual journey. In this text, Ambedkar reconstructed Buddhism as a rational, ethical, and socially transformative philosophy capable of addressing the root causes of human suffering, injustice, and conflict. He viewed Buddhism not merely as a religion but as a moral and social philosophy dedicated to human welfare and social reconstruction.

For Ambedkar, democracy and Buddhism were inseparable. Democracy provided the institutional framework for freedom and equality, while Dhamma supplied the ethical foundation necessary for sustaining democratic life. This paper examines Ambedkar's synthesis of democracy and Buddhism and argues that it constitutes a powerful framework for achieving global peace in the twenty-first century.

2. Objectives of the Study :

The study seeks to :

- Examine Ambedkar's interpretation of Buddhism in *The Buddha and His Dhamma*.
- Analyze Ambedkar's concept of democracy.
- Explore the relationship between democracy and Dhamma in Ambedkar's thought.
- Assess the contribution of Ambedkar's philosophy to global peace.
- Evaluate the contemporary relevance of Ambedkar's democratic Buddhism.

3. Research Methodology :

The research adopts a qualitative and analytical methodology. Primary sources include *The Buddha and His Dhamma*, *Annihilation of Caste*, Constituent Assembly Debates, and Ambedkar's writings on democracy and social justice. Secondary sources include scholarly books, journal articles, and studies on Buddhism, democracy, and peace theory. The study employs an interdisciplinary approach integrating political theory, Buddhist philosophy, democratic studies, and peace research.

4. Literature Review and Research Gap :

Scholars such as Gail Omvedt, Valerian Rodrigues, D. C. Ahir, and Christophe Jaffrelot have extensively analyzed Ambedkar's contributions to social justice, constitutionalism, and Buddhist thought. Their works highlight Ambedkar's commitment to equality, human dignity, and democratic transformation.

However, much of the existing scholarship focuses on caste, constitutional law, or religious conversion. Limited attention has been given to the relationship between Ambedkar's democratic philosophy, *The Buddha and His Dhamma*, and the broader discourse on global peace.

This paper addresses that gap by examining Ambedkar's democratic Buddhism as a normative framework for peace-building in contemporary societies.

5. Ambedkar's Concept of Democracy :

Ambedkar's conception of democracy extends beyond elections and governmental institutions. He regarded democracy as a way of life rooted in ethical and social relationships.

According to Ambedkar :

"Political democracy cannot last unless there lies at the base of it social democracy."

Social democracy, in Ambedkar's view, rests upon three interconnected principles :

- **Liberty :**

Liberty guarantees freedom of thought, expression, belief, and action. It protects individual autonomy and encourages intellectual growth.

- **Equality :**

Equality ensures equal status and opportunities for all individuals. Ambedkar believed that social and economic inequalities undermine democratic institutions and generate conflict.

- **Fraternity :**

Fraternity fosters solidarity, mutual respect, and social cohesion. It creates emotional bonds necessary for democratic coexistence.

Ambedkar considered these principles inseparable and essential for the success of democratic governance.

6. Ambedkar's Reconstruction of Buddhism in *The Buddha and His Dhamma* :

Ambedkar's interpretation of Buddhism departs significantly from ritualistic and metaphysical traditions. He presents Buddhism as a practical philosophy concerned with human welfare and social reconstruction.

He identified three fundamental principles :

- **Prajna (Wisdom)**

Prajna signifies rational understanding and critical inquiry. It opposes superstition, dogmatism, and blind faith.

- **Karuna (Compassion)**

Karuna embodies empathy and concern for human suffering. It promotes non-violence, cooperation, and humanitarian responsibility.

- **Samata (Equality)**

Samata affirms the equal dignity of all human beings and rejects social hierarchies based on birth or status.

These principles form the ethical foundation of Ambedkar's Dhamma and provide the moral basis for a just society.

7. Democracy and Dhamma: Ambedkar's Philosophical Synthesis :

One of Ambedkar's most significant intellectual contributions lies in his synthesis of democratic values and Buddhist ethics.

Democratic Principle	Buddhist Ethical Principle
Liberty	Freedom of Thought
Equality	Samata
Fraternity	Karuna and Maitri
Justice	Dhamma
Human Rights	Human Dignity

8. Ambedkar's Vision of Global Peace :

Ambedkar's conception of peace corresponds closely to the modern idea of "positive peace," which involves the presence of justice, equality, and harmonious social relations rather than merely the absence of violence.

- **Peace through Social Justice :**

Injustice, discrimination, and exclusion are major sources of conflict. Ambedkar believed that lasting peace requires the elimination of structural inequalities and the establishment of social justice.

- **Peace through Rationality :**

Prajna encourages critical thinking and rational dialogue. It reduces prejudice, fanaticism, and ideological extremism, thereby fostering peaceful coexistence.

- **Peace through Compassion :**

Karuna promotes empathy and concern for others. It encourages humanitarian action, reconciliation, and non-violent conflict resolution.

- **Peace through Equality :**

Samata affirms the equal worth of all human beings. Equality reduces social tensions and contributes to social harmony.

Thus, Ambedkar's democratic Buddhism addresses both the structural and moral causes of violence.

9. Contemporary Relevance of Ambedkar's Democratic Buddhism :

The relevance of Ambedkar's thought has increased significantly in the twenty-first century.

- **Democratic Backsliding :**

Many democracies face polarization, declining public trust, and authoritarian tendencies. Ambedkar's emphasis on constitutional morality and social democracy remains crucial for preserving democratic institutions.

- **Global Inequality :**

Economic disparities remain a major source of social unrest. Ambedkar's commitment to social justice and equal opportunity provides guidance for inclusive development.

- **Human Rights and Social Inclusion :**

His advocacy of dignity, equality, and freedom aligns closely with contemporary human rights principles and movements for social inclusion.

- **International Conflict and Peace-Building :**

Ambedkar's emphasis on compassion, dialogue, and justice corresponds with modern approaches to conflict resolution and peace-building.

- **Relevance to the Sustainable Development Goals :**

Ambedkar's democratic Buddhism contributes directly to the realization of goals related to poverty reduction, quality education, gender equality, reduced inequalities, peace, justice, and strong institutions.

10. Findings and Discussion :

The study reveals several important findings :

- Ambedkar viewed democracy as a moral and social ideal rather than merely a political system.
- His interpretation of Buddhism provides the ethical foundation necessary for democratic life.
- The principles of Prajna, Karuna, and Samata correspond closely to contemporary theories of peace and human rights.
- His synthesis of democracy and Dhamma offers a comprehensive framework for achieving positive peace.
- The contemporary relevance of his thought extends to issues of democracy, inequality, extremism, environmental sustainability, and technological ethics.

11. Conclusion :

Dr. B. R. Ambedkar's *The Buddha and His Dhamma* represents one of the most profound modern attempts to integrate democracy, ethics, and social justice. By synthesizing democratic values with Buddhist principles, Ambedkar developed a comprehensive framework capable of addressing the structural and moral causes of violence and conflict.

His vision demonstrates that peace cannot be sustained merely through political arrangements or economic growth. Rather, peace requires a transformation of social relationships and moral consciousness. Democracy provides the institutional framework, while Dhamma supplies the ethical foundation necessary for its success.

Ambedkar's contribution to global peace lies not merely in his advocacy of democracy or Buddhism individually, but in his unique synthesis of democratic institutions and Buddhist ethics. This synthesis transforms peace from a political objective into a moral, social, and global project grounded in justice, equality, fraternity, wisdom, compassion, and human dignity.

In a world increasingly characterized by conflict, polarization, and inequality, Ambedkar's democratic Buddhism remains an indispensable intellectual resource for building a just, inclusive, and peaceful global order.

References :

- Ambedkar, B. R. (1936). *Annihilation of Caste*.
- Ambedkar, B. R. (1948). *States and Minorities*.
- Ambedkar, B. R. (1949). Constituent Assembly Debates.
- Ambedkar, B. R. (1957). *The Buddha and His Dhamma*. Siddharth College Publications.
- Ahir, D. C. (1990). *Dr. Ambedkar and Buddhism*. B. R. Publishing Corporation.
- Galtung, J. (1996). *Peace by Peaceful Means*. Sage Publications.
- Jaffrelot, C. (2005). *Dr. Ambedkar and Untouchability*. Permanent Black.
- Omvedt, G. (2003). *Buddhism in India: Challenging Brahmanism and Caste*. Sage Publications.
- Rodrigues, V. (2002). *The Essential Writings of B. R. Ambedkar*. Oxford University Press.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 100-104

गांधीवादी विचारधारा बनाम क्रांतिकारी आंदोलन : स्वतंत्रता प्राप्ति के दो भिन्न मार्ग

प्रिन्स कुमार
यूजीसी–नेट–जेआरएफ, इतिहास
वरिष्ठ शोध अध्येता, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग,
बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।



सारांश :

गांधीवादी विचारधारा और क्रांतिकारी आंदोलन, भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के दो भिन्न लेकिन पूरक मार्ग थे। एक का लक्ष्य अहिंसा और जन–आंदोलन था, वहीं दूसरे ने विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र संघर्ष को आवश्यक माना। दोनों ही धाराओं ने अपनी रणनीतियों से स्वतंत्रता संग्राम को गति दी। महात्मा गांधी के मार्ग का आधार सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह था। उनका मानना था कि साधन और साध्य दोनों पवित्र होने चाहिए। इसमें ब्रिटिश सरकार के खिलाफ असहयोग, सविनय अवज्ञा, बहिष्कार और रचनात्मक कार्य (जैसे– खादी, स्वदेशी) शामिल थे। यह एक जन–आंदोलन था जिसमें समाज के हर वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित की गई। सिर्फ राजनीतिक आजादी (स्वराज) प्राप्त करना ही नहीं, बल्कि समाज से छुआछूत, सांप्रदायिक भेदभाव को मिटाना और आत्मनिर्भरता हासिल करना भी था। असहयोग और भारत छोड़ो जैसे आंदोलनों ने जन–जागृति का अभूतपूर्व कार्य किया।

क्रांतिकारी आंदोलन विचारधारा के समर्थकों का मानना था कि अंग्रेजों को प्रेम या अनुनय–विनय से नहीं, बल्कि बल प्रयोग और सशस्त्र विद्रोह से ही देश से बाहर निकाला जा सकता है। इस मार्ग में गुप्त संगठन बनाना, सरकारी खजाना लूटना, हथियारों का प्रबंध करना और ब्रिटिश अधिकारियों व दमनकारी नीतियों के खिलाफ सीधे हिंसक हमले करना शामिल था। भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुखदेव, राजगुरु, राम प्रसाद बिस्मिल और सुभाष चन्द्र बोस जैसे नायकों ने इस धारा का नेतृत्व किया। इनका मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश प्रशासन को पंगु बनाना और देश के युवाओं में देशभक्ति की तीव्र ज्वाला जगाना था, ताकि वे स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों का सर्वोच्च बलिदान देने को तैयार रहें।

मुख्य शब्द : गांधीवादी विचारधारा, क्रांतिकारी आंदोलन, अहिंसा, सशस्त्र विद्रोह, गुप्त संगठन।

परिचर्चा :

गांधीवादी विचारधारा महात्मा गांधी द्वारा अपनाई और विकसित की गई उन धार्मिक–सामाजिक विचारों का समूह जो उन्होंने पहली बार वर्ष 1893 ई. से 1914 ई. तक दक्षिण अफ्रीका में तथा उसके बाद फिर भारत में अपनाई थी। गांधीवादी दर्शन न केवल राजनीतिक, नैतिक और धार्मिक है, बल्कि पारंपरिक और आधुनिक तथा

सरल एवं जटिल भी है। यह कई पश्चिमी प्रभावों का प्रतीक है, जिनको गांधीजी ने उजागर किया था, लेकिन यह प्राचीन भारतीय संस्कृति में निहित है तथा सार्वभौमिक नैतिक और धार्मिक सिद्धांतों का पालन करता है। यह दर्शन कई स्तरों आध्यात्मिक या धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यक्तिगत और सामूहिक आदि पर मौजूद है। इनके अनुसार –

- आध्यात्मिक या धार्मिक तत्व और ईश्वर इसके मूल में हैं।
- मानव स्वभाव को मूल रूप से सद्‌गुणी है।
- सभी व्यक्ति उच्च नैतिक विकास और सुधार करने के लिये सक्षम हैं।

गांधीवादी विचारधारा आदर्शवाद पर नहीं, बल्कि व्यावहारिक आदर्शवाद पर जोर देती है। गांधीवादी दर्शन एक दोधारी तलवार है जिसका उद्देश्य सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों के अनुसार व्यक्ति और समाज को एक साथ बदलना है। गांधीजी ने इन विचारधाराओं को विभिन्न प्रेरणादायक स्रोतों जैसे – भगवद्‌गीता, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, बाइबिल, गोपाल कृष्ण गोखले, टॉलस्टाय, जॉन रस्किन आदि से विकसित किया। टॉलस्टाय की पुस्तक 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू' का महात्मा गांधी पर गहरा प्रभाव था। गांधीजी ने रस्किन की पुस्तक 'अंटू दिस लास्ट' से 'सर्वोदय' के सिद्धांत को ग्रहण किया और उसे जीवन में उतारा। इन विचारों को बाद में "गांधीवादियों" द्वारा विकसित किया गया है, विशेष रूप से, भारत में विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण तथा भारत के बाहर मार्टिन लूथर किंग जूनियर और अन्य लोगों द्वारा।

प्रमुख गांधीवादी विचारधारा :

सत्य और अहिंसा रू गांधीवादी विचारधारा के ये 2 आधारभूत सिद्धांत हैं। गांधीजी का मानना था कि जहां सत्य है, वहां ईश्वर है तथा नैतिकता – (नैतिक कानून और कोड) इसका आधार है। अहिंसा का अर्थ होता है प्रेम और उदारता की पराकाष्ठा। गांधीजी के अनुसार अहिंसक व्यक्ति किसी दूसरे को कभी भी मानसिक व शारीरिक पीड़ा नहीं पहुंचाता है।

सत्याग्रह : इसका अर्थ है सभी प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ शुद्धतम आत्मबल का प्रयोग करना। यह व्यक्तिगत पीड़ा सहन कर अधिकारों को सुरक्षित करने और दूसरों को चोट न पहुंचाने की एक विधि है। सत्याग्रह की उत्पत्ति उपनिषद, बुद्ध–महावीर की शिक्षा, टॉलस्टाय और रस्किन सहित कई अन्य महान दर्शनों में मिल सकती है।

सर्वोदय – सर्वोदय शब्द का अर्थ है 'यूनिवर्सल उत्थान' या 'सभी की प्रगति'। यह शब्द पहली बार गांधी जी ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर जॉन रस्किन की पुस्तक "अंटू दिस लास्ट" पर पढ़ा था।

स्वराज – हालांकि स्वराज शब्द का अर्थ स्व–शासन है, लेकिन गांधीजी ने इसे एक ऐसी अभिन्न क्रांति की संज्ञा दी जो कि जीवन के सभी क्षेत्रों को समाहित करती है। गांधीजी के लिये स्वराज का मतलब व्यक्तियों के स्वराज (स्व–शासन) से था और इसलिये उन्होंने स्पष्ट किया कि उनके लिये स्वराज का मतलब अपने देशवासियों हेतु स्वतंत्रता है और अपने संपूर्ण अर्थों में स्वराज स्वतंत्रता से कहीं अधिक है, यह स्व–शासन है, आत्म–संयम है और इसे मोक्ष के बराबर माना जा सकता है।

ट्रस्टीशीप – ट्रस्टीशिप एक सामाजिक–आर्थिक दर्शन है जिसे गांधी जी द्वारा प्रतिपादित किया गया था। यह अमीर लोगों को एक ऐसा माध्यम प्रदान करता है जिसके द्वारा वे गरीब और असहाय लोगों की मदद कर सकें। यह सिद्धांत गांधी जी के आध्यात्मिक विकास को दर्शाता है, जो कि थियोसोफिकल लिटरेचर और

भगवद्गीता के अध्ययन से उनमें विकसित हुआ था।

स्वदेशी : स्वदेशी शब्द संस्कृत से लिया गया है और यह संस्कृत के 2 शब्दों का एक संयोजन है। 'स्व' का अर्थ है स्वयं और 'देश' का अर्थ है देश। इसलिये स्वदेश का अर्थ है अपना देश। स्वदेशी का अर्थ अपने देश से है, लेकिन ज्यादातर संदर्भों में इसका अर्थ आत्मनिर्भरता के रूप में लिया जा सकता है। स्वदेशी राजनीतिक और आर्थिक दोनों तरह से अपने समुदाय के भीतर ध्यान केंद्रित करता है। यह समुदाय और आत्मनिर्भरता की अन्योन्याश्रितता है। गांधीजी का मानना था कि इससे स्वतंत्रता (स्वराज) को बढ़ावा मिलेगा, क्योंकि भारत का ब्रिटिश नियंत्रण उनके स्वदेशी उद्योगों के नियंत्रण में निहित था। स्वदेशी भारत की स्वतंत्रता की कुंजी थी और महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में चरखे द्वारा इसका प्रतिनिधित्व किया गया था।

भारत की स्वतंत्रता के लिये अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन दो प्रकार का था – एक अहिंसक आंदोलन एवं दूसरा सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन। भारत की आजादी के लिए 1757 ई. से 1947 ई. के बीच जितने भी प्रयत्न हुए, उनमें स्वतंत्रता का सपना संजोये क्रान्तिकारियों और शहीदों की उपस्थिति सबसे अधिक प्रेरणादायी सिद्ध हुई। वस्तुतः भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। भारत की धरती के प्रति जितनी भक्ति और मातृ–भावना उस युग में थी, उतनी कभी नहीं रही।

सर्वप्रथम बंगाल में हिन्दू पुनरोत्थान के फलस्वरूप एक नई राष्ट्रीय चेतना का जागरण हुआ। लगभग इसी समय पंजाब और महाराष्ट्र में भी यह आक्रामक चेतना जगी। इसका उन्नत रूप 1905 ई. के बाद कांग्रेस में अतिवादी दल के उत्कर्ष के साथ प्रस्तुत हुआ। राजनैतिक आंदोलन के एक महत्वपूर्ण अध्याय, स्वदेशी आंदोलन, में इस राष्ट्रवादी भावना का निर्णायक योगदान था। स्वदेशी आंदोलन 1905 ई. में बंगाल विभाजन के विरोध का सशक्त माध्यम रहा। इसमें मुख्य भूमिका बंगाली भद्रलोक की थी जिन्हें आमजन का भी कुछ समर्थन प्राप्त था। इस आंदोलन से आक्रामक राष्ट्रवाद का एक नया आयाम क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के रूप में उभरा।

वैसे तो बंगाल के क्रांतिकारी संगठन अनुशीलन समिति का गठन 1902 ई. में ही हो चुका था, मगर राष्ट्रीय आंदोलन में इसकी भागेदारी इसी आंदोलन के साथ आरंभ हुई। इसमें सचिन्द्रनाथ सान्याल की भूमिका महत्वपूर्ण थीं। इनके साथ जतिन्द्रनाथ बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बिपिन चन्द्र पाल और अरविन्दो घोष की भी सक्रिय भागीदारी थी। रोचक तथ्य यह भी है कि मौलाना अबुल कलाम आजाद के राजनैतिक जीवन का आरंभ भी इसी आंदोलन के साथ हुआ। रविन्द्रनाथ टैगोर ने, जो सक्रिय आंदोलनकारी राजनीति से अलग थे, भी इस आंदोलन के साथ 'अमार सोना बंगला' गीत लिखकर अपनी व्यथा व्यक्त की। पंजाब में लाला लाजपत राय ने इस आंदोलन का समर्थन किया और समाचार–पत्रों में लेख प्रकाशित किए। बंबई और पूना में बाल गंगाधर तिलक ने स्वदेशी के समर्थन में स्वदेशी स्टोर की स्थापना की तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया। बिहार में स्वदेशी आंदोलन का सीमित प्रभाव रहा। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बिहार की यात्रा की और स्वदेशी का संदेश लोगों तक पहुंचाया। कुछ अन्य नेता भी इस प्रयास में शामिल रहे। मगर बंगाल विभाजन के विरोध के मुद्दे पर बिहार में कोई ज्यादा हलचल नहीं मची।

इसके पूर्व तिलक ने शिवाजी और गणपति उत्सव के माध्यम से हिन्दुओं में राजनैतिक चेतना और गोलबंदी का सफल प्रयास किया था। बाल गंगाधर तिलक, बिपिन चंद्र पाल और लाला लाजपत राय कांग्रेस के अतिवादी नेताओं में सर्वप्रमुख थे। इनका दृष्टिकोण मुस्लिम विरोधी नहीं था। तिलक ने खिलाफत आंदोलन (1920 ई.) का समर्थन भी किया और मुसलमानों के साथ समन्वय को राष्ट्रीय आंदोलन के सुदृढ़ीकरण का माध्यम

माना। लेकिन स्वदेशी आंदोलन के हिन्दूवादी तेवर ने मुसलमानों में चिंता पैदा की। 1906 ई. में मुस्लिम लीग की स्थापना इसी का परिणाम थी। कालांतर में मुस्लिम लीग मुस्लिम पृथक्करण की सांप्रदायिक राजनीतिक का माध्यम बनी और इसने मुसलमानों के लिए एक पृथक राष्ट्र (पाकिस्तान) की मांग की।

स्वदेशी आंदोलन से जुड़े प्रमुख नेताओं में भी ऑरोबिन्दो ने आंदोलन समाप्त होने पर आध्यात्म को अपनाया। ब्रिटिश भारत से बाहर फ्रेंच अधिकृत पांडिचेरी में उन्होंने अपना आश्रम बनाया और राजनीति त्याग कर आध्यात्म की शिक्षा दी। जतिन्द्रनाथ बनर्जी भी रामकृष्ण मिशन में चले आए। धर्म की ओर इस पुनर्गमन का बड़ा कारण यह था कि इनकी राष्ट्रीय चेतना बहुत हद तक धर्म से ही प्रेरित थी। इसी चेतना ने राजनैतिक आंदोलन का रास्ता अपनाया था। बाल, पाल और लाल तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी कांग्रेस की मुख्य धारा का हिस्सा बने। अतः हिन्दू–राष्ट्रवाद का यह आरंभिक चरण भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में विलीन हो गया। स्मरणीय है कि कांग्रेस उस समय विभिन्न प्रकार के विचारों को साथ लेकर चलने की नीति में विश्वास रखती थी। वह एक प्रकार का Umbrella Organisation थी, जिसकी छत्रछाया में सभी, और कभी–कभी परस्पर विरोधी, विचारधाराओं के पनपने के अवसर थे। यहां तक कि मुस्लिम लीग के आरंभिक चरण के कई नेता कांग्रेस के भी सदस्य थे, यही स्थिति हिन्दू महासभा के सदस्यों के सिलसिले में भी थी। आगे के वर्षों में ऐसे अवसर आए जब कांग्रेस और लीग ने पारस्परिक सहयोग का रास्ता अपनाया। लेकिन धीरे–धीरे मुस्लिम लीग की सांप्रदायिक नीति के कारण दोनों के रास्ते अलग हो गए।

निष्कर्ष :

गांधीजी ने राजनीति और नैतिकता के बीच पुल का निर्माण करते हुए यह तर्क दिया कि राजनीति के क्षेत्र में साधन और साध्य दोनों समान रूप से पवित्र होने चाहिए। गांधीजी ने राजनीति को आध्यात्मिक आधार देकर उसे स्वच्छ रखने का समर्थन किया। इसकी प्रेरणा उन्हें प्रसिद्ध मनीषी गोपाल कृष्ण गोखले (1866 ई. –1915 ई.) से मिली। 'आध्यात्मिक', 'धार्मिक' और 'नैतिक' – ये तीनों अभिव्यक्तियां गांधीजी के लिए एक ही भाव व्यक्त करती थीं। धर्म को उन्होंने कभी संकुचित अर्थ में नहीं लिया। उनकी दृष्टि में विश्व के सब धर्मों का सार–तत्व एवं ध्येय एक–जैसा था। वे धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता के समर्थक थे। राजनीति के धार्मिक आधार से उनका तात्पर्य यह था कि प्रत्येक राजनीतिक कृत्य या संस्था को नैतिक कसौटी पर कसना आवश्यक है। मार्क्स (1818–83) के भौतिकवादी दर्शन के विपरीत महात्मा गांधी अध्यात्म–तत्व की प्रधानता में विश्वास रखते थे। गांधीजी के अनुसार, यह भौतिक संसार एवं इसकी चमक–दमक नश्वर है, अतः सांसारिक जीवन में उन्नति के लिए आध्यात्मिक जीवन का तिरस्कार करना बुद्धिमत्ता नहीं है। जो राजनीति धर्म से विहीन है, वह मृत्युजाल के तुल्य है, और आत्मा को पतन के गर्त में धकेलती है। दूसरे शब्दों में, वे नीतिशास्त्र को राजनीति तथा अर्थशास्त्र से भी ऊंचा स्थान देते थे। उनकी दृष्टि में राजनीति वहीं तक वरेण्य थी, जहां तक वह नैतिकता की कसौटी पर खरी उतरती हो, अन्यथा उससे किनारा कर लेना चाहिए।

क्रांतिकारी राष्ट्रवादी आंदोलन के अंतर्गत 19वीं शताब्दी के अंत में अकाल और प्लेग से बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हुई जिससे लोगों के मन में निराशा और दुःख के बादल छा गए। मगर यूरोप और एशिया में कुछ ऐसी घटनाएं घटी जिनसे यहां भी आशा की किरण फूटी, जैसे कि ओटोमन साम्राज्य से बाल्कन राज्य की आजादी, 1894 ई. में अबिसीनिया जैसे छोटे देश से इटली की सेना की हार तथा 1905 ई. में जापान के हाथों रूस की हार। इन घटनाओं से भारत के लोगों का पश्चिम की श्रेष्ठता पर से विश्वास उठ गया। बेकारी और

अंग्रेजों की नस्लवादी भेदभाव की नीति से भारत के शीक्षित नौजवानों में असंतोष बढ़ा जिससे ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध उग्रवादी आंदोलन का जन्म हुआ। इस प्रकार 20वीं सदी के आरंभ में भारत में क्रांतिकारी लहर दौड़ गई जिससे क्रांतिकारी आंदोलन को बढ़ावा मिला।

संदर्भ ग्रंथ :

1. शुक्ल, रामलखन (संपा.), आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, प्रथम संस्करण वर्ष 1987.
2. गाबा, ओम् प्रकाश, भारतीय राजनीति–विचारक, मयूर पेपरबैक्स, इंदिरापुरम, प्रथम संस्करण वर्ष 1999.
3. भास्कर, अरविन्द, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, कलाम पब्लिकेशन, सीकर (राजस्थान), तृतीय संस्करण 2024.
4. गुप्त, मन्मथनाथ, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, वर्ष 2019.
5. गुप्त, मन्मथनाथ, क्रांतिकारी आंदोलन एक दस्तावेज, समय प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2021.
6. अहमद, इमत्याज, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष और बिहार, नेशनल पब्लिकेशन, पटना, प्रथम संस्करण वर्ष 2023.
7. राय, अमित कुमार, भारतीय स्वतंत्रता का क्रांतिकारी आन्दोलन, निशा साइंटीफिक, दिल्ली, वर्ष 2020.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 105-113

Contribution To Stress and Burnout Experienced by Employed Mothers

Dr. Priya Singh

Assistant Professor (Department of Commerce and Management, Institute of Management Studies)
Mahatma Gandhi Kashi Vidhyapith University Varanasi.

Abstract :

An analysis of the literature showed that there aren't many empirical research on job burnout, especially among working mothers. Thus, the primary causes and reasons of job burnout among working mothers were investigated in this study. This study looked at working mothers' actual experiences with stress and burnout. In this qualitative study, 15 working mothers from varanasi were interviewed. The experience was described by a number of themes and sub-themes that arose from the phenomenological approach. The data revealed six sub-themes and four main themes: work-family conflict, work culture, job related health factor, and work overload. The causes of burnout among working mothers are examined in this article, along with suggestions for additional research. The findings of the interviews indicate that participants are experiencing similar levels of stress at a certain point in time.

Keywords : Workplace Burnout, Workplace Families Dispute, Workplace Wellness Factor, Work Pressure.

It is becoming more difficult for women to work in the current era without experiencing stress as demands rise. This study focuses on the stress and burnout experienced by working women in the public and private sectors. In general, the term "stress" refers to the sensation of being stuck with an issue that is beyond one's control. The issue causes employees to feel suffocated and under pressure. Therefore, stress might be characterized as a danger or difficulty to one's health. There are different kinds of stress. Stress at work causes burnout. Job burnout is characterized by a pessimistic view of the importance of one's work and a lack of confidence in one's ability to succeed at work, negativity, fatigue, and individual achievement/performance are the three main aspects of job burnout. This research will be qualitative in nature. Information will be gathered via conducting interviews. There will be open-ended questions about women's stress and burnout at work.

ABOUT BURNOUT :

Since there isn't a universally recognized definition of burnout, most people agree that it has three components: diminished individual success, personal detachment, and emotional tiredness (Kulkarni, 2006). According to Kulkarni (2006), common symptoms include, but are not limited to, persistent negative work-related mood, strain, fatigue distress, tension, chronic fatigue, depression, professional melancholia, feelings of ineffectiveness, decreased motivation, typical personality crisis, and poor mental health. Stress and burnout have a direct effect on businesses in addition to negatively affecting a person's health and mental health.

People who may be burned out may show signs of low morale, decreased productivity, and poor job quality. Employee burnout may show up as higher absenteeism and staff turnover rates, higher employee compensation claims, and higher rates of on-the-job injuries, all of which raise the need for occupational health services. Organizations must understand the consequences of work pressures that result in burnout. This knowledge will enable the company to assist its employees in preventing and treating this illness. The amount of work and responsibility assigned to a person may rise as their career progresses.

This results in the "stale phase," as described by Gannon (2008). It is challenging for someone to recuperate once they go from being exhausted to stale to burned out. In general, tasks take longer to finish, and persistent poor performance saps motivation. After experiencing burnout, academics may find it harder and more challenging to carry on with their work. Burnout has been described as an existential crisis in a different psychological perspective. This crisis develops when a person's sense of self-worth and the value of their work are questioned. Teachers who are at this stage of burnout often wonder why they are employed in a low-paying and unappreciated position.

BURNOUT IN WOMENS :

Women suffer burnout due to a variety of stressors and issues specific to their gender. Women face more obstacles as they move up the corporate ladder and assume greater leadership roles, such as "the sporadic focus on professional development, time-consuming childcare, responsibility for family life, and a woman's tendency toward understatement" (Schueller-Weidekamm & Kautzky-Willer, 2012, p. 244).

These experts also agree that women leaders' careers are impacted by external variables, such as their personal and familial lives. Lack of a women's network and workplace harassment were other obstacles to long-term job advancement. According to SchuellerWeidekamm and Kautzky-Willer (2012), women in leadership may face difficulties due to a lack of female mentors and role models and poor self-confidence.

Research frequently highlights caregiving obligations as a barrier to a woman's career

advancement. It has been determined how much time women spend on family life, including taking care of their children's education, managing family life and structure, and childcare (Watts, 2009). According to Karkoulian and Srour (2016), p. 4919, "Women report significant challenges when balancing their work and family lives, due to the lack of sufficient time, their husbands' lack of involvement in house chores, cultural norms, and gender biases that still exist in the workplace today." "These stress factors might lead to a burnout syndrome that occurs in > 30% of people who work in the healthcare system." Women leaders with families face additional stress owing to the demands of their careers and families.

Multiple studies were carried out to identify the key stressors and factors contributing to job burnout. In their study, Guglielmi and Tatrow (1998) highlighted the significant influence of organizational climate on elevated job burnout rates, particularly among female educators. In contrast, Bischoff, DeTienne, and Quick's (1999) primary goal was to identify the variables influencing women's mental health both public and private sector workers the most. The investigations made it clear that the two main stressors that raised the rate of job burnout were task conflicts and office politics. The shortcomings of the studies conducted during these years were that they only looked at a specific group of female workers, such as educators, physicians, or businesspeople, rather than performing a survey to determine the primary stressors experienced by female workers across all industries.

Gender-Based Burnout :

Women were more likely to experience stress and burnout at work. Researchers hypothesized that workers in a variety of businesses, primarily women, experienced higher levels of job burnout. They clarified that the organizations had encountered a major obstacle (Guglielmi & Tatrow, 1998; Ozyer, Eryigit, & Erbaharli, 2013; Xu, 2015).

However, rather than conducting a study to determine the primary stress causes faced by female employees regardless of their fields, studies conducted during this time period only focused on a single group of female employees, such as teachers, doctors, or industry workers. The beginnings of psychological health became the main emphasis in 2002 and 2003. The origins of psychological health were discussed by Cilliers and Kossuth (2002) using functioning as a point of reference. It was determined that by monitoring and raising the standard of performance among managers and non-managerial staff, industrial psychologists can significantly contribute to enhancing organizational climate.

Burnout-Related Factors :

Numerous factors have been found by researchers to contribute to stress and burnout, and these factors vary depending on the person and the profession. Interrole distance, role overload, unclear roles, role demand conflict, self-role distance, role loneliness, personal inadequacy, and

resource inadequacy are some of the organizational role stress characteristics that researchers have found (Dua, 1994; Griffith, Steptoe, & Cropley, 1999). Studies reveal that senior employees have greater responsibilities and increased overburden of roles. According to Winter, Taylor, and Sarros (2000) and Srivastav and Pareek (2008), stress also tends to harm younger instructors over older ones, less experienced teachers over older ones, women over men, single teachers over married teachers, and those with lower academic rank over highly ranking teachers. Researchers focused on the educational sector while examining the association between organizational atmosphere and burnout. Organization and emotional pressures were found to have a negative and non-significant association. According to this theory, public sector workers will inevitably experience higher levels of job burnout. Ozyer, Eryigit, and Erbaharli (2013); Kanten & Er Ulker (2013).

However, researchers only looked at how organizational atmosphere affects people's behavior. Based on these results, they came to the conclusion that there were detrimental correlations between organizational climate dimensions and behaviors, ignoring other considerations. In contrast, semi-government and other sectors may be included, although it only concentrated on the private and public sectors.

Approach for the study :

In order to learn more about the reasons why women in the public and private sectors experience stress and job burnout, the current study adopted a phenomenological investigative approach. The goal of phenomenology is to better comprehend the nature and significance of our daily experiences (Manen, 2007). Open-ended questions were used in the instrument to produce some qualitative data. Participants' personal emotions and experiences were the subject of the interview questions. To further understand quantitative results, qualitative data is a helpful addition (Miles & Huberman, 1994). Bracketing is the process of doing the investigation from the viewpoint of the researcher (Welman & Kruger, 1999).

Attendees :

20 working mothers participated in interviews with the researcher. The final sample (N) included 15 mothers who were employed. Teachers, police officers, businesswomen, private employees, students, and lower-level workers are among the broad sample she attempted to gather. They had firsthand knowledge of dealing with stress and burnout in a workplace. Participants are between the ages of 25 and 35. 10 or less years of work experience. The sample was selected based on the participants' interest in the research topic and their familiarity with the phenomenon under study because they had firsthand experience with it.

Results and Analysis of Data :

Several stages were taken in the data analysis process. The study questions served as the basis

for the data analysis. Following the interviews, the researcher thoroughly examined the information that the participants were actually sharing. To improve the validity of the study, peer debriefing was employed. Following numerous rigorous readings of the data, major and supporting themes were found. Four topics emerged from the data analysis: (a) job-related health factors; (b) work overload; (c) work culture; and (d) work-family conflict. From these themes and answers, sub-themes were developed.

Job-Related Health Factors	Work Overload	Work Culture	Work -Family Conflict
• Sleep disturbance • Variations in mood	• Extra hours • Anger • Busy schedule	• Efficiency • Politics In The Office • Inspiration	• Time Management • Family Support • Burden

Sleep Disturbances :

Nearly all of the participants reported having trouble sleeping for a variety of reasons, such as having small children or staying up late to work from home.

Variations in Mood :

Every subject reported experiencing rapid mood changes.

Anger :

Eight stated they don't express their emotions and issues with anybody, while four said they do share with family or friends. They typically become angry at work and at home because they grow weary of the daily difficult routine.

Health Concerns :

Every participant mentioned having health problems, including headaches and back pain.

Extra hours :

Working beyond hours is referred to as overtime. There is overtime, but it is not compensated, according to participants. It's quite difficult work for us.

Busy Schedule :

Working women have an extremely demanding schedule because they have to balance work, family, and home. They believe working mothers are highly engaged and do not get involved in troublesome family matters since she must manage all three things at once.

Efficiency :

Participants reported that on Mondays, they typically dragged themselves to work.

Politics in the Office :

Every office has some politics going on there are several games and plots targeting women in the workplace because they believe they are incapable of performing their jobs effectively.

Inspiration :

The participants' primary reasons for attending the work are as follows :

My desire to accomplish anything in my life is what drives me.

I want to live a different life; I don't want to be like other ladies.

Effective Time Management

Working women believe they are more adept at managing their time than housewives.

Family Complaints Mostly respondent told me that their family member also complain that she do not give proper time but later on they get used to it.

The burden :

The majority of responders discuss the hardship. Managing among work and home can be rather challenging for me at times.

Managing both at once is quite difficult, particularly when there is an issue occurring in one location.

Result and discussion :

Regarding stress and burnout as well as juggling job and family obligations (Weigel, Vernon, & Tognacci, 1974). There are many challenges in researching stress and burnout among working mothers. It is challenging to identify trends among victims, which reflects the intricacy of the subject and the seeming absence of simple solutions. Usually, work is the cause of burnout. At the same time, everyone who feels underappreciated and worn out is vulnerable to burnout, from the weary housewife to the diligent office worker who hasn't had a vacation or raise in two years. In any case, difficult work or having too many responsibilities are not the only things that cause burnout. Burnout can be alleviated by various analyses that take into account your lifestyle and specific temperamental traits. The results revealed the primary causes of the participants' burnout.

Reasons for Burnout in the Workplace :

The initial concern is the causes of burnout at work the data revealed that the primary causes are: Considering minimal or no control over the task at hand.

- lack of praise or incentives for excellent job.
- Uncertain or excessively rigorous job requirements.
- Performing repetitive or uninteresting tasks.
- Working in a highly stressful or stressful setting.

Individual Causes of Burnout :

The information revealed the individual causes of burnout for each participant, which are displayed below :

- Excessive work and insufficient time for leisure and socialization
- Too many people expect you to be too many things
- Taking on excessive obligations without sufficient assistance from others
- Insufficient sleep absence of intimate, encouraging connections.

Conclusion :

In conclusion, this study employed an analytical, empirical method to better understand the working mothers' actual experiences with stress and burnout. According to study, working mothers experience higher levels of stress and burnout as a result of work overload, burden, and lack of recognition. This indicates that they are directly related to one another. On the other hand, working mothers perform their jobs effectively because of the great support they receive from their families, particularly from their husbands. Each participant experienced the critical moment under a different set of circumstances, yet the moment's purity was shared by everyone. The detected motifs were said to be a component of stress and burnout, despite their limited reach.

REFERENCE :

- Abbas, S. G., Roger, A., & Asadullah, M. A. (2012). Impact of organizational role stressors on faculty stress & burnout (An exploratory analysis of a public sector university of Pakistan). 4ème Colloque International (ISEOR AOM).
  Retrieved from https://halshs.archives-ouvertes.fr/halshs-00698806
- Antonovsky, A. (1987). Unraveling the mystery of health. How people manage stress and stay well. San Francisco, CA: Jossey-Bass.
- Bakker, A. B., & Oerlemans, W. G. M. (2011). Subjective well-being in organizations. In K. S. Cameron & G. M. Spreitzer (Eds.), The Oxford handbook of positive organizational scholarship (pp. 178-189). New York, NY: Oxford University Press.
- Barker, C., Elliott, R., & Pistrang, N. (2004). Methods of clinical requirements. Hoboken, NJ: John Wiley & Sons, Inc.
- Bischoff, S. J., Detienne, K. B., & Quick, B. (1999). Effects of ethics stress on employee burnout and fatigue: An empirical investigation. Journal of Health and Human Services Administration, 21(4), 512-32.
- Burke, R. J., Koyuncu, M., & Fiksenbaum, L. (2010). Burnout, work satisfactions and psychological well-being among nurses in Turkish hospitals. Europe's Journal of Psychology,

6(1), 63-81.

- Billing, Y. D., & Mats, A. (2000). Questioning the notion of feminine leadership: A critical perspective on the gender labeling of leadership. Gender, Work & Organization, 7(3), 144–157.
- Chang, M. L. (2009). An appraisal perspective of teacher burnout: Examining the emotional work of teachers. Educational Psychological Review, 21, 193-218.
- Chauhan, D. (2009). Effect of job involvement on burnout. Indian Journal of Industrial Relations, 44(3), 441-453.
- Cilliers, F., & Kossuth, S. (2002). The relationship between organizational climate and salutogenic functioning. South African Journal of Industrial Psychology, 28, 8–13.
- Cordes, C. L., & Dougherty, T. W. (1993). A review and an integration of research on job burnout. Academy of Management Review, 18(4), 621–656.
- Cullen, J. C., Silverstein, B. A., & Foley, M. P. (2008). Linking biomechanical workload and organizational practices to burnout and satisfaction. Journal of Business and Psychology, 23, 63-71.
- Denzin, N. K. (Ed.). (2006). Sociological methods: A sourcebook (5th ed.). New Brunswick, NJ: Aldine Transaction Publishers.
- Dua, J. K. (1994). Job stressors and their effects on physical health, emotional health and job satisfaction in a university. Journal of Educational Administration, 32(1), 59-78.
- Demerouti, E., Bakker, A. B., Nachreiner, F., & Schaufeli, W. B. (2001). The job demands-resources model of burnout. Journal of Applied Psychology, 86(3), 499–512. https://doi.org/10.1037//0021-9010.86.3.499.
- Finney, C., Stergiopoulos, E., Hensel, J., Bonato, S., & Dewa, C. S. (2013). Organizational stressors associated with job stress and burnout in correctional officers: A systematic review. BMC Public Health, 13, 82-95. doi: 10.1186/1471-2458-13-82.
- Freudenberger, H. J. (1974). Staff burn-out. Journal of Social Issues, 30, 159–165. doi: 10.1111/j.1540-4560.1974.tb00706.x.
- Goddard, R., O'Brien, P., & Goddard, M. (2006). Work environment predictors of beginning teacher burnout. British Educational Research Journal, 32, 857–874. doi: 10.1080/01411920600989511.
- Griffith, J., Steptoe, A., & Cropley, M. (1999). An investigation of coping strategies associated with job stress in teachers. British Journal of Educational Psychology, 69, 517-531.
- Kalbers, L. P., & T. J. Fogarty. (2005). Antecedents to internal auditor burnout. Journal of Managerial Issues, 1, 101-118.
- Kanten, P., & Er Ülker, F. (2013). The effect of organizational climate on counterproductive

behaviors: An empirical study on the employees of manufacturing enterprises. The Macrotheme Review, 2(4), 144-160.

- Kumar, K., & Singh, J. (2013). A study of burnout among face to face and distance mode female teachers in relation to their organizational climate. Inter International Multidisciplinary e-Journal, 2(1), 38-44.
- (Molly Bradshaw, 2023) The Effects of Burnout in Female Higher Education Administrators VOLUME 43, 2024 ISSN 1093-7099
- Leiter, M. P. (1993). Burnout as a developmental process: Consideration of models. In W. B. Schaufeli, C., Maslach, & T, Marek (Eds.), Professional burnout: Recent developments in theory and research (pp. 237-250). London, UK: Taylor & Francis.
- Lincoln, Y. S., & Guba, E. G. (1985). Naturalistic inquiry. Newbury Park, CA: Sage.
- Srivastav, A. K., & Pareek, U. (2008). Measurement of stress in organizational roles: Revalidating the framework. The 2008 Pfeiffer Annual: Training, 187-203.
- Causes of Stress and Burnout among Working Mothers in Pakistan Vol. 215.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 114-117

लैंगिक विभिन्नता के कारण बालिकओं का घटता अनुपात एक सामाजिक समस्या

डॉ. रागिनी
सहायक आचार्या, समाजशास्त्र विभाग
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज।

भारतीय समाज का एक दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष लैंगिंक विभेद है। जैविकीय या शारीरिक दृष्टिकोण से तो सम्पूर्ण मानव–जाति में विभेद देखने को मिलता है, लेकिन लैंगिकता का जो भावनात्मक रूप भारतीय समाज में पाया जाता है वह अपने आप में अनूठा हैं। लैंगिक विभिन्नता के कारण बालिकाओं का घटता अनुपात भारतीय समाज की एक अत्यंत गंभीर और जटिल सामाजिक समस्या है। यह केवल आंकड़ों का खेल नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक मानसिकता, आर्थिक असमानता और सामाजिक रूढ़ियों का प्रतिबिंब है। स्त्री व पुरूष के बीच समानता का सिद्धांत भारत के संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों तथा नीति निर्देशक सिद्धांतों में अंतर्निहित है। संविधान न केवल महिलाओं को समान अवसर प्रदान करता है बल्कि सरकार को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के लिए कदम उठा सके। महिलाएं समानता के अधिकार को प्राप्त करके भी सामाजिक–पारिवारिक कर्तव्य से विमुख नहीं थी बल्कि पुरुष की सहधर्मी बनकर समाज के विकास में संलग्न थीं। आज महिलाएं राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में व्यवसाय के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में अपनी पहचान कायम कर रही हैं। इतना ही नहीं बल्कि समान पद आसीन एक महिला पुरूष की तुलना में एक कदम आगे ही हैं। भारत की सामाजिक संरचना संवेदनशीलता की बुनियाद पर रखी गई है। संवेदनशील व्यवस्था अपनाने के बाद भी हम देश के एक वर्ग के प्रति उदासीन है। यही कारण है कि कन्या भ्रूण हत्या के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण लड़कियों की जन्मदर घटती जा रही है। चिंता का विषय यह है कि स्वतंत्रता के बाद जहां सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, व्यावसायिक, सैन्य सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है वही उनका अनुपात भी कम हुआ है। 1998 में सुश्री शीला रानी चौंगठ ने तमिलनाडू में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों से आकड़े एकत्र किए और यह बताया कि बड़ी संख्या में कन्या शिशुओं की हत्या उनके जीवन के प्रथम सप्ताह में ही कर दी जाती हैं। 1990 के दशक में मुम्बई प्रख्यात मालपानी क्लीनिक के डॉ.अनिरुद्ध मालपानी का यह कहना कि लोकतंत्र में सभी को यह अधिकार है कि वह अपनी मनचाही संतान पैदा कर सकता है, यह नितांत अनुचित व अव्यवहारिक है। माना जाता था कि लड़का पैदा करने की चाह केवल गरीबों में ज्यादा पायी जाती है, किंतु हाल के सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट हो गया है कि यह प्रवृत्ति अमीरों में ज्यादा पायी जाती है यद्यपि 'मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेगनेंसी एक्ट' यह स्वतंत्रता देता है तथा मांग किए जाने पर 12 से 20 सप्ताह तक के भ्रूण का गर्भपात कराने की अनुमति देता है।

वर्ष (1967) में संयुक्त राष्ट्र संघ की 'महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव समाप्ति से संबंद्ध घोषणा' एवं सदस्य देशों से अपने देशों की महिला परिस्थिति पर प्रतिवेदन की अनुशंसा पर वर्ष 1971 में भारत सरकार की समाज कल्याण राज्य मंत्री फूलरेणु गुहा के नेतृत्व में 'भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति' (CSWI) का गठन किया गया। इस समिति ने वर्ष 1974 में अपना प्रतिवेदन 'Towards Equality' को प्रस्तुत किया। स्वतंत्र भारत में महिलाओं की स्थिति पर यह पहला प्रतिवेदन था जिसमें लैंगिक समानता, स्त्रीयों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु रोजगार के अवसरों को प्राथमिकता, प्रजनन क्षमता की वजह से समाज एवं पति का स्त्रियों के प्रति दायित्व, घर पर गृहणी के कार्य को उत्पादक मानकर राष्ट्रीय बचत एवं विकास में योगदान को स्वीकार करना, एवं वैधानिक समानता को वास्तविक समानता में बदलना आदि को सम्मिलित किया गया हैं। 2001 जनगणना के अनुसार यद्यपि लिंगानुपात बढ़ा है (927–933) किन्तु 0–6 साल से छोटे बच्चों की मृत्युदर में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। इस परिप्रेक्ष्य में दो दशकों में प्रति वर्ष 30 लाख भ्रूण हत्याएं किए जाने संबंधी आकड़े भारत व कनाडा के सन्युक्त शोधकर्ताओं द्वारा 2006 जनवरी में जारी एक अध्ययन रिपोर्ट में दिए गये है। बालिकाओं के घटते अनुपात के मुख्य कारण– पितृसत्तात्मक मानसिकता, दहेज प्रथा, तकनीक का दुरुपयोग, लिंग चयन जैसी कुप्रथाएं, शिक्षा व स्वास्थ्य में भेदभाव : बालिकाओं के प्रति उपेक्षा।

तालिका – (1) भारत के विभिन्न राज्यों में शिशु लिंगानुपात की स्थिति – (2001–2011)

राज्य / संघ शासित प्रदेश	2001 दर	कुल साक्षरता	लिंगानुपात (प्रति 1000 पुरुषों पर स्त्रियां)				
		कुल 2011	0–6 आयु जनसंख्या शिशु जनसंख्या	अंतर समुह में			
			2001	2011	2001	2011	2001–2011
भारत	64.83	74.04	933	940	927	914	–13
आंध्र प्रदेश	61.11	67.66	978	992	961	943	–18
अरुणाचल प्रदेश	54.74	66.95	893	920	964	960	–4
असम	64.28	73.18	935	954	965	957	–8
बिहार	47.53	63.82	919	916	942	933	–9
छत्तीसगढ़	65.18	77.65	989	991	975	964	–11
गोवा	82.32	87.40	961	968	938	920	–18
गुजरात	69.97	79.31	920	918	883	886	.3
हरियाणा	68.59	76.64	861	877	819	830	.11
हिमांचल प्रदेश	77.13	83.78	968	974	896	906	.10
जम्मू–कश्मीर	54.46	68.74	892	883	941	859	–82

झारखण्ड	54.13	67.63	941	947	965	943	–22
कर्नाटक	67.04	75.60	965	968	946	943	–3
केरल	90.92	93.91	1058	1084	960	959	–1
मध्य प्रदेश	64.11	70.63	919	930	932	912	–20
महाराष्ट्र	77.27	82.91	922	925	913	883	–30
मेघालय	63.31	75.48	972	986	973	970	–3
मणिपुर	68.87	79.85	974	987	957	934	–23
मिजोरम	88.49	9.58	935	975	964	971	.7
चण्डीगढ़	81.76	86.43	777	818	845	867	.22
दमन व दीव	81.09	87.07	710	618	926	909	–17
लक्ष्यदीप	87.52	92.28	948	946	959	908	–51
पुडुचेरी	81.2	86.5	1001	1038	967	965	–2
दादरा व नगर हवेली	60.03	77.04	812	775	979	924	–55
अण्डमान व निकोबार	81.18	86.27	846	878	957	966	.9

स्रोत– पापुलेशन फाउंडेशन ऑफ इंडिया तथा भारत जनगणना 2001–2011

आकड़ों के अनुसार स्पष्ट होता है कि जनसंख्या की वृद्धि दर में ह्रास और साक्षरता दर में वृद्धि खुशी देने वाले कारण है। किंतु साथ ही यह तथ्य निराशाजनक है कि भारत अभी भी कन्याओं के जन्म के प्रति अनिच्छुक हैं। 0–6 आयु समूह के आकड़े बताते हैं कि 2011 में लिंग–अनुपात सबसे कम रहा। हालांकि बालिकाओं की संख्या में ह्रास जारी है, 2011 की जनगणना से पता चलता है कि उनकी संख्या में गिरावट की रफ्तार में कमी आयी है।

1991–2001 के बीच में लिंगानुपात का अंतर –18 था जो 2011 में –13 के अंतर पर है अर्थात् 2001 की अपेक्षा 2011 में लिंगानुपात का दर कम है। 2001 बालिकाओं की संख्या में सबसे ज्यादा ह्रास वाले राज्यों में हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, चण्डीगढ़ थे जिनके लिंगानुपात में कमी आयी हैं। इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आंध्र प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के राज्यों में शिशु लिंगानुपात का प्रतिमान प्रायः स्थिर है परंतु कुछ नये क्षेत्र अभी भी है जहां लिंगानुपात में चिंताजनक रूप से ह्रास हो रहा है।

भारत में लिंग अनुपात पर एनएफएचएस–5 सर्वेक्षण (2019–21)

वर्ष 2019–21 में आयोजित राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस–5) ने भारत की जनसंख्या और लिंग संतुलन के बारे में अद्यतन जनसांख्यिकीय जानकारी प्रदान की। इसमें प्रति 1,000 पुरुषों पर 1,020 महिलाओं का कुल लिंग अनुपात बताया गया, जो एनएफएचएस–4 (2015–16) के 991 से उल्लेखनीय वृद्धि है और क्रमिक सुधार को दर्शाता है। हालांकि, लिंग–चयनात्मक प्रथाओं के जारी रहने के कारण जन्म के समय लिंग अनुपात 929 पर कम बना रहा, जो प्राकृतिक स्तर 950–970 से नीचे है। बाल लिंग अनुपात भी 929 पर

बना रहा, जो क्षेत्रीय भिन्नताओं और लिंग असंतुलन को कम करने में मामूली प्रगति को दर्शाता है। 2036 तक भारत की जनसंख्या 152.2 करोड़ तक पहुंचने का अनुमान है, जिसमें महिलाओं की हिस्सेदारी 2011 के 48.5 प्रतिशत से बढ़कर 48.8 प्रतिशत हो जाएगी। लिंग अनुपात में सुधार होकर प्रति 1,000 पुरुषों पर 952 महिलाएं होने की उम्मीद है। हालिया अनुमानों के अनुसार, भारत का समग्र लिंग अनुपात प्रति 1,000 पुरुषों पर 1,020 महिलाओं तक पहुंच गया है, जो एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह सुधार बेहतर मातृ स्वास्थ्य, बढ़ती महिला साक्षरता (राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस–5) और राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय के अनुसार 2021–2022 में 77.70%) और बालिका शिक्षा एवं संरक्षण पर केंद्रित सरकार द्वारा चलाए जा रहे कल्याणकारी कार्यक्रमों के कारण संभव हुआ है। एनएफएचएस–5 (2019–20) ने प्रति 1,000 पुरुषों पर 1,020 महिलाओं की रिपोर्ट की, जो पहली बार महिलाओं की थोड़ी अधिक संख्या दर्शाती है। मातृ–मृत्यु दर (एमएमआर) प्रति 100,000 जीवित जन्मों पर 556 (1990) से घटकर 97 (2020) हो गई (डब्ल्यूएचओ के आंकड़े)। महिला साक्षरता दर 2001 में 54.16% से बढ़कर 2021 में 77.70% हो गई। सरकारी हस्तक्षेप और लिंग चयन पर कानूनी प्रतिबंधों ने कन्या भ्रूण हत्या को काफी हद तक कम कर दिया है।

जॉन (2008) के अनुसार – 'बेटियां किसी की अमानत है', अथवा 'वे ससुराल चली जाएगी' कहने का तात्पर्य यह है कि उनमें किए गये निवेश का लाभ किसी और को मिलता है, इसलिए उसे एक बोझ के रूप में देखा जाता है जिसका परिहार किया जा सकता है।

निष्कर्षतः एक स्वस्थ्य लिंग अनुपात वह होता है, जहां महिलाओं की संख्या पुरूषों से अधिक होती है, किंतु देश में केवल कुछ जिले ही ऐसे है जहां स्थिति सामान्य है। बालिकाओं का घटता अनुपात केवल एक जनसांख्यिकीय समस्या नहीं है, बल्कि एक सामाजिक चुनौती है। आर्थिक विकास के साथ–साथ समाज की मानसिकता में परिवर्तन लाना अनिवार्य है। शिक्षा, कानूनी सख्ती और सामुदायिक जागरूकता ही इस समस्या का एकमात्र समाधान है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची :

- आर.एन. मुखर्जी और भरत अग्रवाल (2010–2011), 'जातिगत एवं लैंगिक विभेद', एस. बी. पी. डी. पब्लिकेशन, पृ. सं. 35
- योजना, अक्टूबर 2008, पृ.– 5
- नाटाणी प्रकाश नारायण (2007), भारत में कन्या भ्रूण हत्या एवं महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा, जयपुर प्रकाशन बुक एनक्लेव, पृ. सं.– 5–6
- आर.एन. मुखर्जी और भरत अग्रवाल (2010–2011), 'जातिगत एवं लैंगिक विभेद', एस. बी. पी. डी. पब्लिकेशन, पृ.सं. 37–38
- जॉन 2008, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल विकली, पृ.सं.– 45
- पॉपुलेशन फाउण्डेशन ऑफ इण्डिया 2006, एवं जनगणना रिपोर्ट 2001–2011
- एनएफएचएस–5 सर्वेक्षण (2019–21)

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 118-123

The Rajyoga Lifestyle as a Tool for Healthy Aging

Rajan Kar,
Dr. Sephali Pradhan, Supervisor
Shivmani Home, Near Trauma Center, Talheti, Aburoad, Raj, 307510

Abstract :

With the increase in number of senior citizens around the globe, the problem of healthy aging has gained considerable attention. Lifestyle modification is seen as one of the most viable ways through which healthy aging can be achieved. Meditation and spirituality play an important part in achieving healthy aging. One such example of a spiritual meditation technique that aims at achieving positive results for the body, mind, emotions, and spirit is Rajyoga taught by the Brahma Kumaris organization. In simple terms, Rajyoga is the practice of mental discipline, positive attitude, self-awareness, emotional stability, and holistic health. The current paper looks into the effectiveness of Rajyoga lifestyle in achieving healthy aging. More specifically, the paper evaluates the impact of Rajyoga meditation on health, emotions, and well-being of the elderly. The paper examines pertinent literature and demonstrates the impact of Rajyoga techniques on stress relief, better sleep, improved coping skills, increased cognitive performance, and other aspects of healthy aging.

Keywords : Rajyoga, Healthy Aging, Senior Citizens, Meditation, Holistic Well-Being, Lifestyle, Mental Health.

Introduction :

Aging is a biological process that impacts the body, mind, emotions, and social aspects of life of each individual. As one grows older, he/she usually suffers from decreased physical capabilities, diseases, unstable emotions, loneliness, anxiety, and low levels of social involvement. In global health statistics, it has been reported that there is an increase in the number of aged individuals, which leads to new challenges both for the health system and society. Healthy aging is one of the objectives of today's health sciences.

Healthy aging means more than just being free from any diseases; rather, it involves staying physically fit, emotionally stable, socially involved, and spiritually satisfied as an old person. The modern medical science accepts that lifestyles greatly influence the aging process of an individual. Apart from proper diet and physical exercise, spirituality is also acknowledged as one of the tools

that promote healthy aging.

Rajyoga meditation refers to a straightforward technique that centers on self-realization, soul, and Supreme Soul. Different from physical yoga, Rajyoga emphasizes mind and spirit only. In other words, Rajyoga meditation cultivates positivity of mind, emotions, and actions through positive thinking, self-control, self-awareness, inner peace, and value-based living. Therefore, elements of the Rajyoga lifestyle include meditation, proper dieting, positive attitude, self-discipline, stress control, spiritual studies, and moral conduct.

The elderly face emotional issues like fear, insecurity, depression, and loneliness. The practice of Rajyoga meditation builds inner strength and promotes calmness. Thus, elderly individuals become capable of handling their problems effectively and attain better sleep, less stress, concentration power, and psychological balance through this method. They also benefit by increasing their satisfaction in life, stability in emotions, and harmonious relationships.

The present research seeks to study the significance of the Rajyoga lifestyle to facilitate aging process healthily and contribute holistically towards the wellbeing of senior citizens.

Objectives of the Study :

- To understand the concept of healthy aging.
- To examine the principles of the Rajyoga lifestyle.
- To analyze the impact of Rajyoga meditation on physical and mental health among senior citizens.
- To explore the role of Rajyoga in promoting emotional and spiritual well-being.
- To evaluate the effectiveness of Rajyoga lifestyle practices for holistic healthy aging.

Concept of Healthy Aging :

The concept of healthy aging involves multi-dimensional parameters, such as sustaining functional ability, physical health, psychological balance, emotional health, social relations, and spirituality in old age. Healthy aging can be defined by the World Health Organization as the development and maintenance of the functional ability needed to sustain well-being in older age.

Healthy aging depends on several factors such as :

- Balanced nutrition
- Regular physical activity
- Emotional stability
- Positive social relationships
- Stress management
- Adequate sleep
- Mental stimulation

- Spiritual practices

Understanding Rajyoga Lifestyle :

Rajyoga consists of two Sanskrit terms : "Raja," which means king, and "Yoga," which means union. Rajyoga is regarded as the yoga king since it involves controlling the mind and attaining mastery of oneself. The Rajyoga lifestyle includes the following principles :

1. **Meditation -** Rajyoga meditation involves concentrating the mind on positive spiritual thoughts and establishing a connection with the Supreme Being. It helps create mental peace and emotional stability.
2. **Positive Thinking -** Rajyoga encourages individuals to replace negative thoughts with positive and constructive thinking patterns.
3. **Self-Discipline -**The lifestyle promotes regularity, discipline, and self-control in daily activities.
4. **Spiritual Awareness -** Individuals develop awareness of the self as a spiritual being rather than merely a physical body.
5. **Balanced Vegetarian Diet -** Rajyoga practitioners often follow a pure vegetarian diet that supports physical and mental health.
6. **Stress-Free Living -**Through meditation and spiritual understanding, individuals learn to manage stress, anger, fear, and anxiety effectively.
7. **Moral and Ethical Values -** Rajyoga emphasizes values such as peace, love, honesty, cooperation, patience, and compassion.

Review of Literature :

Several studies have explored the relationship between meditation, spirituality, and healthy aging.

Sharma and Gupta (2018) reported that regular meditation practices improve emotional stability and reduce stress among elderly individuals. The study found significant improvement in psychological well-being and sleep quality among senior citizens practicing meditation.

Patel (2019) observed that spiritual practices positively influence the quality of life of older adults by reducing anxiety, loneliness, and depressive symptoms.

Singh and Kaur (2020) studied the effects of Rajyoga meditation on stress management among senior citizens. The findings revealed that participants experienced greater emotional balance, reduced blood pressure, and improved mental peace after regular practice.

A study by Verma (2021) indicated that meditation-based interventions improve cognitive functioning, concentration, and memory among elderly populations.

The Brahma Kumaris organization has also conducted several programs related to meditation

and wellness, highlighting the role of Rajyoga in promoting inner peace and holistic health.

Research studies suggest that spiritual and meditative practices can significantly contribute to healthy aging by improving physical health, emotional stability, mental clarity, and social well-being.

- **Rajyoga Lifestyle and Physical Health -** Physical health is an important aspect of healthy aging. Elderly individuals often experience chronic illnesses such as hypertension, diabetes, arthritis, cardiovascular diseases, and sleep disorders.

Rajyoga meditation contributes to physical well-being in several ways :

- **Reduction in Stress Hormones -** Meditation reduces the production of stress hormones such as cortisol, which can negatively affect the immune system and cardiovascular health.
- **Better Blood Pressure Control -** Regular meditation promotes relaxation and improves blood circulation, which may help control blood pressure.

Improved Sleep Quality :

- **Enhanced Immunity -** Positive mental states and reduced stress levels contribute to stronger immunity.
- **Rajyoga Lifestyle and Mental Health -** Mental health problems such as anxiety, depression, loneliness, and cognitive decline are common among elderly individuals. Rajyoga meditation provides psychological support by strengthening mental resilience.
- **Stress Reduction -** Rajyoga helps calm the mind and reduces mental tension.
- **Emotional Stability -** Meditation enhances self-control and emotional regulation.

Rajyoga Lifestyle and Emotional Well-Being :

The elderly can be troubled emotionally because of issues such as retirement, death of relatives, social isolation, and their deteriorating physical state.

How does Rajyoga Meditation help elderly people?

- Gain emotional stability
- Builds self-respect and self-worth
- Provides internal peace
- Lessen anger and fearfulness
- Better their interpersonal skills
- Happiness and contentment

Forgiveness, acceptance, compassion, and gratitude are essential components of emotional stability.

Rajyoga Lifestyle and Social Well-Being :

Participation in Rajyoga activities promotes :

- Social connectedness

- Group support
- Positive communication
- Community involvement
- Sense of belonging

These social benefits improve psychological health and overall life satisfaction.

Rajyoga Lifestyle and Spiritual Health :

Spiritual health plays a significant role in helping elderly individuals find meaning, purpose, and acceptance during later stages of life.

Rajyoga meditation strengthens spiritual awareness by helping individuals :

- Understand the deeper purpose of life
- Develop self-realization
- Experience inner peace
- Reduce fear of death
- Strengthen faith and hope

Spiritual well-being contributes to emotional stability and a positive outlook toward aging.

Significance of Rajyoga for Senior Citizens :

The Rajyoga lifestyle offers several practical benefits for elderly individuals :

- Easy and simple meditation practice.
- Can be practiced without physical strain.
- Suitable for individuals with limited mobility.
- Promotes holistic health.
- Encourages positive social relationships.
- Reduces dependence on negative coping mechanisms.
- Enhances quality of life and inner satisfaction.

Because Rajyoga focuses mainly on mental and spiritual exercises, it can be practiced comfortably by senior citizens regardless of age or physical condition.

Challenges and Limitations :

Although Rajyoga offers many benefits, certain challenges may affect its implementation :

- Lack of awareness among elderly populations.
- Difficulty maintaining regular practice.
- Limited scientific research in some areas.
- Resistance toward spiritual or meditative practices.
- Need for trained instructors and support systems.

Further empirical research is needed to establish stronger scientific evidence regarding the

long-term benefits of Rajyoga meditation on healthy aging.

Suggestions :

Awareness programs on Rajyoga and healthy aging should be organized for senior citizens.

- Meditation sessions may be included in community health programs.
- Hospitals and wellness centers can promote meditation-based interventions.
- Government and non-government organizations should encourage holistic wellness programs for the elderly.
- Further research should be conducted on the impact of Rajyoga meditation on chronic diseases and psychological health.

Conclusion :

Health aging is a crucial factor for enhancing the quality of life of seniors, as well as decreasing the prevalence of chronic illnesses and psychological complications. The Rajyoga way of living offers a balanced method towards healthy aging as it incorporates meditation, positive thinking, spirituality, emotional balance, and healthful living.

Rajyoga meditation can assist elderly citizens in maintaining mental tranquility, emotional stability, physical fitness, and spirituality. This meditation technique is simple, non-invasive, affordable, and can be practiced by elderly people.

As evidenced from the results and observations conducted during several studies, the application of Rajyoga lifestyles can prove beneficial in promoting healthy aging and graceful old age among the elderly.

References :

- Sharma, R., & Gupta, S. (2018). Meditation and psychological well-being among elderly individuals. Journal of Aging Studies, 12(2), 45–52.
- Patel, M. (2019). Spiritual practices and quality of life in older adults. International Journal of Social Health, 8(1), 33–40.
- Singh, P., & Kaur, H. (2020). Effect of Rajyoga meditation on stress management among senior citizens. Indian Journal of Health and Well-being, 11(3), 112–118.
- Verma, A. (2021). Meditation and cognitive functioning in elderly populations. Journal of Mental Health Research, 15(4), 67–74.
- World Health Organization. (2020). Healthy Aging and Well-being Report.
- Brahma Kumaris. Rajyoga Meditation and Holistic Health Programs.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 124-128

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का सामाजिक जीवन पर प्रभाव

डॉ. रामकली शर्मा
विभागाध्यक्षा, सुराणा कॉलेज पीन्या बैंगलोर, कर्नाटक।

प्रस्तावना :

मानव सभ्यता के विकास में विज्ञान और तकनीक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रारंभिक युग में मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न उपकरणों का निर्माण किया। समय के साथ विज्ञान और तकनीक का विकास होता गया और आज मानव समाज डिजिटल युग में प्रवेश कर चुका है। कंप्यूटर, इंटरनेट, स्मार्टफोन तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी तकनीकों ने जीवन को नई दिशा प्रदान की है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधुनिक विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। यह ऐसी तकनीक है जो मशीनों को मानव जैसी बुद्धिमत्ता प्रदान करती है। AI आधारित प्रणालियाँ डेटा का विश्लेषण करके निर्णय ले सकती हैं, भाषा को समझ सकती हैं और अनुभवों से सीख सकती हैं। वर्तमान समय में सामाजिक जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में AI का प्रभाव दिखाई देता है। लोग सोशल मीडिया, ऑनलाइन बैंकिंग, डिजिटल शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं तथा ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म का उपयोग कर रहे हैं। इन सभी क्षेत्रों में AI महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता : अर्थ एवं स्वरूप :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता का अर्थ ऐसी मशीनों या कंप्यूटर प्रणालियों से है जो मानव बुद्धि से संबंधित कार्यों को कर रही है। इनमें सीखने, तर्क करने, निर्णय लेने, भाषा को समझने तथा समस्याओं का समाधान करने की क्षमता भी है।

AI के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं –

1. मशीन लर्निंग, 2. डीप लर्निंग, 3. प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण, 4. रोबोटिक्स, 5 कंप्यूटर विजन।

इन तकनीकों के माध्यम से मशीनें मानव व्यवहार का अनुकरण करती हैं और जटिल कार्यों को संपन्न करती हैं।

सामाजिक जीवन की अवधारणा –

सामाजिक जीवन का अर्थ उन संबंधों, गतिविधियों तथा व्यवहारों से है जो व्यक्ति समाज में अन्य व्यक्तियों के साथ स्थापित करता है। परिवार, शिक्षा, संस्कृति, धर्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था तथा संचार सामाजिक जीवन के प्रमुख अंग हैं। सामाजिक जीवन का उद्देश्य व्यक्तियों के बीच सहयोग, सहभागिता, संवाद तथा सामूहिक विकास को बढ़ावा देना है। आधुनिक तकनीक ने सामाजिक जीवन के स्वरूप को बदल दिया है और AI इस परिवर्तन का प्रमुख माध्यम बनकर उभरा है।

शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। AI ने शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया

को अधिक प्रभावी, आधुनिक और छात्र–केंद्रित बनाया है। आज शिक्षा केवल कक्षा तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि डिजिटल तकनीकों के माध्यम से कहीं भी और कभी भी प्राप्त की जा सकती है। AI आधारित शिक्षण प्रणालियाँ विद्यार्थियों की सीखने की क्षमता, रुचि और आवश्यकताओं का विश्लेषण करके उन्हें व्यक्तिगत अध्ययन सामग्री प्रदान करती हैं। इसे व्यक्तिगत शिक्षण कहा जाता है। इससे प्रत्येक विद्यार्थी अपनी गति और क्षमता के अनुसार अध्ययन कर सकता है। AI आधारित प्लेटफॉर्म विद्यार्थियों की कमजोरियों की पहचान करके सुधार के सुझाव भी देते हैं।

ऑनलाइन शिक्षा के विकास में AI की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अनेक डिजिटल प्लेटफॉर्म वीडियो व्याख्यान, अभ्यास प्रश्न, मूल्यांकन और अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराते हैं। AI आधारित ट्यूटर विद्यार्थियों के प्रश्नों का तत्काल उत्तर देने में सक्षम होते हैं, जिससे सीखने की प्रक्रिया अधिक सरल और प्रभावी बनती है। शिक्षकों के लिए भी AI उपयोगी सिद्ध हो रहा है। यह विद्यार्थियों की प्रगति का विश्लेषण करने, परीक्षाओं का मूल्यांकन करने और शिक्षण योजनाएँ तैयार करने में सहायता करता है। स्वचालित मूल्यांकन प्रणाली से समय की बचत होती है तथा निष्पक्ष मूल्यांकन संभव हो रहे हैं। भाषा शिक्षण, डिजिटल पुस्तकालय और वर्चुअल कक्षाओं के विकास में भी AI का महत्वपूर्ण योगदान है। इससे शिक्षा अधिक समावेशी और सुलभ बनी है। विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए भी AI आधारित उपकरण उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

अतः AI ने शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने और ज्ञान तक एक समान पहुँच सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण और सकारात्मक परिवर्तन किए हैं। AI की सहायता से चिकित्सा सेवाएँ अधिक सटीक, तेज और प्रभावी बनी हैं। यह तकनीक रोगों की पहचान, उपचार, अनुसंधान और स्वास्थ्य प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। AI आधारित प्रणालियाँ रोगों का प्रारंभिक चरण में पता लगाने में सहायता करती हैं। एक्स–रे, एमआरआई, सीटी स्कैन और अन्य चिकित्सा रिपोर्टों का विश्लेषण करके AI कई बीमारियों की पहचान डॉक्टरों से भी अधिक तेजी से कर रहा है। इससे समय पर उपचार संभव हो रहा है और रोगियों के जीवन की रक्षा की जा रही है। टेलीमेडिसिन और ऑनलाइन स्वास्थ्य सेवाओं के विकास में भी AI का महत्वपूर्ण योगदान है। दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले लोग इंटरनेट के माध्यम से विशेषज्ञ चिकित्सकों से परामर्श प्राप्त करते हैं। इससे स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच बढ़ी है और चिकित्सा सुविधाएँ अधिक सुलभ हुई हैं।

AI आधारित रोबोटिक सर्जरी ने जटिल ऑपरेशनों को अधिक सुरक्षित और सटीक बनाया है। रोबोटिक तकनीक के माध्यम से सर्जरी में त्रुटियों की संभावना कम होती है और रोगियों के स्वस्थ होने की प्रक्रिया तेज होती है। इसके अतिरिक्त, AI नई दवाओं के अनुसंधान और विकास में भी सहायता करता है, जिससे चिकित्सा विज्ञान को नई दिशा मिल रही है। अस्पतालों और स्वास्थ्य संस्थानों में AI का उपयोग रोगियों के रिकॉर्ड प्रबंधन, अपॉइंटमेंट प्रणाली और संसाधनों के बेहतर उपयोग के लिए किया जा रहा। इससे स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता और दक्षता में सुधार हो रहा है।

अतः हम देख रहे है कि AI ने स्वास्थ्य क्षेत्र को, सुलभ और प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भविष्य में यह तकनीक चिकित्सा सेवाओं को और अधिक बेहतर तथा मानव–केंद्रित बनाने में महत्वपूर्ण

भूमिका निभाएगी।

परिवार और सामाजिक संबंधों पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने परिवार और सामाजिक संबंधों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। AI आधारित संचार माध्यमों, जैसे सोशल मीडिया, वीडियो कॉलिंग और मैसेजिंग प्लेटफॉर्म ने लोगों के बीच संपर्क को सरल और त्वरित बनाया गया है। परिवार के सदस्य, जो विभिन्न स्थानों पर रहते हुए अब आसानी से एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। इससे पारिवारिक संवाद और भावनात्मक संबंधों को बनाए रखने में भी सहायता मिली है।

अतः AI आधारित सुझाव और एल्गोरिद्म लोगों की रुचियों के अनुसार सामग्री प्रस्तुत करते हैं, जिससे वे सीमित सामाजिक दायरे में रह सकते हैं। इसलिए आवश्यक है कि तकनीक के उपयोग के साथ–साथ पारिवारिक मूल्यों, सामाजिक सहभागिता और मानवीय संबंधों को भी समान महत्व दिया जाए।

संस्कृति और परंपराओं पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण, प्रसार तथा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। AI आधारित तकनीकों के माध्यम से प्राचीन ग्रंथों, ऐतिहासिक दस्तावेजों, लोक कलाओं और सांस्कृतिक धरोहरों का डिजिटलीकरण किया जा रहा है, जिससे उन्हें भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। AI आधारित अनुवाद उपकरण विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के बीच संवाद को सरल बनाते हैं तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा देते हैं।

आज की युवा पीढ़ी में सोशल मीडिया और ऑनलाइन मनोरंजन के माध्यम से विदेशी सांस्कृतिक प्रभाव तेजी से फैल रहा हैं, अतः संतुलित दृष्टिकोण अपनाकर तकनीकी विकास और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है।

युवाओं पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभाव –

युवा वर्ग कृत्रिम बुद्धिमत्ता से सबसे अधिक प्रभावित होने वाला सामाजिक समूह है। AI ने शिक्षा, कौशल विकास, अनुसंधान और रोजगार के क्षेत्र में युवाओं के लिए अनेक नए अवसर उत्पन्न किए हैं। ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्म, स्मार्ट लर्निंग सिस्टम और AI आधारित शैक्षिक उपकरणों ने ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया को अधिक सरल, प्रभावी और सुलभ बना दिया है। युवा नई तकनीकों को सीखकर आधुनिक रोजगार बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को विकसित कर सकते हैं।

इसके साथ ही AI ने नवाचार, उद्यमिता और तकनीकी अनुसंधान को भी प्रोत्साहित किया है। आज अनेक युवा कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डेटा विज्ञान, रोबोटिक्स और सॉफ्टवेयर विकास जैसे क्षेत्रों में अपना करियर बना रहे हैं। अतः युवाओं के लिए यह आवश्यक है कि वे AI का उपयोग ज्ञान, नवाचार और आत्म–विकास के साधन के रूप में करें तथा इसके संभावित दुष्प्रभावों के प्रति भी जागरूक रहें।

सामाजिक जीवन पर कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नकारात्मक प्रभाव –

यद्यपि कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने समाज को अनेक लाभ प्रदान किए हैं, फिर भी इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिलते हैं। AI का बढ़ता उपयोग सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्तर पर नई चुनौतियाँ उत्पन्न कर रहा है। यदि इन चुनौतियों पर समय रहते ध्यान नहीं दिया गया, तो इनके गंभीर परिणाम सामने आ सकते हैं। AI का एक प्रमुख नकारात्मक प्रभाव सामाजिक संबंधों में कमी के रूप में देखा जाता है। लोग परिवार और मित्रों के साथ प्रत्यक्ष संवाद करने के बजाय डिजिटल माध्यमों पर अधिक समय व्यतीत करने लगे हैं। इससे

सामाजिक मेलजोल और भावनात्मक जुड़ाव कमजोर हो रहा है। कई बार व्यक्ति आभासी दुनिया में अधिक सक्रिय रहता है, जिससे अकेलापन और सामाजिक अलगाव की भावना बढ़ जाती है।

नैतिक और सामाजिक चुनौतियाँ –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता के तीव्र विकास ने अनेक नैतिक और सामाजिक चुनौतियों को जन्म दिया है। AI आधारित प्रणालियाँ विशाल मात्रा में डेटा का उपयोग करती हैं, जिससे गोपनीयता और डेटा सुरक्षा से संबंधित गंभीर प्रश्न उत्पन्न होते हैं। AI आधारित प्रणालियाँ उपयोगकर्ताओं की व्यक्तिगत जानकारी का विशाल मात्रा में संग्रह करती हैं। यदि इन सूचनाओं का दुरुपयोग किया जाए, तो व्यक्ति की निजता और स्वतंत्रता प्रभावित हो सकती है। साइबर अपराध और डेटा चोरी जैसी समस्याएँ भी बढ़ रही हैं। व्यक्तिगत जानकारी के संग्रह और विश्लेषण के कारण निजता के अधिकार पर प्रभाव पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त, AI के निर्णयों में निष्पक्षता और पारदर्शिता सुनिश्चित करना भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है।

यदि AI प्रणालियों को पक्षपातपूर्ण डेटा पर प्रशिक्षित किया जाए, तो उनके निर्णय भी भेदभावपूर्ण हो सकते हैं। इससे सामाजिक असमानता और अन्याय की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। रोजगार के क्षेत्र में स्वचालन के कारण पारंपरिक नौकरियों पर संकट बढ़ रहा है, जिससे बेरोजगारी और आर्थिक असमानता की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसके अलावा, AI के माध्यम से फेक न्यूज, डीपफेक वीडियो और गलत सूचनाओं का प्रसार समाज में भ्रम और अविश्वास पैदा कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक सद्भाव पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

अतः AI के विकास और उपयोग में नैतिकता, पारदर्शिता, जवाबदेही तथा मानवाधिकारों का सम्मान सुनिश्चित करना आवश्यक है। उचित नीतियों और कानूनी व्यवस्थाओं के माध्यम से ही AI का उपयोग समाज के व्यापक हित में किया जाना चाहिए। रोजगार के क्षेत्र में भी AI ने चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। स्वचालन और रोबोटिक तकनीकों के कारण अनेक पारंपरिक नौकरियाँ प्रभावित हो रही हैं। विनिर्माण, बैंकिंग, ग्राहक सेवा और परिवहन जैसे क्षेत्रों में मानव श्रम की आवश्यकता कम हो रही है। इससे बेरोजगारी और आर्थिक असमानता बढ़ने की संभावना रहती है।

मानसिक स्वास्थ्य पर AI और डिजिटल तकनीकों का प्रभाव भी चिंताजनक है। सोशल मीडिया और AI आधारित एल्गोरिद्म लोगों को लंबे समय तक ऑनलाइन बनाए रखते हैं, जिसके कारण तनाव, चिंता, अवसाद और अकेलेपन जैसी समस्याएँ बढ़ सकती हैं। विशेष रूप से किशोर और युवा वर्ग इसके प्रति अधिक संवेदनशील होता है। इसके अतिरिक्त, AI के माध्यम से फेक न्यूज, डीपफेक वीडियो और गलत सूचनाओं का प्रसार आसान हो गया है। इससे समाज में भ्रम,अफवाह और अविश्वास की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। कई बार ऐसी सूचनाएँ सामाजिक तनाव और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को भी प्रभावित करती हैं।

यह आवश्यक है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग में नैतिकता, पारदर्शिता और सामाजिक उत्तरदायित्व को प्राथमिकता दी जाए। उचित नीतियों, डिजिटल साक्षरता और कानूनी नियंत्रण के माध्यम से इसके नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है। तभी AI का उपयोग मानव कल्याण और सामाजिक विकास के लिए प्रभावी रूप से किया हालाँकि, AI और डिजिटल तकनीकों के अत्यधिक उपयोग से प्रत्यक्ष सामाजिक संपर्क में कमी भी देखी गई है। लोग आमने–सामने बातचीत करने के बजाय डिजिटल माध्यमों पर अधिक निर्भर हो गए हैं। परिवार के सदस्य एक ही घर में रहते हुए भी मोबाइल और अन्य डिजिटल उपकरणों में व्यस्त रहते हैं, जिससे

आपसी संवाद और भावनात्मक निकटता प्रभावित हो सकती है। सामाजिक समारोहों और सामुदायिक गतिविधियों में सहभागिता भी कुछ हद तक कम हुई है।

निष्कर्ष –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधुनिक समाज की एक क्रांतिकारी तकनीक है जिसने सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन किए हैं। इसने शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, व्यापार तथा प्रशासन को अधिक प्रभावी और सुलभ बनाया है। साथ ही इसने सामाजिक समावेशन, सूचना की उपलब्धता तथा जीवन की सुविधाओं में वृद्धि की है।

दूसरी ओर, रोजगार, गोपनीयता, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक संबंधों तथा सांस्कृतिक मूल्यों से संबंधित चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। इसलिए आवश्यक है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास मानव कल्याण, सामाजिक न्याय और नैतिक मूल्यों के अनुरूप हो।

अंततः कहा जा सकता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता स्वयं न तो पूर्णतः लाभकारी है और न ही पूर्णतः हानिकारक। इसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि मानव समाज इसका उपयोग किस प्रकार करता है। यदि AI का उपयोग जिम्मेदारी, पारदर्शिता और नैतिकता के साथ किया जाए, तो यह सामाजिक विकास और मानव कल्याण का एक शक्तिशाली माध्यम सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ सूची :

1. Russell, Stuart & Norvig, Peter. Artificial Intelligence: A Modern Approach.
2. UNESCO. Recommendation on the Ethics of Artificial Intelligence.
3. NITI Aayog. National Strategy for Artificial Intelligence.
4. Kumar, Vinod. सूचना प्रौद्योगिकी और समाज।
5. शर्मा, रामकुमार. आधुनिक विज्ञान और सामाजिक परिवर्तन।
6. मिश्रा, ओमप्रकाश. डिजिटल समाज और नई चुनौतियाँ।
7. विभिन्न शोध–पत्र, जर्नल एवं अकादमिक स्रोत।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 129-138

साइबर कूटनीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंध : समकालीन भू–राजनीति में डिजिटल युद्ध की भूमिका

Raushan Kumar
Research Scholar, Department of Political Science,
Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi- 221002

सारांश :

यह शोध पत्र ''साइबर कूटनीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंध : समकालीन भू–राजनीति में डिजिटल युद्ध की भूमिका'' में समकालीन अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में साइबर कूटनीति और साइबर युद्ध के बढ़ते महत्व की पड़ताल की गई है। डिजिटल युग में राष्ट्र–राज्यों के बीच शक्ति का संतुलन और संघर्ष अब पारंपरिक सैन्य या आर्थिक साधनों तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि वे साइबरस्पेस में भी नई चुनौतियाँ और अवसर निर्मित कर रहे हैं। इस शोध में दर्शाया गया है कि किस प्रकार साइबर क्षेत्र में होने वाले हमले–जैसे रैनसमवेयर, राज्य–प्रायोजित जासूसी, और डिस्ट्रीब्यूटेड डेनियल ऑफ सर्विस (DDoS) अटैक–राजनीतिक, आर्थिक व रणनीतिक संदर्भ में वैश्विक स्थिरता और सुरक्षा पर गहरा प्रभाव डालते हैं। साइबर कूटनीति, देशों, समूहों या व्यक्तियों द्वारा साइबरस्पेस में किए गए व्यवहार और रणनीतियों को इंगित करती है। एक ओर, यह पारंपरिक कूटनीति के मूल्या–जैसे संवाद, समझौता और संघर्ष की रोकथाम–का डिजिटल क्षेत्र में विस्तार करती है।

वहीं दूसरी ओर, इसका उपयोग अव्यक्त आईटी ढांचे को सुरक्षित करने, नियामक मानकों के निर्धारण, तथा सूचना युद्ध और दुष्प्रचार रणनीतियों के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय एजेंडा निर्धारित करने में भी किया जाता है। इन बदलती तकनीकी और भू–राजनीतिक प्रवृत्तियों के संदर्भ में, शोध पत्र यह रेखांकित करता है कि साइबरस्पेस में सहयोग और भरोसा बढ़ाना, वैश्विक स्थिरता और शांति के लिए अत्यंत आवश्यक है।

मुख्य शब्द : साइबर कूटनीति, डिजिटल युद्ध, अंतर्राष्ट्रीय संबंध, भू–राजनीति, साइबर सुरक्षा, Grey Zone, Digital Colonialism, AI Autonomy.

प्रस्तावना :

21वीं सदी में, दुनिया की राजनीति तेजी से बदल रही है और अब यह डिजिटल रूप ले रही है। परमाणु हथियारों और पारंपरिक सैन्य शक्ति के साथ–साथ साइबर शक्ति भी देशों की ताकत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई है। इंटरनेट, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, क्लाउड कंप्यूटिंग और डिजिटल नेटवर्क के विस्तार ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों को एक नया मोड़ दिया है। अब साइबर कूटनीति और डिजिटल युद्ध दुनिया की राजनीति के केंद्र में हैं। साइबर कूटनीति का मतलब है देशों के बीच डिजिटल तकनीकों, साइबर सुरक्षा, डेटा प्रबंधन और इंटरनेट संबंधी नियमों और समझौतों को विकसित करने के लिए कूटनीतिक प्रयास करना। वहीं, डिजिटल युद्ध

का मतलब है कंप्यूटर नेटवर्क, सूचना प्रणालियों और महत्वपूर्ण डिजिटल बुनियादी ढांचे पर हमला करना। इन हमलों का उद्देश्य प्रतिद्वंद्वी की आर्थिक, राजनीतिक या सैन्य क्षमता को कम करना होता है।

साइबर युद्ध की अवधारणा को दुनिया भर में पहचान 2007 में एस्टोनिया पर हुए बड़े साइबर हमलों के बाद मिली। उस समय सरकारी वेबसाइटें, बैंकिंग प्रणाली और संचार नेटवर्क प्रभावित हुए थे। इसके बाद 2010 में स्टक्सनेट हमले ने यह साबित कर दिया कि साइबर हथियार भौतिक बुनियादी ढांचे को भी नुकसान पहुंचा सकते हैं। आजकल, अमेरिका, चीन, रूस और यूरोपीय संघ साइबर क्षेत्र में प्रमुख शक्तियों के रूप में उभर रहे हैं। अमेरिका और चीन के बीच तकनीकी प्रतिस्पर्धा साइबर कूटनीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई है। रूस–यूक्रेन संघर्ष ने यह स्पष्ट कर दिया है कि आधुनिक युद्ध केवल रणभूमि तक सीमित नहीं है, बल्कि डिजिटल नेटवर्क और सूचना प्रणालियां भी संघर्ष का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

भारत के लिए भी साइबर कूटनीति बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। डिजिटल इंडिया, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), आधार और अन्य डिजिटल सेवाओं के विस्तार के साथ साइबर सुरक्षा राष्ट्रीय सुरक्षा का एक अभिन्न अंग बन गई है। भारत विभिन्न अंतरराष्ट्रीय मंचों पर साइबर सहयोग को बढ़ावा देने के साथ–साथ अपनी डिजिटल संप्रभुता और डेटा सुरक्षा को मजबूत करने का प्रयास कर रहा है। हालांकि, साइबर क्षेत्र कई चुनौतियां भी प्रस्तुत करता है। साइबर अपराध, डेटा चोरी, दुष्प्रचार, चुनावी हस्तक्षेप और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित साइबर हमले वैश्विक चिंताओं के प्रमुख विषय हैं। साइबर हमलों की पहचान करना और उनके वास्तविक स्रोत का पता लगाना भी मुश्किल होता है, जिससे जवाबदेही और अंतरराष्ट्रीय कानूनों का अनुपालन चुनौतीपूर्ण बन जाता है।

अतः, साइबर कूटनीति और डिजिटल युद्ध समकालीन राजनीति के महत्वपूर्ण स्तंभ बन गए हैं। भविष्य में, अंतरराष्ट्रीय शक्ति संतुलन केवल सैन्य और आर्थिक क्षमता से नहीं, बल्कि डिजिटल सामर्थ्य और साइबर सुरक्षा से भी निर्धारित होगा। इसलिए, वैश्विक शांति, सुरक्षा और स्थिरता के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग, प्रभावी साइबर शासन और साझा डिजिटल मानकों का विकास बहुत आवश्यक है।

शोध उद्देश्य :

- समकालीन भू–राजनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में साइबर कूटनीति के बदलते स्वरूप और इसके विकास क्रम का विश्लेषण करना।
- डिजिटल युद्ध के वैश्विक स्थिरता, राष्ट्रीय संप्रभुता और अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानूनों पर पड़ने वाले प्रभावों की पड़ताल करना।

शोध परिकल्पना :

- साइबर कूटनीति में वैश्विक सर्वसम्मति का अभाव अंतरराष्ट्रीय संबंधों में 'ग्रे जोन' और अविश्वास के संकट को बढ़ावा देता है।
- डिजिटल युद्ध के उपकरणों और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का बढ़ता सैन्यीकरण पारंपरिक हाइब्रिड संघर्षों की विनाशक क्षमता को अत्यधिक बढ़ा देता है।

शोध महत्व :

- यह शोध डिजिटल युग में नीति–निर्माताओं को राष्ट्रीय सुरक्षा और डेटा संप्रभुता की रक्षा के लिए मजबूत साइबर रणनीतियाँ बनाने में मदद करेगा।

- यह अकादमिक क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय कानून और साइबर मानदंडों के अंतर्संबंधों को समझने के लिए एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्य रूप से गुणात्मक और वर्णनात्मक शोध प्रविधि का उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत माध्यमिक स्रोतों (Secondary Sources) जैसे–संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट्स, अंतरराष्ट्रीय संधियों, वैश्विक थिंक–टैंक (RANE, WEF) के दस्तावेजों और समकालीन केस स्टडीज का कूटनीतिक दृष्टिकोण से विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

साइबर कूटनीति का विकास : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :

साइबर कूटनीति आज के अंतरराष्ट्रीय संबंधों में एक बढ़ता हुआ क्षेत्र है। यह साइबर हमलों, डेटा चोरी, और डिजिटल सुरक्षा जैसी समस्याओं से निपटने के लिए कूटनीतिक तरीकों का उपयोग करता है। इसका मुख्य लक्ष्य देशों, अंतरराष्ट्रीय संगठनों, और अन्य हितधारकों के बीच सहयोग, विश्वास, और नियमों पर आधारित एक व्यवस्था बनाना है। इसका विकास 1990 के दशक में शुरू हुआ जब इंटरनेट दुनिया भर में फैल गया। उस समय, इंटरनेट के नियमन और तकनीकी समन्वय पर ध्यान केंद्रित किया गया। 2001 में साइबर अपराध पर बुडापेस्ट सम्मेलन एक महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय समझौता था जिसने वैश्विक सहयोग की शुरुआत की।

साइबर कूटनीति को 2007 में एस्टोनिया पर साइबर हमलों के बाद वास्तविक गति मिली। इन हमलों ने दिखाया कि साइबर स्पेस राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप, नाटो ने साइबर रक्षा केंद्र की स्थापना की। 2010 में स्टक्सनेट साइबर हमले ने साबित किया कि साइबर हथियार भौतिक बुनियादी ढांचे को भी गंभीर नुकसान पहुंचा सकते हैं। 2010 और 2020 के बीच, साइबर कूटनीति अधिक परिपक्व हुई। 2013 और 2017 के टालिन मैनुअल ने साइबर युद्ध पर अंतरराष्ट्रीय कानूनों के सिद्धांतों को स्पष्ट किया।

2015 के अमेरिका–चीन साइबर समझौते और संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञ समूह ने साइबर स्पेस में जिम्मेदार राज्य व्यवहार को बढ़ावा दिया। इस दौरान, यूरोपीय संघ ने साइबर सुरक्षा रणनीतियाँ और साइबर कूटनीति उपकरण विकसित किए। 2020 के बाद, कोविड–19 महामारी और रूस–यूक्रेन संघर्ष ने साइबर सुरक्षा के महत्व को और बढ़ा दिया। जैसे–जैसे डिजिटल निर्भरता बढ़ी, साइबर हमलों की संख्या भी बढ़ी। इससे साइबर कूटनीति राष्ट्रीय सुरक्षा और विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गई। भारत सहित कई देशों ने साइबर सहयोग समझौतों, साइबर सुरक्षा ढांचों और विशेष संस्थागत व्यवस्थाओं को विकसित किया।

अतः साइबर कूटनीति का विकास तकनीकी समन्वय से आगे बढ़कर वैश्विक सुरक्षा, अंतरराष्ट्रीय कानून, और डिजिटल शासन के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में हुआ है। भविष्य में, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, क्वांटम कंप्यूटिंग, और 5G जैसी तकनीकों के विस्तार के साथ इसका महत्व और भी बढ़ने की संभावना है।

समकालीन भू–राजनीति में डिजिटल युद्ध :

समकालीन भू–राजनीति में डिजिटल युद्ध एक नए और प्रभावशाली युद्धक्षेत्र के रूप में सामने आया है। आज शक्ति संतुलन सैन्य बल या परमाणु हथियारों से नहीं, बल्कि सूचना, डेटा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और साइबर क्षमताओं से भी निर्धारित होता है। डिजिटल युद्ध में राज्यों या गैर–राज्यीय समूहों द्वारा कंप्यूटर नेटवर्क, संचार प्रणालियों और महत्वपूर्ण डिजिटल अवसंरचनाओं पर साइबर हमले किए जाते हैं, जिनका उद्देश्य विरोधी देश की

आर्थिक, राजनीतिक या सैन्य क्षमता को कमजोर करना होता है। डिजिटल युद्ध की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें भौगोलिक सीमाएँ महत्वहीन हो जाती हैं। साइबर हमलों से किसी देश की बैंकिंग व्यवस्था, विद्युत ग्रिड, संचार नेटवर्क और सरकारी प्रणालियों को बिना प्रत्यक्ष सैन्य कार्रवाई के प्रभावित किया जा सकता है। इस कारण इसे कम लागत वाला, गोपनीय और अत्यधिक प्रभावी युद्ध का माध्यम माना जाता है।

डिजिटल युद्ध का एक उदाहरण 2010 का स्टक्सनेट हमला है, जिसने ईरान के परमाणु कार्यक्रम को गंभीर रूप से प्रभावित किया। इसी तरह रूस–यूक्रेन संघर्ष में साइबर हमलों, रैनसमवेयर और दुष्प्रचार अभियानों का व्यापक उपयोग देखा गया। इन घटनाओं ने स्पष्ट कर दिया कि आधुनिक युद्ध केवल रणभूमि तक सीमित नहीं है, बल्कि साइबर स्पेस भी संघर्ष का महत्वपूर्ण क्षेत्र बन चुका है। वर्तमान समय में अमेरिका, चीन और रूस डिजिटल युद्ध के प्रमुख खिलाड़ी हैं। अमेरिका–चीन तकनीकी प्रतिस्पर्धा, विशेषकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सेमीकंडक्टर और डेटा नियंत्रण के क्षेत्रों में, वैश्विक शक्ति संतुलन को प्रभावित कर रही है। रूस साइबर अभियानों और सूचना युद्ध को अपनी रणनीतिक नीति का हिस्सा बना चुका है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बढ़ते उपयोग ने डिजिटल युद्ध को और अधिक जटिल तथा प्रभावशाली बना दिया है।

भारत के संदर्भ में डिजिटल युद्ध राष्ट्रीय सुरक्षा का महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। डिजिटल इंडिया, यूपीआई, आधार और अन्य ऑनलाइन सेवाओं के विस्तार के कारण साइबर सुरक्षा की आवश्यकता पहले से अधिक बढ़ गई है। भारत साइबर सुरक्षा ढाँचे को मजबूत करने और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाने की दिशा में लगातार कार्य कर रहा है।

अतः डिजिटल युद्ध समकालीन भू–राजनीति का अभिन्न अंग बन चुका है। यह अवसर और चुनौती दोनों प्रस्तुत करता है। भविष्य में वैश्विक शांति और स्थिरता बनाए रखने के लिए प्रभावी साइबर सुरक्षा, अंतरराष्ट्रीय नियमों तथा डिजिटल सहयोग की आवश्यकता और अधिक बढ़ेगी।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर प्रभाव : साइबर कूटनीति और डिजिटल युद्ध :

आज के समय में, साइबर कूटनीति और डिजिटल युद्ध ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों को बहुत प्रभावित किया है। डिजिटल तकनीकों के बढ़ते उपयोग के साथ, साइबर स्पेस राज्यों के बीच प्रतिस्पर्धा और सहयोग दोनों का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है। किसी देश की शक्ति अब केवल उसकी सैन्य या आर्थिक क्षमता से नहीं, बल्कि उसकी साइबर सुरक्षा, डिजिटल अवसंरचना और तकनीकी दक्षता से भी निर्धारित होती है। डिजिटल युद्ध ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति में शक्ति संरचना को बदल दिया है। साइबर हमलों के माध्यम से छोटे या कमजोर देश भी बड़ी शक्तियों को चुनौती दे सकते हैं। साइबर हमलों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी गुमनामी और स्रोत की पहचान की कठिनाई है, जिससे राज्यों के बीच अविश्वास और तनाव बढ़ता है। उदाहरण के लिए, स्टक्सनेट हमले और नॉटपेट्या साइबर हमले ने दिखाया कि डिजिटल माध्यम से व्यापक आर्थिक और रणनीतिक नुकसान पहुँचाया जा सकता है।

साइबर खतरों ने अंतरराष्ट्रीय गठबंधनों को भी नई दिशा दी है। कई देशों ने साइबर सुरक्षा सहयोग को अपनी रणनीतियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया है। साइबर कूटनीति के माध्यम से देश सूचना साझाकरण, क्षमता निर्माण और संयुक्त सुरक्षा उपायों को बढ़ावा दे रहे हैं। भारत ने भी कई देशों के साथ साइबर सहयोग को मजबूत किया है। आर्थिक क्षेत्र में डिजिटल युद्ध का प्रभाव बहुत व्यापक है। साइबर हमले आपूर्ति श्रृंखलाओं, बैंकिंग प्रणालियों और व्यापारिक नेटवर्क को बाधित कर सकते हैं, जिससे वैश्विक अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है।

अमेरिका–चीन तकनीकी प्रतिस्पर्धा और सेमीकंडक्टर नियंत्रण जैसी नीतियाँ डिजिटल भू–राजनीति के बढ़ते महत्व को दर्शाती हैं।

हालाँकि, साइबर कूटनीति और डिजिटल युद्ध कई चुनौतियाँ भी उत्पन्न करते हैं। दुष्प्रचार, चुनावी हस्तक्षेप, साइबर अपराध और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित हमले लोकतांत्रिक संस्थाओं तथा मानवाधिकारों के लिए खतरा बन सकते हैं। अंतरराष्ट्रीय कानूनों और जवाबदेही तंत्र की कमी इन चुनौतियों को और जटिल बनाती है।

अतः साइबर कूटनीति और डिजिटल युद्ध अंतरराष्ट्रीय संबंधों के स्वरूप को पुनर्परिभाषित कर रहे हैं। ये जहाँ एक ओर संघर्ष और प्रतिस्पर्धा को बढ़ाते हैं, वहीं दूसरी ओर सहयोग, वैश्विक शासन और साझा सुरक्षा ढाँचों के विकास के अवसर भी प्रदान करते हैं। भविष्य में अंतरराष्ट्रीय स्थिरता के लिए प्रभावी साइबर शासन और बहुपक्षीय सहयोग अत्यंत आवश्यक होगा।

साइबर युद्ध के रणनीतिक आयाम :

साइबर युद्ध आज की दुनिया में एक महत्वपूर्ण और जटिल मुद्दा बन चुका है। डिजिटल तकनीकों, इंटरनेट नेटवर्कों और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बढ़ते उपयोग ने युद्ध और सुरक्षा की पारंपरिक अवधारणाओं को बदल दिया है। साइबर स्पेस अब एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ देश अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं और विरोधी देशों की सैन्य, आर्थिक और राजनीतिक क्षमताओं को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

साइबर युद्ध का पहला महत्वपूर्ण आयाम इसका सैन्य महत्व है। आधुनिक संघर्षों में साइबर हमले पारंपरिक सैन्य अभियानों के साथ काम करते हैं। इससे किसी देश की संचार प्रणाली, विद्युत ग्रिड, रक्षा नेटवर्क और कमांड एवं नियंत्रण संरचनाओं को बाधित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, रूस–यूक्रेन संघर्ष और ईरान–इजराइल तनाव जैसे मामलों में साइबर हमले हाइब्रिड युद्ध का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुके हैं। इसका मतलब है कि बिना प्रत्यक्ष सैन्य टकराव के भी विरोधी की क्षमता को कमजोर किया जा सकता है।

दूसरा महत्वपूर्ण आयाम आर्थिक रणनीति है। साइबर हमले बैंकिंग प्रणाली, वित्तीय संस्थानों, उद्योगों और वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं को प्रभावित कर सकते हैं। डिजिटल अर्थव्यवस्था पर बढ़ती निर्भरता के कारण साइबर हमलों से बड़े पैमाने पर आर्थिक नुकसान हो सकता है। अमेरिका–चीन तकनीकी प्रतिस्पर्धा, विशेषकर सेमीकंडक्टर और उन्नत प्रौद्योगिकी नियंत्रण, साइबर युद्ध के आर्थिक पक्ष को स्पष्ट करती है। इस संदर्भ में डिजिटल संप्रभुता और तकनीकी आत्मनिर्भरता रणनीतिक महत्व प्राप्त कर चुकी हैं।

तीसरा आयाम सूचनात्मक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव है। दुष्प्रचार, सोषल मीडिया अभियानों, साइबर जासूसी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित डीपफेक तकनीकों का उपयोग जनमत को प्रभावित करने और राजनीतिक अस्थिरता पैदा करने के लिए किया जाता है। इससे लोकतांत्रिक संस्थाएँ और सामाजिक विश्वास प्रभावित हो सकते हैं।

चौथा आयाम साइबर प्रतिरोधक क्षमता से जुड़ा है। राष्ट्र अपनी साइबर सुरक्षा संरचनाओं को मजबूत बनाकर और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाकर संभावित हमलों को रोकने का प्रयास करते हैं। विभिन्न अंतरराष्ट्रीय मंच साइबर स्पेस में जिम्मेदार राज्य व्यवहार और नियम–आधारित व्यवस्था स्थापित करने के लिए कार्य कर रहे हैं, हालांकि प्रभावी प्रवर्तन अभी भी चुनौती बना हुआ है।

साइबर कूटनीति में अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका :

साइबर कूटनीति के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ वैश्विक डिजिटल शासन की प्रमुख आधारशिला बन चुकी

हैं। साइबर हमलों, डेटा सुरक्षा, डिजिटल संप्रभुता और उभरती प्रौद्योगिकियों से जुड़ी चुनौतियों का समाधान केवल राष्ट्रीय स्तर पर संभव नहीं है। इसलिए विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठन सहयोग, संवाद, क्षमता निर्माण और नियम–आधारित व्यवस्था को बढ़ावा देकर साइबर स्पेस को अधिक सुरक्षित और स्थिर बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। संयुक्त राष्ट्र के Group of Governmental Experts और Open-Ended Working Group ने साइबर स्पेस में जिम्मेदार राज्य व्यवहार, अंतरराष्ट्रीय कानूनों की प्रयोज्यता तथा विश्वास निर्माण उपायों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन मंचों के माध्यम से देशों के बीच संवाद को बढ़ावा मिला है और साइबर सुरक्षा से संबंधित वैश्विक मानकों के निर्माण की दिशा में प्रगति हुई है। संयुक्त राष्ट्र का प्रयास साइबर स्पेस को संघर्ष के बजाय सहयोग का क्षेत्र बनाना है।

यूरोपीय संघ भी साइबर कूटनीति में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। यूरोपीय संघ की साइबर सुरक्षा रणनीति और Cyber Diplomacy Toolbox सदस्य देशों को साइबर खतरों के विरुद्ध समन्वित प्रतिक्रिया देने में सहायता प्रदान करती है। यह संस्था डिजिटल अधिकारों, डेटा सुरक्षा और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा पर विशेष बल देती है तथा विभिन्न देशों के साथ साइबर क्षमता निर्माण कार्यक्रम संचालित करती है।

अंतरराष्ट्रीय दूरसंचार संघ तकनीकी सहयोग और क्षमता निर्माण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ITU विकासशील देशों को साइबर सुरक्षा अवसंरचना, प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता और नीतिगत मार्गदर्शन प्रदान करता है। इसके कार्यक्रम राष्ट्रीय साइबर क्षमताओं को सुदृढ़ करने और डिजिटल विभाजन को कम करने में सहायक हैं।

सुरक्षा और रक्षा के क्षेत्र में NATO की भूमिका उल्लेखनीय है। NATO ने साइबर हमलों को सामूहिक सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा माना है और साइबर रक्षा को अपनी रणनीतिक प्राथमिकताओं में शामिल किया है। इसके अंतर्गत सदस्य देशों के बीच सूचना साझाकरण, संयुक्त अभ्यास तथा साइबर रक्षा सहयोग को बढ़ावा दिया जाता है। इनके अतिरिक्त, Global Forum on Cyber Expertise तथा International Committee of the Red Cross जैसी संस्थाएँ क्षमता निर्माण और मानवीय दृष्टिकोण को मजबूत करती हैं। ये संगठन साइबर संघर्षों के मानवीय प्रभावों पर ध्यान आकर्षित करते हैं और जिम्मेदार डिजिटल व्यवहार को प्रोत्साहित करते हैं।

अतः, अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ साइबर कूटनीति के माध्यम से वैश्विक सहयोग, नियम निर्माण और साइबर सुरक्षा को सुदृढ़ करने में केंद्रीय भूमिका निभा रही हैं। भारत जैसे उभरते देशों के लिए ये मंच वैश्विक सहभागिता और नेतृत्व के महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करते हैं। भविष्य में सुरक्षित, खुला और स्थिर साइबर स्पेस सुनिश्चित करने के लिए इन संस्थाओं की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण होती जाएगी।

साइबर युद्ध की कानूनी और नैतिक चुनौतियाँ :

साइबर युद्ध समकालीन भू–राजनीति का एक जटिल और उभरता हुआ आयाम है, जिसने पारंपरिक युद्ध की अवधारणाओं को चुनौती दी है। इंटरनेट और डिजिटल नेटवर्क की सीमा–विहीन प्रकृति के कारण साइबर हमलों का स्रोत पहचानना कठिन होता है, जिससे अंतरराष्ट्रीय कानून के प्रभावी अनुप्रयोग में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। यही कारण है कि साइबर युद्ध को अक्सर "ग्रे जोन" संघर्ष कहा जाता है, जहाँ शांति और युद्ध की सीमाएँ स्पष्ट नहीं रहतीं।

साइबर युद्ध की सबसे बड़ी कानूनी चुनौती एट्रिब्यूशन (Attribution) अर्थात् हमले के वास्तविक स्रोत

की पहचान है। हमलावर अपनी पहचान छिपाने के लिए प्रॉक्सी सर्वरों, बॉटनेट और अन्य तकनीकों का उपयोग करते हैं, जिससे किसी राज्य या संगठन की जिम्मेदारी तय करना कठिन हो जाता है। वर्तमान अंतरराष्ट्रीय कानून, जैसे संयुक्त राष्ट्र चार्टर और जिनेवा कन्वेंशन, मुख्यतः पारंपरिक युद्धों के लिए बनाए गए थे, इसलिए साइबर हमलों पर उनकी व्याख्या और लागू करने की प्रक्रिया अभी भी विवादास्पद है। 2010 का स्टक्सनेट हमला और 2017 का नॉटपेट्या हमला इस कानूनी अस्पष्टता के प्रमुख उदाहरण हैं।

नैतिक दृष्टि से भी साइबर युद्ध अनेक प्रश्न खड़े करता है। यद्यपि इसे कभी–कभी "रक्तहीन युद्ध" कहा जाता है, परंतु इसके प्रभाव सीधे नागरिकों पर पड़ सकते हैं। अस्पतालों, विद्युत ग्रिडों, बैंकिंग प्रणालियों और संचार नेटवर्क पर साइबर हमले लाखों लोगों के दैनिक जीवन को प्रभावित कर सकते हैं। इस प्रकार नागरिक और सैन्य लक्ष्यों के बीच अंतर करना कठिन हो जाता है, जो अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानून के मूल सिद्धांतों के विपरीत है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के बढ़ते उपयोग ने इन चुनौतियों को और जटिल बना दिया है। स्वायत्त साइबर प्रणालियाँ और एआई–संचालित हमले तीव्र गति से निर्णय ले सकते हैं, जिससे मानवीय नियंत्रण और जवाबदेही कम हो सकती है। इसके अतिरिक्त, डीपफेक, दुष्प्रचार (Disinformation) और एल्गोरिथ्मिक पक्षपात जैसी समस्याएँ लोकतांत्रिक संस्थाओं तथा सामाजिक विश्वास को कमजोर कर सकती हैं।

इन चुनौतियों के समाधान के लिए वैश्विक स्तर पर स्पष्ट कानूनी मानकों, बाध्यकारी अंतरराष्ट्रीय समझौतों तथा एआई के नैतिक उपयोग संबंधी दिशानिर्देशों की आवष्यकता है। संयुक्त राष्ट्र, क्षेत्रीय संगठनों और विभिन्न देशों के बीच सहयोग को सुदृढ़ कर ही साइबर क्षेत्र में स्थिरता, सुरक्षा और जवाबदेही सुनिश्चित की जा सकती है। इस प्रकार, साइबर युद्ध को मानवीय मूल्यों और विधि–आधारित व्यवस्था से जोड़ना भविष्य की वैश्विक शांति के लिए अनिवार्य है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

आज की दुनिया में साइबर कूटनीति और डिजिटल युद्ध बहुत महत्वपूर्ण हो गए हैं। डिजिटल तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, बड़े डेटा और साइबर अवसंरचना के बढ़ते उपयोग ने देशों के बीच शक्ति संतुलन और सुरक्षा की प्रकृति को बदल दिया है। साइबर कूटनीति देशों के बीच बातचीत और सहयोग को बढ़ावा देती है, जबकि डिजिटल युद्ध नए तरह के संघर्ष और सुरक्षा चुनौतियों को जन्म देता है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य से यह स्पष्ट है कि साइबर क्षेत्र अब केवल तकनीकी मंच नहीं है, बल्कि यह रणनीतिक, आर्थिक और राजनीतिक शक्ति का एक बड़ा स्रोत बन गया है। रूस–यूक्रेन संघर्ष, अमेरिका–चीन तकनीकी प्रतिस्पर्धा और पश्चिम एशिया के साइबर तनाव इस बात को साबित करते हैं कि भविष्य के संघर्षों में डिजिटल साधनों की भूमिका और भी अधिक बढ़ेगी। संयुक्त राष्ट्र, यूरोपीय संघ, नाटो और आईटीयू जैसी संस्थाएं साइबर मानकों, क्षमता निर्माण और वैश्विक सहयोग को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

इसके बावजूद, साइबर युद्ध से जुड़ी कानूनी और नैतिक चुनौतियां अभी भी बहुत बड़ी हैं। हमलों की पहचान, जवाबदेही, नागरिक अवसंरचना की सुरक्षा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित स्वायत्त प्रणालियों के उपयोग से जुड़े प्रश्न वैश्विक समुदाय के सामने प्रमुख चिंता के विशय हैं। इसलिए, अंतरराष्ट्रीय सहयोग, पारदर्शिता और साझा मानकों का विकास भविष्य की आवश्यकता है।

सुझाव :

- वैश्विक साइबर मानकों का विकास किया जाए ताकि देशों के व्यवहार के लिए स्पष्ट नियम निर्धारित हो सकें।
- संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व में बाध्यकारी अंतरराष्ट्रीय साइबर संधि बनाने की दिशा में प्रयास बढ़ाए जाएं।
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक उपयोग हेतु वैश्विक दिशानिर्देश तैयार किए जाएं।
- राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा अवसंरचना और क्षमता निर्माण को प्राथमिकता दी जाए।
- साइबर अपराध और दुष्प्रचार से निपटने हेतु अंतरराष्ट्रीय सहयोग बढ़ाया जाए।
- भारत को डिजिटल संप्रभुता, स्वदेशी तकनीक और डेटा सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
- साइबर कूटनीति में भारत की सक्रिय भूमिका बढ़ाकर वैश्विक नीति–निर्माण में नेतृत्व स्थापित किया जाना चाहिए।

भविष्य में, साइबर कूटनीति का सफलता बहुपक्षीय सहयोग पर निर्भर करेगी। भारत जैसे मध्य शक्तियों को डिजिटल गवर्नेंस में सक्रिय भूमिका निभानी होगी, जहां AI नैतिकता और समावेशी मानदंड निर्माण प्रमुख हों। अंततः, साइबर कूटनीति और डिजिटल युद्ध 'अदृश्य युद्धक्षेत्र' हैं, जहां शक्ति सूचना से निर्धारित होती है। बिना संतुलित, समावेशी दृष्टिकोण के, यह अराजकता की ओर ले जा सकता है लेकिन सहयोग से, यह शांति और समृद्धि का नया युग ला सकता है। 2025 की भू–राजनीति हमें सिखाती है– डिजिटल क्षेत्र में शांति पारंपरिक कूटनीति से अधिक जटिल, लेकिन अनिवार्य है।

Reference –

- Fatuch, Justin (July 15, 2025) "War Beyond Borders: Cyber Operations in Modern Geopolitical Conflits", Cobalt, San Francisco USA. (https://www.cobalt.io)
- Lemos, Robert (June 20, 2025) "How Cyber Warfare Changes the Face of Geopolitical Conflict", Dark Reading, USA. (https://www.darkreading.com)
- Khan, Dr. Zeeshan Faisal (2025) "Cyber Warfare and International Security: A new Geopolitical Frontier", JOURNAL- The Critical Review of Social Sciences Studies, Bright Education Research Solutions, Volume 3, Number 2, 2025, Pages 513 – 527, Nagpur, India. (https://www.researchgate.net)
- Kempe, Frederick (Nov 11, 2025) "It's time to reckon with the geopolitics of artificial intelligence" Atlantic Counil, USA. (https://www.atlanticcouncil.org)
- Idden Aryasatya and Eko Daryanto (2025) "Cyber Warfare And Its Place In Modern Geopolitics And War", University of Indonesia, VOL. 2, Indonesia. (https://www.sitjournal.com)
- James P. Rubin and Darjan Vujica (NOV 19, 2025) "AI Is Supercharging Disinformation Warfare", America. (htpss://www.foreignaffairs.com)
- kumar, Avinash (2022) ''Cyber Diplomacy – The Concept , Evolution And Its Applicability", Bengaluru. (https://www.ijcd.ici.ro)
- Roy, Rajashree (JULY ,2025) "The Evolution And Strategic Dimensions Of Cyber Diplomacy In Global Governance", University of Delhi, Delhi. (https://www.rjwave.org)

- Mehmood, nazish (March 23, 2025) "Cyber Wars are the New Battleground of Global Diplomacy", MODERN DIPLOMACY ALL VIEW, London. (https://www.moderndiplomacy.eu)
- Pytlak, Allison (August 4, 2025) "Cyber Diplomacy 2.0: From Process to Impact", Stimson Center, USA. (https://www.stimson.org)
- Jackson, Kris (Jul 8, 2025) "The Unseen War: Cyber Warfare in the Shadow of Global Conflicts", Cobalt, USA. (https://www.cobalt.io)
- Oswal, Anand (2025) "Navigating the Geopolitical Cybersecurity Landscape in 2025" PALOALTO NETWORK. (https://www.paloaltonetworks.com)
- Heli tiirmaa-klaar, (APRIL 27, 2025) "Cyber Diplomacy and Writing the Rules of an Invisible Domain", Washinton International Diplomacy Academy, USA. (https://www.diplomaticacademy.us)
- George, Christou (2024) "Cyber Diplomacy: From Concept to Practice", Tallinn Paper No. 14. (https://www.ccdcoe.org)
- Jim richberg, (April 4, 2025) "The need for collaborative global cyber diplomacy is growing", (https://www.nextgov.com)
- Cyber Risk Outlook 2025: RANE's 3-5 Year Analysis of Cyberspace in Geopolitics, (https://www.ranenetwork.com)
- Top Geopolitical Risks of 2025, USA. (https://www.spglobal.com)
- United States International Cyberspace & Digital Policy Strategy, January 2021-2025. (https://www.state.gov)
- Navigating the Geopolitical Cybersecurity Landscape in 2025. (https://www.paloltonetworks.com)
- Building the digital front line: Understanding big tech decision-making in Ukraine., Nov 17, 2025. (https://www.atlanticcouncil.org)
- Advances in Cybersecurity Tactics Amid Rising Geopolitical Tensions, Nov 5, 2025. (https://www.tacticsinstitute.com)
- Article- "War in the Digital Age: How Cyberconflict Shapes Foreign Policy". (https://www.Defence-Industries.com)
- Dark Reading, "Israel-Iran Cyber Retaliation Escalates," June 2025, https://www.darkreading.com
- Cobalt, "War Beyond Borders: Cyber Operations in Modern Geopolitical Conflicts," July 15, 2025, https://www.cobalt.io
- Palo Alto Networks, "Navigating the Geopolitical Cybersecurity Landscape in 2025," 2025, (https://www.paloaltonetworks.com)
- Stimson Center, "Beyond Denial: Cyber Deterrence Strategies," 2025, (https://www.stimson.org)
- Press Information Bureau, Government of India, "National Cybersecurity Exercise 2025 Concludes with Strategic Insights," August 1, 2025, https://www.pib.gov.in
- Carnegie Endowment for International Peace, "Mapping India's Cybersecurity Administration in 2025," September 1, 2025. (https://carnegieendowment.org)

- Atlantic Council, "It's Time to Reckon with the Geopolitics of Artificial Intelligence," November 11, 2025, (https://www.atlanticcouncil.org)
- RANE Network, "Cyber Risk Outlook 2025: RANE's 3-5 Year Analysis of Cyberspace in Geopolitics," September 15, 2025, (https://www.ranenetwork.com)
- World Economic Forum, "Global Cybersecurity Outlook 2025," January 10, 2025, (https://reports.weforum.org)
- NATO, Cooperative Cyber Defence Centre of Excellence (CCDCOE), "Cyber Defence Report 2025, 2025. (https://ccdcoe.org)
- Council of Europe, "Budapest Convention on Cybercrime," 2001, (https://www.coe.int)
- U.S. Department of State, "U.S.-China Cybersecurity Agreement," 2015, (https://2017-2021.state.gov)
- United Nations, "UN OEWG 2021-2025 Final Report," July 11, 2025, (https://dig.watch)
- European External Action Service (EEAS), "EU Cyber Diplomacy Toolbox," 2017 (2025 Update), (https://eeas.europa.eu)
- S&P Global, "Top Geopolitical Risks of 2025," 2025, (https://www.spglobal.com)

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 139-141

डिजिटल साक्षरता और ग्रामीण महिला सशक्तिकरण : भारत–नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्रों में ई–गवर्नेंस का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

रविन्द्र सोलंकी
पीएचडी शोधार्थी (राजनीति विज्ञान विभाग)
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश)

सारांश :

डिजिटल युग में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने शासन और विकास की प्रक्रियाओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। डिजिटल साक्षरता ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, बैंकिंग तथा सरकारी योजनाओं तक पहुँच प्रदान करने का महत्वपूर्ण माध्यम बन गई है। भारत–नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्रों में ई–गवर्नेंस की बढ़ती भूमिका महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण में योगदान दे रही है। प्रस्तुत अध्ययन डिजिटल साक्षरता, ई–गवर्नेंस और महिला सशक्तिकरण के मध्य संबंधों का विश्लेषण करता है तथा सीमावर्ती क्षेत्रों में विद्यमान अवसरों और चुनौतियों का मूल्यांकन करता है। यह शोध मुख्य रूप से वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें द्वितीयक आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : डिजिटल साक्षरता, महिला सशक्तिकरण, ई–गवर्नेंस, सीमावर्ती क्षेत्र, डिजिटल समावेशन।

प्रस्तावना :

21वीं सदी में डिजिटल प्रौद्योगिकी सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण साधन बन चुकी है। शासन व्यवस्था में पारदर्शिता, जवाबदेही और नागरिक सहभागिता को बढ़ाने के लिए ई–गवर्नेंस का व्यापक उपयोग किया जा रहा है। भारत और नेपाल, दोनों देशों ने डिजिटल प्रशासन को सुदृढ़ करने के लिए विभिन्न योजनाएँ लागू की हैं। भारत में 'डिजिटल इंडिया', 'प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान' (PMGDISHA) तथा 'कॉमन सर्विस सेंटर' (CSC) जैसी पहलें ग्रामीण नागरिकों को डिजिटल सेवाओं से जोड़ने का प्रयास कर रही हैं।

भारत–नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्र सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट हैं। इन क्षेत्रों में महिलाओं की शिक्षा, आय और तकनीकी संसाधनों तक पहुँच अपेक्षाकृत सीमित रही है। ऐसे में डिजिटल साक्षरता महिलाओं के लिए केवल तकनीकी कौशल नहीं, बल्कि आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण का माध्यम बनकर उभर रही है।

डिजिटल साक्षरता और महिला सशक्तिकरण :

डिजिटल साक्षरता का आशय डिजिटल उपकरणों, इंटरनेट तथा ऑनलाइन सेवाओं का प्रभावी उपयोग करने की क्षमता से है। यह महिलाओं को सूचना प्राप्त करने, सरकारी योजनाओं का लाभ लेने तथा आर्थिक

प्रक्रियाओं में भाग लेने का अवसर प्रदान करती है।

ग्रामीण महिलाओं के लिए डिजिटल साक्षरता के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

- सरकारी योजनाओं की जानकारी तक त्वरित पहुँच।
- डिजिटल बैंकिंग एवं वित्तीय समावेशन को बढ़ावा।
- ऑनलाइन शिक्षा एवं कौशल विकास के नए अवसर।
- स्वास्थ्य संबंधी जानकारी और आधुनिक सेवाओं तक पहुँच।
- सामाजिक एवं राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि।

विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखा जाए तो डिजिटल साक्षरता महिलाओं की निर्णय–निर्माण क्षमता को भी प्रभावित करती है। डिजिटल माध्यमों से प्राप्त जानकारी उन्हें परिवार तथा समुदाय के स्तर पर अधिक सक्रिय भूमिका निभाने में सक्षम बनाती है।

सीमावर्ती क्षेत्रों में ई–गवर्नेंस की भूमिका :

ई–गवर्नेंस शासन को नागरिकों के निकट लाने का एक प्रभावी माध्यम है। सीमावर्ती क्षेत्रों में यह विशेष महत्व रखता है, क्योंकि यहाँ भौगोलिक दूरी और प्रशासनिक पहुँच की समस्याएँ अधिक होती हैं।

उत्तर प्रदेश के महराजगंज, बहराइच तथा बिहार के पश्चिम चंपारण जैसे सीमावर्ती क्षेत्रों में डिजिटल सेवाओं के विस्तार से महिलाओं की सरकारी योजनाओं तक पहुँच में सुधार हुआ है। नेपाल के तराई क्षेत्रों में भी डिजिटल प्रशासनिक सेवाओं के विकास से महिलाओं को पर्याप्त लाभ प्राप्त हो रहा है।

डिजिटल भुगतान, ऑनलाइन प्रमाणपत्र, जनकल्याणकारी योजनाओं का पंजीकरण तथा ऑनलाइन शिकायत निवारण जैसी सेवाएँ महिलाओं को प्रशासनिक प्रक्रियाओं में सहभागी बना रही हैं। इससे प्रशासनिक पारदर्शिता बढ़ी है और बिचौलियों पर निर्भरता कम हुई है।

प्रमुख चुनौतियाँ :

यद्यपि डिजिटल साक्षरता और ई–गवर्नेंस के सकारात्मक प्रभाव दिखाई देते हैं, फिर भी धरातल पर कई चुनौतियाँ विद्यमान हैं :

- इंटरनेट और डिजिटल बुनियादी अवसंरचना का अभाव।
- स्मार्टफोन एवं डिजिटल उपकरणों की सीमित उपलब्धता।
- व्यापक डिजिटल लैंगिक विभाजन (Gender Digital Divide)।
- साइबर सुरक्षा संबंधी जागरूकता की कमी।
- गरीबी और निम्न शैक्षणिक स्तर।
- पारंपरिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रतिबंध।

विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि केवल तकनीकी संसाधन उपलब्ध कराना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि महिलाओं को डिजिटल तकनीक के सुरक्षित उपयोग हेतु व्यावहारिक प्रशिक्षण और सामाजिक समर्थन देना भी आवश्यक है।

विश्लेषण एवं चर्चा :

भारत और नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण का महत्वपूर्ण आधार बन रही है। स्वयं सहायता समूहों (SHGs) तथा स्थानीय नागरिक संस्थाओं

द्वारा प्रदान किए गए डिजिटल प्रशिक्षण कार्यक्रमों से महिलाओं की भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

फिर भी, डिजिटल विकास का लाभ सभी महिलाओं तक समान रूप से नहीं पहुँच पाया है। जिन क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी बेहतर है, वहाँ महिलाओं की डिजिटल सहभागिता अधिक दिखाई देती है। इसके विपरीत, दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल संसाधनों की कमी विकास की गति को सीमित करती है।

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि डिजिटल साक्षरता को केवल तकनीकी प्रशिक्षण तक सीमित न रखकर, सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण की एक व्यापक व एकीकृत रणनीति से जोड़ना आवश्यक है।

निष्कर्ष :

डिजिटल साक्षरता ग्रामीण महिला सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम है। भारत–नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्रों में ई–गवर्नेंस सेवाओं ने महिलाओं को सूचना, वित्तीय सेवाओं तथा सरकारी योजनाओं तक सीधी पहुँच प्रदान की है। इससे उनकी सामाजिक जागरूकता, आर्थिक स्वतंत्रता तथा निर्णय–निर्माण क्षमता में सकारात्मक वृद्धि दर्ज की गई है।

हालाँकि, डिजिटल विभाजन, अवसंरचना की कमी तथा सामाजिक बाधाएँ अभी भी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि दोनों देशों की सरकारें डिजिटल अवसंरचना को सुदृढ़ करने के साथ–साथ महिलाओं के लिए विशेष व लक्षित डिजिटल प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करें। समावेशी डिजिटल विकास के माध्यम से ही ग्रामीण महिलाओं को विकास की मुख्यधारा में प्रभावी रूप से जोड़ा जा सकता है।

संदर्भ सूची :

- सेन, अमर्त्य (1999). Development as Freedom (विकास ही स्वतंत्रता है), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- Kabeer, N. (2005). Gender Equality and Women's Empowerment : A Critical Analysis of the Third Millennium Development Goal. Gender & Development.
- इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY). डिजिटल इंडिया कार्यक्रम रिपोर्ट, भारत सरकार।
- इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY). पीएमजीदिशा (PMGDISHA) संचालन दिशानिर्देश, भारत सरकार।
- UN Women. Report on Digital Inclusion and Women's Empowerment in South Asia.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 142-148

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य हेतु संचालित साझा कार्यक्रमों का अध्ययन

रेणु देवी
शोध छात्रा, समाज कार्य विभाग, म.गा. काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

सारांश :

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास, मानव संसाधन निर्माण तथा सामाजिक प्रगति का महत्वपूर्ण आधार माना जाता रहा है। स्वस्थ माता एवं स्वस्थ शिशु समाज के सतत एवं समावेशी विकास के प्रमुख निर्धारक होते हैं। भारत जैसे विकासशील देशों में गरीबी, कुपोषण, अशिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं की असमान उपलब्धता, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य अवसंरचना की कमी तथा सामाजिक रूढ़ियाँ मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ रही हैं। प्रस्तुत शोध में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के क्षेत्र में संचालित प्रमुख साझा कार्यक्रमों का विस्तृत अध्ययन किया गया। अध्ययन में इन कार्यक्रमों के उद्देश्यों, कार्यप्रणाली, उपलब्धियों एवं चुनौतियों को सम्मिलित किया गया। शोध हेतु द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया, जिसमें राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की रिपोर्टों, सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों, पुस्तकों, शोध–पत्रों तथा संबंधित साहित्य का अध्ययन किया गया।

अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि विभिन्न सरकारी योजनाओं एवं कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप टीकाकरण सेवाओं का विस्तार हुआ, संस्थागत प्रसव में वृद्धि हुई तथा मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी दर्ज की गई। तथापि, ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य अवसंरचना की अपर्याप्तता, प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मियों की कमी, कुपोषण तथा जन–जागरूकता के निम्न स्तर जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान थीं। अतः इन कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन, स्वास्थ्य सेवाओं की समतामूलक उपलब्धता तथा जन–जागरूकता में वृद्धि पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता रेखांकित की गई, जिससे मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य की स्थिति में और अधिक सुधार सुनिश्चित किया जा सके।

मुख्य शब्द – मातृ स्वास्थ्य, शिशु स्वास्थ्य, साझा कार्यक्रम, पोषण, सुरक्षित मातृत्व।

परिचय :

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य किसी भी समाज की स्वास्थ्य व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य स्तर से किसी राष्ट्र की प्रगति एवं विकास का आकलन किया जाता है। स्वस्थ माता से ही शिशुओं का शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास होता है अतः एवं शिशु स्वास्थ्य को मानव विकास का प्रमुख संकेतक माना जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार गर्भावस्था, प्रसव एवं प्रसवोत्तर अवधि में महिलाओं को उचित स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराना तथा बच्चों को जन्म से लेकर पांच वर्ष तक समुचित पोषण, टीकाकरण एवं स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है। किसी भी देश की स्वास्थ्य व्यवस्था की गुणवत्ता को उस देश की मातृ एवं

शिशु मृत्यु दर के द्वारा दर्शाया जाता है। भारत में पिछले कुछ दशकों में स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार होने के बावजूद अब भी मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य से संबंधित अनेक समस्याएं विद्यमान है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य एक व्यापक सार्वजनिक स्वास्थ्य दृष्टिकोण है। इसके तहत गर्भावस्था, प्रसव, प्रसवोत्तर अवधि और बच्चे के जन्म के बाद के विकास तक माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य, सुरक्षा, और समग्र कल्याण को बढ़ावा देने वाली गुणवत्तापूर्ण सेवाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

यूनिसेफ द्वारा मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य को ''गर्भावस्था से बाल्यकाल तक सतत देखभाल'' वाली सेवा के रूप में परिभाषित किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य गर्भावस्था, प्रसव, और शैशवावस्था के दौरान माँ और बच्चे के स्वास्थ्य को सुरक्षित रखना और मृत्यु दर को कम करना है।

शोध की आवश्यकता :

भारत सरकार द्वारा मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य में सुधार हेतु अनेक योजनाएं एवं कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, इसके बावजूद ग्रामीण एवं वंचित क्षेत्रों में स्वास्थ्य से संबंधित समस्याएं जैसे कुपोषण, एनीमिया, शिशु मृत्यु, प्रसव संबंधी जटिलताएं तथा स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुंच आज भी समाज के एक बड़े वर्ग को प्रभावित कर रही है। अंतः मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य हेतु संचालित साझा कार्यक्रमों का अध्ययन वर्तमान स्वास्थ्य परिदृश्यों को समझने तथा माता एवं बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार हेतु आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करने की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है।

अध्ययन का उद्देश्य :

1. मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य अवधारणा को समझना।
2. भारत सरकार द्वारा संचालित साझा कार्यक्रमों का अध्ययन करना।
3. योजनाओं की उपलब्धियां एवं चुनौतियां का अध्ययन करना।

शोध पद्धति :

इस शोध पत्र में द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग कर वर्णनात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है। इसमें मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के लिए संचालित प्रमुख साझा कार्यक्रमों के अध्ययन हेतु सरकारी रिपोर्टें एवं वार्षिक प्रतिवेदन, विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं यूनिसेफ की रिपोर्टे, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के विवरण, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की योजनाएं, पुस्तक एवं शोध पत्र, तथा ऑनलाइन आधिकारिक वेबसाइटें का उपयोग किया गया है।

द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर निष्कर्ष –

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य की अवधारणा :

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सार्वजनिक स्वास्थ्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है इसे किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास, मानव संसाधन निर्माण तथा सामाजिक प्रगति में महत्वपूर्ण आधार माना जाता है इसमें महिलाओं एवं बच्चों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा पोषण संबंधी स्वास्थ्य शामिल है। मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य को मानव विकास की आधारशिला माना जाता है क्योंकि स्वस्थ माता ही स्वस्थ शिशु को जन्म देती है।

मातृ स्वास्थ्य से आशय महिलाओं के गर्भावस्था, प्रसव तथा प्रसवोत्तर अवधि के दौरान स्वास्थ्य की सुरक्षा एवं देखभाल से है। इसमें गर्भवती महिलाओं को संतुलित पोषण, नियमित स्वास्थ्य परीक्षण, सुरक्षित प्रसव, आवश्यक चिकित्सकीय सुविधाएं तथा प्रसव के बाद उचित देखभाल प्रदान करना शामिल है।

शिशु स्वास्थ्य का संबंध जन्म से लेकर पांच वर्ष तक के बच्चों के समस्त विकास एवं स्वास्थ्य सुरक्षा से होता है। इसमें नवजात शिशुओं की देखभाल, स्तनपान, टीकाकरण, संतुलित पोषण, संक्रमण से सुरक्षा तथा रोगों के उपचार शामिल है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सुरक्षित मातृत्व एवं शिशु स्वास्थ्य सतत् विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है। सतत् विकास लक्ष्यों का उद्देश्य 2030 तक मातृ मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर में उल्लेखनीय कमी लाना तथा सभी लोगों को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराना है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्रत्येक महिला को सुरक्षित गर्भावस्था एवं प्रसव का अधिकार प्राप्त होना चाहिए तथा प्रत्येक बच्चे को स्वस्थ जीवन एवं उचित पोषण मिलना चाहिए। मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सिर्फ स्वास्थ्य क्षेत्र का विषय नहीं है बल्कि यह एक व्यापक विषय है जिसमें सामाजिक न्याय, मानव विकास एवं राष्ट्र की प्रगति भी शामिल है। क्योंकि स्वास्थ्य माता एवं स्वस्थ शिशु ही एक सशक्त एवं समृद्ध राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

भारत में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य की स्थिति :

पिछले कुछ वर्षों में भारत में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य की स्थिति में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं। भारत सरकार द्वारा संचालित जननी सुरक्षा योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम तथा प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान जैसी योजनाओं के कारण टीकाकरण, संस्थागत प्रसव एवं स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच में वृद्धि हुई है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) के अनुसार संस्थागत प्रसव वर्ष 2005–06 में लगभग 39% था जो बढ़कर 2019–21 में लगभग 89% हो गया। इसी प्रकार मातृ मृत्यु दर वर्ष 2000 में 327 प्रति एक लाख जीवित जन्म से घटकर 2018–20 में 97 रह गए जबकि शिशु मृत्यु दर 68 प्रति 1000 जीवित जन्म से घटकर लगभग 28 रह गई।

सरकारी टीकाकरण कार्यक्रमों एवं पोषण अभियानों के कारण बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है परंतु कुपोषण एवं एनीमिया की समस्या अभी भी गंभीर रूप से बनी हुई है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) के अनुसार 35.5% बच्चे कुपोषण से प्रभावित है तथा लगभग 57% महिलाएं एनीमिया से पीड़ित है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, कम आयु में विवाह और अशिक्षा एवं स्वास्थ्य जागरूकता का अभाव मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य के लिए चुनौती बने हुए हैं, इन समस्याओं के समाधान के लिए आशा कार्यकर्ताओं एवं आंगनबाड़ी सेवाओं के माध्यम से स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुंच बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। हाल के वर्षों से डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं एवं टेलीमेडिसिन के माध्यम से मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत बनाने का प्रयास किया जा रहा है। स्वास्थ्य केंद्रों में प्रसव पूर्व जांच निषेध, ऑनलाइन स्वास्थ्य परामर्श एवं पोषण संबंधी जागरूकता कार्यक्रम के माध्यम से महिलाओं एवं बच्चों तक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच बढ़ी है।

भारत में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य की स्थिति में पहले की तुलना में काफी सुधार हुआ है। संस्थागत प्रसव में वृद्धि, टीकाकरण सेवाओं का विस्तार मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी तथा पोषण कार्यक्रमों के प्रभाव से सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। परंतु आज भी स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता, ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाओं की उपलब्धता, कुपोषण एवं जागरूकता का अभाव जैसी चुनौतियां बनी हुई है। सरकार एवं समाज को मिलकर स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक प्रभावी एवं सुलभ बनाना आवश्यक है ताकि प्रत्येक महिला एवं बच्चों को स्वस्थ

जीवन का अधिकार प्राप्त हो सके।

मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य हेतु संचालित साझा कार्यक्रम :–

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन :

भारत सरकार की प्रमुख स्वास्थ्य योजनाओं में से एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (NHM) है जिसकी शुरुआत भारत सरकार द्वारा मई 2013 में की गई थी। इसके तहत पूर्व में चल रहे राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (12 अप्रैल 2005) और राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (2013 में शुरू) को मिला दिया गया। जिसका मुख्य लक्ष्य ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराना है। इस मिशन के अंतर्गत मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य को प्राथमिकता दी गई है ताकि बच्चों और महिलाओं के स्वास्थ्य स्तर में सुधार किया जा सके। इसके माध्यम से मातृ मृत्यु दर को कम करने, संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देने, शिशु मृत्यु दर को कम करने तथा आम जनता तक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच को व्यापक बनाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाएं चलाई जा रहे है।

जननी सुरक्षा योजना :

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2005 में जननी सुरक्षा योजना की शुरुआत की गई थी। इस योजना का मुख्य लक्ष्य ग्रामीण एवं आर्थिक रूप से कमजोर महिलाओं को संस्थागत प्रसव के लिए प्रोत्साहित करना तथा सुरक्षित मातृत्व को बढ़ावा देना है इसके अंतर्गत आशा कार्यकर्ताओं के माध्यम से गर्भवती महिलाओं का स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच सुनिश्चित किया जाता है तथा उनकी प्रसव हेतु आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। गरीब एवं कमजोर वर्ग की महिलाओं को इसमें विशेष रूप से प्राथमिकता दी जाती है इस योजना के प्रभाव से संस्थागत प्रसव में सराहनीय वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरुप मातृ एवं नवजात मृत्यु दर को कम करने में भी सहायता मिली है।

प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान :

इस योजना को गर्भवती महिलाओं को बेहतर एवं गुणवत्तायुक्त प्रसव पूर्व देखभाल उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 9 जून 2016 से आरंभ किया गया। इसका मुख्य लक्ष्य गर्भावस्था के दौरान गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य की नियमित निगरानी करना तथा संभावित जोखिमों की समय रहते पहचान कर सुरक्षित मातृत्व सुनिश्चित करना है। प्रत्येक माह की 9 तारीख को इस योजना के अंतर्गत गर्भवती महिलाओं के लिए निशुल्क स्वास्थ्य जांच की सुविधा प्रदान की जाती है जिसमें रक्तचाप, वजन, रक्त जांच, शिशु की स्थिति तथा अन्य सहायक चिकित्सकीय परीक्षण शामिल होते हैं। साथ ही, उच्च जोखिम वाली गर्भावस्थाओं की पहचान कर उन्हें विशेषज्ञ चिकित्सकों की देखरेख एवं आवश्यक उपचार उपलब्ध कराया जाता है। अधिक से अधिक महिलाओं तक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच सुनिश्चित करने के उद्देश्य से इस योजना को ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में समान रूप से लागू किया गया है ताकि मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य में सुधार लाया जा सके।

जननी शिशु सुरक्षा योजना :

इस योजना की शुरुआत स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा 1 जून 2011 से की गई। इसका उद्देश्य गर्भवती महिलाओं एवं नवजात शिशुओं को सरकारी स्वास्थ्य संस्थानों में निशुल्क एवं गुणवत्तायुक्त स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराना है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत गर्भवती महिलाओं को बिना किसी शुल्क के प्रसव से संबंधित सभी आवश्यक सुविधाएं प्रदान की जाती हैं जिससे की आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों को स्वास्थ्य सेवाओं

का लाभ आसानी से मिल सके। इस योजना में निशुल्क प्रसव, आवश्यक दवाइयां, चिकित्सकीय जांच, रक्त आपूर्ति की उपलब्धता तथा अस्पताल आने जाने के लिए निशुल्क परिवहन जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं साथ ही नवजात शिशुओं की देखभाल, उपचार एवं आवश्यक स्वास्थ्य सेवाएं भी निशुल्क प्रदान की जाती है। सुरक्षित मातृत्व और शिशु स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए इस कार्यक्रम के माध्यम से विशेष रूप से गरीब एवं ग्रामीण परिवारों को लाभ पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही है।

प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना :

इस योजना की शुरुआत भारत सरकार की महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा 1 जनवरी 2017 से की गई। जिसका उद्देश्य गर्भवती एवं स्तनपान करने वाली महिलाओं को आर्थिक सहायता प्रदान कर उनके स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर में सुधार लाना है। इसका मुख्य लक्ष्य मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य को बेहतर बनाना तथा कुपोषण की समस्या को कम करना है जिसके लिए इसमें महिलाओं को गर्भावस्था एवं प्रसव के दौरान आवश्यक पोषण, पर्याप्त आराम तथा स्वास्थ्य सेवाएं प्राप्त करने के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है। गर्भावस्था के दौरान उनकी नियमित देखभाल सुनिश्चित करने के लिए इस योजना के माध्यम से महिलाओं को प्रसव पूर्व जांच, टीकाकरण एवं अन्य स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति जागरूक भी किया जाता है। आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की महिलाओं के लिए यह योजना बहुत उपयोगी साबित हुई है अतः इससे उन्हें बेहतर पोषण एवं सुरक्षित मातृत्व प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

RMNCAH+N **कार्यक्रम :**

RMNCAH+N (Reproductive, Maternal, Newborn, Child, Adolescent, Health and Nutrition) कार्यक्रम की शुरुआत स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा 2013 में की गई थी। यह एक समग्र स्वास्थ्य कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य महिलाओं, नवजात शिशुओं, बच्चों एवं किशोरों के स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर में सुधार लाना है। हरेक आयु वर्ग को आवश्यक स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करने के उद्देश्य से इस कार्यक्रम के अंतर्गत जीवन चक्र आधारित दृष्टिकोण अपनाया गया है। इस कार्यक्रम में विशेष रूप से प्रजनन स्वास्थ्य, मातृ स्वास्थ्य, नवजात शिशु स्वास्थ्य, बाल स्वास्थ्य, किशोर स्वास्थ्य तथा पोषण सेवाओं को शामिल किया गया है। साथ ही इस कार्यक्रम के माध्यम से सुरक्षित मातृत्व, बच्चों का टीकाकरण, किशोरों में स्वास्थ्य जागरूकता, कुपोषण की रोकथाम तथा आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच को आसान बनाने का प्रयास किया जाता है तथा इसके माध्यम से शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता एवं उपलब्धता में सुधार लाने पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

योजनाओं की उपलब्धियां :

द्वितीयक आंकड़ों व तथ्यों से ज्ञात हुआ है कि –

1. संस्थागत प्रसंग में वृद्धि हुई है।
2. मातृ मृत्यु दर में कमी आई है।
3. शिशु मृत्यु दर में सुधार हुआ है।
4. टीकाकरण सेवाओं का विस्तार हुआ है।
5. ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य जागरूकता बड़ी है।
6. आशा एवं आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं की भूमिका मजबूत हुई है।

प्रमुख चुनौतियां :

द्वितीयक तथ्य से ज्ञात हुआ है कि–

1. आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी है।
2. आज भी प्रशिक्षित चिकित्सको एवं नर्सों की कमी है विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में।
3. वर्तमान समय में भी समाज में कुपोषण एवं शिक्षा की समस्या बनी हुई है।
4. अभी भी प्रसवोंत्तर महिलाओं की उचित देखभाल में कमी पाई जाती है।
5. वर्तमान समय में भी स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता एवं पहुंच में असमानता देखने को मिलती है।
6. समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं जागरूकता की कमी आज भी एक प्रमुख समस्या बनी हुई है।
7. वर्तमान समय में प्रसवोत्तर मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओ एवं उच्च जोखिम वाली गर्भावस्थाओं को गंभीर चुनौती माना गया है।

निष्कर्ष :

भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था को मजबूत बनाने में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य हेतु संचालित साझा कार्यक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी लाने में जननी सुरक्षा योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान, प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना तथा RMNCAH+N जैसे कार्यक्रमों ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। इसके बावजूद अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में कुपोषण एवं जागरूकता का अभाव, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी जैसी समस्याएं मौजूद है। यदि योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाए तथा स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच अंतिम व्यक्ति तक सुनिश्चित की जाए तो मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य में और अधिक सुधार संभव है।

सुझाव :

1. ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य बुनियादी ढांचों को मजबूत किया जाए।
2. मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों को प्रभावी बनाया जाए।
3. स्वास्थ्य कर्मियों को सतत् प्रशिक्षण दिया जाए।
4. प्रसव पूर्व एवं प्रसवोंत्तर देखभाल पर विशेष ध्यान दिया जाए।
5. स्वास्थ्य जागरूकता अभियान चलाया जाए विशेषकर ग्रामीण इलाकों में।
6. डिजिटल स्वास्थ्य सेवाओं एवं टेली मेडिसिन का विस्तार किया जाए।

सन्दर्भ सूची :

1. उद्दीन, एन., एवं कादरी, एम. एच. (2024). राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन का मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं पर प्रभाव : एक बहुस्तरीय मिश्रित विश्लेषण। विजन : द जर्नल ऑफ बिजनेस पर्सपेक्टिव, अग्रिम ऑनलाइन प्रकाशन।
2. दृष्टि आईएएस। (फरवरी, 2021)। प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना 2.0। https://www.drishtiias.com/hindi/daily&news&analysis/
3. गुप्ता, एम., बोस्मा, एच., एंजेली, और अन्य (2017). हरियाणा, भारत में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य असमानताओं को कम करने हेतु बहु–रणनीतिक राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम के प्रदर्शन का मूल्यांकन : एक मिश्रित विधि अध्ययन। बीएमसी पब्लिक हेल्थ।

4. प्रेस सूचना ब्यूरो। (दिसंबर, 2024)। मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य संबंधी प्रेस विज्ञप्ति। https://www.pib.gov.in/PressNoteDetails.aspx\
5. पार्क, के. (2023). पार्क्स टेक्स्टबुक ऑफ प्रिवेंटिव एंड सोशल मेडिसिन (27वाँ संस्करण). बनारसीदास भनोट पब्लिशर्स।
6. राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन। (मई, 2021)। आशा कार्यक्रम। https://nhm.gov.in/index.php/communitisation/asha/index4.php\
7. राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन। (मई, 2025)। जननी सुरक्षा योजना (JSY) A https://nhm.gov.in/nhm_live/index1.php\
8. लाल, एस., आदर्श, एवं पंकज. (2024). टेक्स्टबुक ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन : प्रिवेंटिव एंड सोशल मेडिसिन (8वाँ संस्करण). सीबीएस पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
9. राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन। (मई, 2026)। आरएमएनसीएच़ए (RMNCH+A) रणनीति। https://www.nhm.gov.in/index1.php\lang/1&level/1&lid
10. संयुक्त राष्ट्र बाल कोष (यूनिसेफ)। (मई, 2024)। मातृ एवं नवजात स्वास्थ्य। https://www.unicef.org/health/maternal&and&newborn&health
11. बसवन्तप्पा, बी. टी. (2018). कम्युनिटी हेल्थ नर्सिंग (3रा संस्करण). जयपी ब्रदर्स मेडिकल पब्लिशर्स।
12. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार। (मई, 2025)। प्रजनन एवं शिशु स्वास्थ्य (RCH) पोर्टल। https://rch.mohfw.gov.in/RCH/

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 149-151

मीडिया और जनसंचार का साहित्यिक महत्व

डॉ. मो. रियाज खान
बी. एम. एम. महिला महाविद्यालय, बेंगलुरु।

सारांश :

जनसंचार और मीडिया आधुनिक युग के सबसे शक्तिशाली माध्यम हैं, जो न केवल सूचना का आदान–प्रदान करते हैं बल्कि साहित्यिक अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक संरक्षण और सामाजिक परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक डिजिटल युग तक, संचार की प्रक्रिया ने साहित्य को नई दिशाएं दी हैं। यह शोध पत्र अरस्तू के रेटोरिक सिद्धांतों, भारतीय पौराणिक संचार परंपरा, हरित क्रांति और परिवार नियोजन जैसे अभियानों के माध्यम से जनसंचार के साहित्यिक महत्व को विश्लेषित करता है। साथ ही, यह चर्चा करता है कि कैसे मीडिया साहित्यिक भाषा को लोकप्रिय बनाता है और जनमानस को आकार देता है।

प्रस्तावना :

संसार में संचार की शुरुआत मानव सभ्यता की उत्पत्ति के साथ हुई मानी जाती है। जब से जीवों ने एक–दूसरे से संपर्क स्थापित किया, संचार की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। प्राचीन ग्रंथों में संचार के विविध रूपों और सिद्धांतों का उल्लेख मिलता है, जिन पर आज भी विद्वान शोध कर रहे हैं। जनमत निर्माण में जनमाध्यमों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैसा कि एक विचार में कहा गया है, "जनमत–संग्रह नये संविधान के निर्माण, वर्तमान संविधान में संशोधन... से संबंधित हो सकता है। यह प्रत्यक्ष लोकतंत्र का एक रूप है।"

जनसंचार न केवल सूचनाओं का आदान–प्रदान है, बल्कि यह साहित्यिक रचनात्मकता का भी वाहक है। साहित्य भाषा की सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति है, जबकि मीडिया उसे व्यापक जनसमूह तक पहुंचाता है। इस प्रकार, दोनों का अंतर्संबंध साहित्यिक महत्व को गहराई प्रदान करता है।

सैद्धांतिक आधार : अरस्तू का रेटोरिक :

हजारों वर्ष पूर्व ग्रीस के महान दार्शनिक अरस्तू ने अपनी कृति 'रेटोरिक' में संचार की प्रक्रिया को विस्तार से समझाया। रेटोरिक अर्थात भाषण की कला। अरस्तू के अनुसार, प्रभावी संचार के तीन प्रमुख तत्व हैं– ''पैथोस, इथोस और लोगोस''।

- **पैथोस :** इसका अर्थ भावनात्मक अपील से है। वक्ता यदि श्रोताओं के मन में दुःख, आनंद या अन्य भावनाएं जगाए, तो संदेश का प्रभाव गहरा होता है। आज के मीडिया में विज्ञापनों और ड्रामों में इस तत्व का खूब उपयोग देखा जाता है।
- **इथोस :** विश्वसनीयता। वक्ता का चरित्र और आचरण ही उसके संदेश को प्रामाणिक बनाता है। समाचार चैनलों के एंकरों की साख इसी पर टिकी होती है।

– **लोगोस :** तार्किक तर्क। बिना तर्क के संदेश अधूरा रहता है।

इन सिद्धांतों ने आधुनिक जनसंचार को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। एमर के अनुसार, "संचार सूचना, आदर्शों और अभिव्यक्तियों को एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुंचाने की कला है।" पॉल लीगन्स कहते हैं कि संचार वह प्रक्रिया है जिसमें विचारों का विनिमय होता है और प्राप्तकर्ता संदेश को पूर्णतः समझ लेता है।

भारतीय परंपरा में जनसंचार :

भारत में जनसंचार की जड़ें अत्यंत प्राचीन हैं। देवर्षि नारद को प्रथम समाचार वाचक माना जाता है, जो धरती और स्वर्ग के बीच संवाद स्थापित करते थे। महाभारत में संजय का चरित्र 'जीवंत प्रसारण' का प्रतीक है, जो धृतराष्ट्र को युद्ध का वर्णन सुनाते हैं। कबीर, सूरदास जैसे संत–कवियों की वाणी जनसंचार का माध्यम बनी। तमाशा, नौटंकी, जात्रा और बाउल जैसे लोक नाट्य रूपों ने मनोरंजन के साथ सामाजिक संदेश पहुंचाए।

स्वतंत्रता के बाद, भारत की चुनौतियां 'भुखमरी, जनसंख्या वृद्धि और रोग' को दूर करने में जनमाध्यमों ने अग्रणी भूमिका निभाई। हरित क्रांति इसका ज्वलंत उदाहरण है। 1960 के दशक में खाद्यान्न की कमी से जूझ रहे भारत ने रेडियो, समाचार पत्रों और 'इंडियन फार्मिंग' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से किसानों तक नई तकनीक, बीज और उर्वरक की जानकारी पहुंचाई। प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने कहा था कि इस पत्रिका से कृषकों तक नूतन तरीके पहुंचेंगे और पैदावार बढ़ेगी।

"जय जवान, जय किसान" के नारे के साथ योजनाएं शुरू हुईं। परिणामस्वरूप, भारत भुखमरी से उबरा। इसी प्रकार, "हम दो, हमारे दो" अभियान ने परिवार नियोजन को लोकप्रिय बनाया। पल्स पोलियो अभियान में फिल्मी सितारों के "दो बूंद जिंदगी के" जैसे नारों ने पूरे देश को जागरूक किया, और आज भारत पोलियो मुक्त है। इन अभियानों में जनसंचार ने साहित्यिक भाषा 'सरल, प्रभावी और लोकभाषा' का उपयोग कर जनमानस को छुआ।

जनसंचार और साहित्यिक महत्व :

जनसंचार साहित्य से भिन्न है, लेकिन दोनों एक–दूसरे को समृद्ध करते हैं। संचार व्यक्तिगत (जैसे टेलीफोन) होता है, जबकि जनसंचार सामूहिक (रेडियो, टीवी)। गिब्ज के अनुसार, जनसंचार सामूहिकता से प्रभावित अभिव्यक्ति है। पील कहते हैं कि यह जनमत को प्रभावित करने का माध्यम है।

साहित्यिक दृष्टि से, मीडिया ने हिंदी को लोकप्रिय बनाया। समाचार पत्रों, रेडियो नाटकों, दूरदर्शन धारावाहिकों और अब डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने साहित्यिक रचनाओं को नई पहुंच दी। प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद जैसी रचनाओं के रूपांतरण ने साहित्य को जन–जन तक पहुंचाया। लघु पत्रकारिता ने साहित्यिक संचार को नई दिशा दी।

आज सोशल मीडिया, यूट्यूब और ओटीटी प्लेटफॉर्म्स साहित्यिक चर्चाओं, कवि सम्मेलनों और कहानियों का विस्तार कर रहे हैं। मीडिया भाषा को सरल बनाता है, लेकिन कभी–कभी सनसनीखेजता साहित्यिक गहराई को चुनौती देती है। फिर भी, इसका सकारात्मक पक्ष 'जागरूकता, सांस्कृतिक एकीकरण और लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रसार' अधिक है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य :

विदेशों में भी जनसंचार की महत्ता स्पष्ट है। अमेरिका के राष्ट्रपति थॉमस जेफरसन ने 1787 में लिखा : "हमारी सत्ताओं का आधार लोकमत है... यदि मुझसे पूछा जाए कि सरकार रहित समाचार पत्र या समाचार पत्र

रहित सरकार, तो मैं निःसंकोच कहूंगा कि शासनसत्ता से रहित समाचार पत्रों का प्रकाशन मुझे स्वीकार है।"

एडमंड बर्क और मैकाले ने समाचार पत्रों को "चतुर्थ स्तंभ" कहा। ये उदाहरण दर्शाते हैं कि मीडिया लोकतंत्र का चौकीदार है और साहित्यिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का रक्षक भी।

निष्कर्ष :

मीडिया और जनसंचार का साहित्यिक महत्व अतुलनीय है। यह न केवल सूचना पहुंचाता है, बल्कि भावनाओं, विचारों और सांस्कृतिक मूल्यों को आकार देता है। भारतीय संदर्भ में, यह विकास, जागरूकता और एकता का साधन सिद्ध हुआ है। भविष्य में डिजिटल मीडिया को साहित्यिक गरिमा बनाए रखते हुए उपयोग करना होगा, ताकि यह जनहित और सृजनात्मकता दोनों को बढ़ावा दे।

विद्वानों को इस अंतर्संबंध पर और गहन शोध की आवश्यकता है, जिससे साहित्य और मीडिया का स्वस्थ विकास हो सके।

संदर्भ :

1. testbook.com (जनमत संबंधी)
2. एमर और लीगन्स की परिभाषाएं।
3. अरुण कुमार, 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा', पृ. 391।
4. महिपाल, "कृषि पत्रकारिता के आयाम", जनसत्ता, 5 जून 2016।
5. Wikipedia और अन्य स्रोत : Mass Media in India।
6. जेफरसन उद्धरण, 1787

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 152-158

Education as Cultural Capital : Revisiting Bourdieu in Contemporary South Asia

Dr. Ruqqia Hashmi
Assistant Professor, Department of Sociology,
Anjuman Arts, Science and Commerce College, Vijayapur, Karnataka, India.

Abstract :

Education is widely regarded as a vehicle for social mobility and economic advancement. However, sociological scholarship has consistently demonstrated that educational institutions often reproduce existing social inequalities rather than eliminate them. Pierre Bourdieu's theory of cultural capital remains one of the most influential frameworks for understanding the relationship between education and social stratification. This paper revisits Bourdieu's concept of cultural capital in the context of contemporary South Asia, examining how educational systems continue to privilege certain forms of knowledge, language, skills, and cultural dispositions. Drawing upon Bourdieu's concepts of cultural capital, habitus, field, and symbolic violence, the paper argues that educational success is not determined solely by merit or individual effort but is significantly influenced by access to cultural resources inherited through family and social background. The discussion further explores emerging forms of digital cultural capital that have become increasingly important in the twenty-first century. The paper concludes that despite significant educational expansion across South Asia, inequalities rooted in class, gender, language, and digital access continue to shape educational outcomes. Revisiting Bourdieu's framework provides valuable insights into the persistence of educational inequality and the reproduction of social stratification in contemporary societies.

Keywords : Cultural Capital, Education, Social Stratification, Bourdieu, South Asia, Educational Inequality

Introduction :

Education occupies a central position in modern societies. It is often viewed as a pathway to social mobility, economic development, and personal advancement. Governments across South Asia have invested heavily in expanding educational opportunities through universal schooling, higher education institutions, scholarship programs, and digital learning initiatives. Rising literacy rates and increasing enrolment figures are frequently cited as indicators of social progress and development.

Despite these achievements, educational inequality remains a persistent challenge. Access to quality education, academic achievement, and educational outcomes continue to vary significantly across different social groups. Students from privileged socioeconomic backgrounds generally perform better academically and enjoy greater access to higher education and professional opportunities than their less privileged counterparts. Such disparities raise important sociological questions regarding the role of education in reproducing social inequality.

Traditional functionalist perspectives view education as a meritocratic institution that rewards talent and effort. However, critical sociologists argue that educational systems often reinforce existing power structures and social hierarchies. Among the most influential scholars in this tradition is Pierre Bourdieu, whose theory of cultural capital provides a powerful explanation of how educational institutions contribute to the reproduction of social stratification.

This paper revisits Bourdieu's theory in the context of contemporary South Asia. It argues that educational success is closely linked to unequal access to cultural resources and that educational institutions frequently privilege the cultural norms and practices of dominant social groups. Furthermore, the paper explores how digital technologies have created new forms of cultural capital that increasingly influence educational opportunities and outcomes.

Bourdieu's Theory of Cultural Capital :

Pierre Bourdieu developed the concept of cultural capital to explain how social inequalities are reproduced across generations. According to Bourdieu (1986), capital extends beyond economic resources and includes cultural assets that provide advantages within society. Cultural capital refers to knowledge, skills, language, values, and cultural competencies that individuals acquire through socialization.

Bourdieu identified three forms of cultural capital.

Embodied Cultural Capital :

Embodied cultural capital consists of dispositions, attitudes, language skills, and cultural knowledge acquired through family upbringing and social experiences. These competencies become internalized and influence how individuals think, communicate, and interact within educational settings.

Students from educated and economically privileged families often possess linguistic abilities, communication styles, and cultural knowledge that align closely with school expectations. Consequently, they are better equipped to navigate educational institutions successfully.

Objectified Cultural Capital :

Objectified cultural capital refers to material cultural resources such as books, computers, educational materials, and access to learning environments. Ownership and access to such resources significantly influence educational opportunities and academic performance.

Institutionalized Cultural Capital :

Institutionalized cultural capital includes educational qualifications, degrees, diplomas, and certifications recognized by society. These credentials provide legitimacy and facilitate access to employment and social status.

Bourdieu argued that these forms of capital interact to reproduce social inequalities. Educational institutions often reward students who already possess the cultural resources valued by dominant social groups, thereby reinforcing existing social hierarchies.

Habitus, Field, and Educational Success :

Bourdieu's concepts of habitus and field complement his theory of cultural capital.

Habitus :

Habitus refers to the internalized dispositions, values, attitudes, and perceptions acquired through socialization. It shapes how individuals understand the world and respond to different situations.

Family background plays a crucial role in shaping habitus. Children raised in households where reading, intellectual discussion, and academic achievement are encouraged often develop educational aspirations and learning habits that facilitate success in school.

In contrast, students from disadvantaged backgrounds may encounter educational environments that differ significantly from their everyday experiences. This mismatch can create challenges in adapting to institutional expectations.

Field :

Field refers to the social spaces within which individuals compete for resources, recognition, and status. Educational institutions constitute a field characterized by specific rules, norms, and power relations.

Within the educational field, certain forms of cultural capital are valued more highly than others. Language proficiency, academic communication skills, and familiarity with dominant cultural norms often provide significant advantages.

Educational success therefore depends not only on intelligence or effort but also on the possession of valued forms of capital within the educational field.

Education and the Reproduction of Social Inequality :

One of Bourdieu's most significant contributions lies in demonstrating how educational institutions contribute to the reproduction of social inequality.

Schools are frequently presented as neutral and meritocratic institutions. However, Bourdieu argued that they often privilege the culture of dominant social groups while presenting it as universal and legitimate. Students possessing the appropriate cultural capital are therefore more likely to succeed.

This process occurs through what Bourdieu termed symbolic violence. Symbolic violence refers to the subtle imposition of dominant cultural values and norms in ways that appear natural and legitimate. Educational institutions rarely acknowledge that certain students possess cultural advantages before entering school.

Consequently, academic success is often attributed to individual merit rather than unequal access to cultural resources. This obscures the role of social inequality in shaping educational outcomes.

In South Asia, educational inequalities frequently reflect broader social divisions related to class, caste, gender, language, and location. Elite private schools often provide superior resources, infrastructure, and opportunities compared to government schools serving economically disadvantaged populations. Such disparities contribute to unequal educational outcomes and reinforce social stratification.

Cultural Capital in Contemporary South Asia :

The relevance of Bourdieu's theory remains evident across contemporary South Asia. Despite significant educational expansion, access to quality education remains unevenly distributed.

Class and Educational Inequality :

Socioeconomic status continues to influence educational opportunities. Families with greater financial resources can invest in private schooling, coaching classes, educational technology, and extracurricular activities. These investments enhance the cultural capital available to their children. Students from lower-income families often face constraints related to educational resources, learning environments, and academic support, limiting their educational prospects.

Language as Cultural Capital :

Language remains a powerful form of cultural capital in South Asia. Proficiency in English frequently provides access to prestigious educational institutions and professional opportunities. Students educated in English-medium schools generally enjoy advantages within higher education and labor markets.

Conversely, students educated primarily in regional languages may encounter barriers despite possessing academic abilities. Language thus functions as a mechanism through which educational inequalities are reproduced.

Gender and Cultural Capital :

Gender inequalities continue to shape educational experiences. Although female enrolment has improved significantly, disparities persist regarding access to higher education, professional courses, and leadership opportunities.

Cultural expectations concerning gender roles influence educational aspirations and

opportunities. As a result, educational outcomes often reflect broader patterns of gender inequality within society.

Urban-Rural Disparities :

Urban students generally benefit from superior educational infrastructure, technological resources, and access to qualified teachers. Rural students often face limitations in educational facilities and learning opportunities.

These disparities demonstrate how geographical location influences the acquisition and utilization of cultural capital.

Digital Cultural Capital and Educational Transformation :

The rapid expansion of digital technologies has introduced new dimensions to cultural capital. Digital literacy, technological skills, and access to online resources have become increasingly important determinants of educational success.

The COVID-19 pandemic highlighted the significance of digital cultural capital. Students possessing computers, smartphones, reliable internet connectivity, and digital competencies were better positioned to participate in online learning. Those lacking such resources experienced significant educational disruptions.

Digital cultural capital includes :

- Digital literacy and technological competence.
- Access to computers and internet services.
- Familiarity with online learning platforms.
- Ability to evaluate and utilize digital information effectively.

These competencies increasingly influence academic achievement and future employment opportunities. Consequently, digital inequalities risk reinforcing existing educational disparities.

Bourdieu's framework remains valuable because it helps explain how technological resources become integrated into broader systems of social inequality. Digital capital is not distributed equally, and access often reflects existing socioeconomic advantages.

Critical Reflections on Bourdieu :

While Bourdieu's theory remains highly influential, scholars have raised several criticisms. First, critics argue that the theory may overemphasize social reproduction and underestimate individual agency. Educational institutions can also provide opportunities for social mobility and transformation. Second, cultural capital may take diverse forms across different cultural contexts. The theory was developed primarily within Western societies and may require adaptation when applied to South Asian contexts characterized by linguistic, cultural, and social diversity. Third, globalization and digitalization have transformed educational landscapes in ways not fully anticipated by Bourdieu. New forms of

cultural capital continue to emerge, requiring ongoing theoretical refinement.

Nevertheless, Bourdieu's framework remains one of the most powerful tools for understanding educational inequality and social stratification.

Conclusion :

Pierre Bourdieu's theory of cultural capital continues to offer valuable insights into the relationship between education and social inequality in contemporary South Asia. Educational success is shaped not only by individual talent and effort but also by access to cultural resources transmitted through family and social background.

The concepts of cultural capital, habitus, field, and symbolic violence illuminate how educational institutions contribute to the reproduction of social stratification. Class, language, gender, and geographical location continue to influence educational opportunities and outcomes across South Asia.

The emergence of digital cultural capital has introduced new dimensions to educational inequality. Access to technology, digital literacy, and online learning resources increasingly determine academic success and future opportunities. Consequently, efforts to promote educational equity must address both traditional and digital forms of inequality.

Revisiting Bourdieu in the South Asian context demonstrates that education remains deeply intertwined with broader social structures. Achieving genuine educational equality requires not only expanding access but also addressing the unequal distribution of cultural resources that shape educational success.

References :

- Bourdieu, P. (1984). Distinction: A Social Critique of the Judgement of Taste. Harvard University Press.
- Bourdieu, P. (1986). The forms of capital. In J. Richardson (Ed.), Handbook of Theory and Research for the Sociology of Education (pp. 241–258). Greenwood Press.
- Bourdieu, P., & Passeron, J. C. (1977). Reproduction in Education, Society and Culture. Sage.
- Coleman, J. S. (1988). Social capital in the creation of human capital. American Journal of Sociology, 94, S95–S120.
- Lareau, A. (2011). Unequal Childhoods: Class, Race, and Family Life. University of California Press.
- Sen, A. (1999). Development as Freedom. Oxford University Press.
- Swartz, D. (2013). Culture and Power: The Sociology of Pierre Bourdieu. University of Chicago Press.

- Van Dijk, J. (2020). The Digital Divide. Polity Press.
- Wacquant, L. (2016). A concise genealogy and anatomy of habitus. The Sociological Review, 64(1), 64–72.
- Warschauer, M. (2004). Technology and Social Inclusion: Rethinking the Digital Divide. MIT Press.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 159-166

किशोरों में नशा व्यसन के प्रभाव का एक अध्ययन : पूर्वांचल क्षेत्र के संदर्भ में

समीक्षा झा, शोधार्थी,
प्रो. चंद्रशेखर सिंह
समाज कार्य विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

सारांश :

प्रस्तुत शोध अध्ययन उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल क्षेत्र (विशेषकर वाराणसी, सोनभद्र और मिर्जापुर) में किशोरों और युवाओं पर नशा व्यसन के बहुआयामी प्रभावों का विश्लेषण करने के उद्देश्य से किया गया है। यह अध्ययन मुख्य रूप से वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है, जिसके अंतर्गत प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों से तथ्य संकलन कर उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति द्वारा 17 से 25 वर्ष की आयु वर्ग के 50 युवाओं के प्रतिदर्श का सर्वेक्षण किया गया। शोध के निष्कर्षों से यह चिंताजनक तथ्य सामने आया है कि लक्षित समूह के 70% युवा सक्रिय रूप से नशा व्यसन के शिकार हैं, जिनमें सर्वाधिक 60% भागीदारी 22–25 वर्ष के युवाओं की है। भौगोलिक दृष्टि से यह संकट ग्रामीण क्षेत्रों 90% में अत्यधिक गहरा है और जिलावार विश्लेषण में मिर्जापुर 72% सबसे अधिक प्रभावित पाया गया है। शैक्षणिक स्तर पर एक बड़ा विरोधाभास देखा गया कि नशे की चपेट में आए युवाओं में 60% स्नातकोत्तर स्तर के उच्च शिक्षित युवा हैं। मादक पदार्थों में बीड़ी/सिगरेट का प्रचलन सर्वाधिक 50% है, और युवाओं में इस लत की शुरुआत का मुख्य कारण जिज्ञासा 50% तथा मनोरंजन 40% पाया गया। इस व्यसन के दुष्परिणामस्वरूप 40% युवा अनिद्रा और 30% तीव्र मानसिक तनाव जैसी स्वास्थ्य समस्याओं से ग्रसित हैं, जबकि केवल 50% युवाओं को ही इसके वास्तविक वैज्ञानिक दुष्प्रभावों का ज्ञान है। अतः निष्कर्षतः स्पष्ट है कि पूर्वांचल में किशोरों को इस जाल से निकालने के लिए सामाजिक नियंत्रण को मजबूत करने, स्कूलों–कॉलेजों में अनिवार्य परामर्श सेवाएं प्रदान करने और ग्रामीण स्तर पर नशा मुक्ति केंद्रों के विस्तार की तत्काल आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : नशा व्यसन, किशोरावस्था, पूर्वांचल, सहकर्मी दबाव, मानसिक निर्भरता, सामाजिक विघटन, निकासी लक्षण (Withdrawal Symptoms), अनिद्रा, अवसाद।

1. परिचय :

मानव जीवन में किशोरावस्था एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील अवस्था मानी जाती है। यह वह काल होता है जब बालक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा भावनात्मक रूप से तीव्र परिवर्तन से गुजरता है। इस अवस्था में व्यक्तित्व निर्माण, व्यवहारिक विकास तथा सामाजिक अनुकूलन की प्रक्रिया चलती रहती है। यदि इस समय किशोर को उचित मार्गदर्शन, सकारात्मक वातावरण एवं सामाजिक सहयोग प्राप्त न हो, तो वह अनेक

सामाजिक बुराइयों की ओर आकर्षित हो सकता है। वर्तमान समय में किशोरों के समक्ष सबसे गंभीर समस्याओं में से एक समस्या नशा व्यसन की है। नशा व्यसन केवल एक व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा स्वास्थ्य संबंधी गंभीर चुनौती बन चुका है। आज के बदलते सामाजिक परिवेश, आधुनिक जीवनशैली, बढ़ती प्रतिस्पर्धा, बेरोजगारी, पारिवारिक विघटन तथा गलत संगति के कारण किशोर तेजी से नशीले पदार्थों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। प्रारंभ में किशोर जिज्ञासा, मनोरंजन अथवा मित्रों के दबाव में नशे का सेवन शुरू करते हैं, लेकिन धीरे–धीरे यह आदत उनकी निर्भरता बन जाती है। परिणामस्वरूप उनका मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य प्रभावित होने लगता है तथा वे सामाजिक असामान्यता और अपराध की ओर अग्रसर होने लगते हैं। भारत जैसे विकासशील देश में नशा व्यसन की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। विशेष रूप से युवाओं और किशोरों में शराब, तंबाकू, गुटखा, बीड़ी, सिगरेट, गांजा, भांग, स्मैक तथा अन्य मादक पदार्थों का सेवन चिंताजनक रूप से बढ़ा है। यह समस्या ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में समान रूप से दिखाई देती है। सामाजिक वैज्ञानिकों के अनुसार नशा व्यसन केवल स्वास्थ्य को प्रभावित नहीं करता, बल्कि यह परिवार, समाज एवं राष्ट्र की प्रगति में भी बाधक सिद्ध होता है।

पूर्वांचल क्षेत्र, जो उत्तर प्रदेश का सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भाग है, वर्तमान समय में अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना कर रहा है। इस क्षेत्र में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, पलायन, श्रमिक जीवन, पारिवारिक तनाव तथा सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ व्यापक रूप से मौजूद हैं। इन परिस्थितियों का सीधा प्रभाव किशोरों पर पड़ता है। पूर्वांचल के जिलों जैसे वाराणसी, सोनभद्र, मिर्जापुर में किशोरों के बीच नशे की बढ़ती प्रवृत्ति सामाजिक चिंता का विषय बनती जा रही है। विशेषकर सोनभद्र जैसे औद्योगिक एवं खनन क्षेत्रों में श्रमिक वर्ग के बीच शराब एवं तंबाकू का सेवन सामान्य माना जाता है। किशोर अपने परिवार एवं आसपास के वातावरण से प्रभावित होकर इन आदतों को अपनाने लगते हैं।

दूसरी ओर शहरी क्षेत्रों में आधुनिकता, सोशल मीडिया, फिल्मों तथा मित्र समूहों के प्रभाव से किशोर विभिन्न प्रकार के नशीले पदार्थों का सेवन करने लगते हैं। यह प्रवृत्ति धीरे–धीरे उनके व्यवहार, शिक्षा तथा सामाजिक संबंधों को प्रभावित करती है। नशा व्यसन के कारण किशोरों के जीवन में अनेक नकारात्मक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। शारीरिक रूप से उनमें कमजोरी, अनिद्रा, भूख की कमी, स्मरण शक्ति में गिरावट तथा गंभीर बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। मानसिक स्तर पर तनाव, अवसाद, आक्रामकता, चिड़चिड़ापन तथा आत्मविश्वास में कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। शैक्षिक दृष्टि से उनकी पढ़ाई प्रभावित होती है, विद्यालय में अनुपस्थिति बढ़ती है तथा कई किशोर शिक्षा छोड़ने तक के लिए मजबूर हो जाते हैं। सामाजिक दृष्टि से नशा व्यसन किशोरों को अपराध, हिंसा, चोरी, झगड़े तथा असामाजिक गतिविधियों की ओर ले जा सकता है।

समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि किशोरों में नशा व्यसन के पीछे अनेक कारण कार्य करते हैं। इनमें पारिवारिक विघटन, माता–पिता की उपेक्षा, आर्थिक अभाव, बेरोजगारी, गलत संगति, सामाजिक दबाव तथा मानसिक तनाव प्रमुख हैं। कई बार किशोर स्वयं को आधुनिक एवं प्रभावशाली दिखाने के लिए भी नशे का सेवन करने लगते हैं। इसके अतिरिक्त मनोरंजन के सीमित साधन, खेल–कूद की कमी तथा उचित परामर्श का अभाव भी इस समस्या को बढ़ावा देता है।

वर्तमान समय में सरकार एवं विभिन्न सामाजिक संस्थाओं द्वारा नशा मुक्ति अभियान चलाए जा रहे हैं, फिर भी किशोरों में नशा व्यसन की समस्या लगातार बढ़ रही है। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में जागरूकता कार्यक्रमों

की कमी, परिवार की उदासीनता तथा सामाजिक नियंत्रण के कमजोर होने के कारण यह समस्या गंभीर रूप धारण करती जा रही है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि किशोरों में नशा व्यसन के कारणों एवं उसके प्रभावों का गहन अध्ययन किया जाए, ताकि इस समस्या के समाधान हेतु प्रभावी नीतियाँ एवं कार्यक्रम तैयार किए जा सकें।

प्रस्तुत अध्ययन "किशोरों में नशा व्यसन के प्रभाव का एक अध्ययन रू पूर्वांचल क्षेत्र के संदर्भ में" इसी उद्देश्य से किया जा रहा है। इस अध्ययन के माध्यम से किशोरों में नशा व्यसन के कारणों, उसके सामाजिक, मानसिक, शैक्षिक एवं स्वास्थ्य संबंधी प्रभावों का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही पूर्वांचल क्षेत्र की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में इस समस्या को समझने का प्रयास किया जाएगा, जिससे भविष्य में नशा नियंत्रण एवं किशोर कल्याण संबंधी योजनाओं को अधिक प्रभावी बनाया जा सके।

2. नशा व्यसन : अर्थ, स्वरूप एवं सामाजिक प्रभाव :

इसके अंतर्गत शराब, तंबाकू, बीड़ी–सिगरेट, गुटखा, भांग, गांजा, अफीम, हेरोइन, स्मैक, सिंथेटिक ड्रग्स और चिकित्सकीय दवाओं का अनुचित उपयोग शामिल है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, नशा व्यसन वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति स्पष्ट दुष्प्रभावों के बावजूद मादक पदार्थों के उपयोग को नियंत्रित करने में असमर्थ हो जाता है। किशोरावस्था में भावनात्मक अस्थिरता के कारण यह समस्या अधिक विकराल हो जाती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह लत पारिवारिक विघटन, आर्थिक संकट, अपराध और अकादमिक गिरावट को जन्म देती है। वहीं, स्वास्थ्य के लिहाज से यह कैंसर, हृदय व फेफड़ों के रोग और मानसिक विकारों का मुख्य कारण बनती है। अतः इसे व्यक्तिगत कमजोरी के बजाय एक गंभीर सामाजिक चुनौती मानकर इसके रोकथाम और पुनर्वास का प्रभावी उपाय करना अत्यंत आवश्यक है।

2.1 नशा व्यसन का अर्थ :

नशा व्यसन किसी मादक पदार्थ या नशीली दवा पर शारीरिक और मानसिक निर्भरता की वह स्थिति है, जो केवल एक बुरी आदत न होकर गंभीर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और स्वास्थ्य संबंधी समस्या है। प्रारंभ में जिज्ञासा, मनोरंजन, सहकर्मी दबाव, फैशन या तनाव मुक्ति के लिए शुरू की गई यह आदत धीरे–धीरे व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है, जिससे वह अपने व्यवहार और दैनिक जीवन पर नियंत्रण खो बैठता है। इस व्यसन को मुख्यतः दो प्रकार की निर्भरता से समझा जा सकता है :

2.1.1 मानसिक निर्भरता : जब व्यक्ति तनाव, चिंता या अवसाद से बचने के लिए नशे को ही एकमात्र सहारा मान लेता है और उसके सेवन की तीव्र इच्छा महसूस करता है।

2.1.2 शारीरिक निर्भरता : जब शरीर मादक पदार्थ का आदि हो जाता है और नशा न मिलने पर कंपकंपी, पसीना, उल्टी, बेचैनी और शारीरिक कमजोरी जैसे 'निकासी लक्षण' (Withdrawal Symptoms) दिखाने लगता है।

2.2 किशोर की परिभाषा :

2.2.1 विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार : 10 से 19 वर्ष की आयु के व्यक्तियों को "किशोर" कहा जाता है। यह अवस्था बाल्यावस्था और युवावस्था के बीच की संक्रमणकालीन अवधि होती है, जिसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है। इस अवधि में व्यक्ति अपनी पहचान, सोच, व्यवहार और व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

2.2.2 भारतीय संविधान एवं भारतीय कानूनों के अनुसार किशोर कि परिभाषा :

2.2.2.1 भारतीय संविधान के अनुसार : भारतीय संविधान में 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को सामान्यतः "बालक/बालिका" (Child) की श्रेणी में माना गया है। संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खतरनाक उद्योगों में कार्य कराने पर प्रतिबंध लगाया गया है। वहीं शिक्षा का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार दिया गया है।

2.2.2.2 किशोर न्याय अधिनियम (Juvenile Justice Act), 2015 के अनुसार : 18 वर्ष से कम आयु के प्रत्येक व्यक्ति को "बालक" (Child) माना गया है। इस अधिनियम में "किशोर" शब्द का प्रयोग विशेष रूप से ऐसे बालकों के लिए किया जाता है जो कानून के उल्लंघन से संबंधित मामलों में शामिल पाए जाते हैं।

3. अध्ययन के उद्देश्य :

3.1 किशोरों में नशा व्यसन के प्रमुख कारणों का अध्ययन करना।

3.2 नशा व्यसन के शारीरिक एवं मानसिक प्रभावों का विश्लेषण करना।

3.3 किशोरों के शैक्षिक एवं सामाजिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।

3.4 पूर्वांचल क्षेत्र में नशा नियंत्रण हेतु उपाय सुझाना।

4. परिकल्पना :

4.1 गलत संगति किशोरों में नशा व्यसन को बढ़ावा देती है।

4.2 नशा व्यसन किशोरों के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

4.3 पारिवारिक तनाव एवं आर्थिक समस्याएँ नशा सेवन की प्रवृत्ति को बढ़ाती हैं।

5. साहित्य समीक्षा :

प्रस्तुत शोध अध्ययन "किशोरों में नशा व्यसन के प्रभाव का एक अध्ययन : पूर्वांचल क्षेत्र के संदर्भ में" की वैचारिक पृष्ठभूमि को सुदृढ़ करने और शोध अंतराल को समझने के लिए संबंधित विषयों पर पूर्व में किए गए सिद्धांतों, अध्ययनों और सरकारी दास्तावेजों की समीक्षा निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत की गई है :

5.1 मानसिक एवं शारीरिक निर्भरता :

5.1.1 विश्व स्वास्थ्य संगठन (2018) : डब्ल्यूएचओ के अनुसार, नशा व्यसन एक ऐसी पुरानी और आवर्ती मानसिक व शारीरिक अवस्था है, जिसमें व्यक्ति किसी मादक पदार्थ के उपभोग पर पूरी तरह निर्भर हो जाता है। यह निर्भरता धीरे–धीरे व्यक्ति के तंत्रिका तंत्र, व्यवहार और सामाजिक संबंधों को अपरिवर्तनीय रूप से प्रभावित करती है।

5.1.2 आहूजा, राम (2014) : प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री राम आहूजा के सामाजिक विघटन सिद्धांत के अनुसार, नशा व्यसन केवल एक व्यक्तिगत विकार या आदत नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना में आई कमियों का परिणाम है। जिन क्षेत्रों में गरीबी, बेरोजगारी, पारिवारिक असंतोष और सामाजिक नियंत्रण के साधन कमजोर होते हैं, वहाँ नशा व्यसन की दर आनुपातिक रूप से अधिक पाई जाती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (2018) और राम आहूजा (2014) ने नशा व्यसन के मानसिक, शारीरिक एवं सामाजिक पक्षों की व्याख्या की है। किन्तु युवाओं में बढ़ते नशा व्यसन, पारिवारिक परिवेश तथा सामाजिक–आर्थिक कारकों के संयुक्त प्रभाव पर पर्याप्त अध्ययन उपलब्ध नहीं हैं। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में इसके कारणों और प्रभावों पर शोध सीमित है। यही अंतर वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता को स्पष्ट करता है।

5.2 किशोरावस्था, मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य एवं सहकर्मी प्रभाव :

5.2.1 एरिक्सन, एरिक (1968) : एरिक्सन के मनो–सामाजिक विकास सिद्धांत (Psychosocial Development Theory) के अनुसार, किशोरावस्था 'पहचान बनाम भूमिका भ्रम' (Identity vs Role Confusion) का काल होती है। इस संवेदनशील चरण में यदि किशोरों को उचित पारिवारिक मार्गदर्शन और सकारात्मक सामाजिक वातावरण नहीं मिलता, तो वे पहचान के संकट (Identity Crisis) के कारण भटकाव का शिकार होकर मादक पदार्थों की ओर रुख कर लेते हैं।

5.2.2 फ्रायड, सिगमंड (1923) : मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से, फ्रायड का मानना है कि व्यक्ति अपने अवचेतन संघर्षों, तीव्र मानसिक तनाव, असफलता के डर और अकेलेपन से उत्पन्न चिंता (Anxiety) से रक्षात्मक तंत्र (Defense Mechanism) के रूप में बचने के लिए नशे को एक पलायनवादी मार्ग (Escapism) के रूप में चुनता है।

5.2.3 सदरलैंड, एडविन (1947) : सदरलैंड का 'विभेदक संगति सिद्धांत' यहाँ 'सहकर्मी समूह प्रभाव' को स्पष्ट करता है। किशोर अपने मित्र मंडली के व्यवहार से अत्यधिक प्रभावित होते हैं, यदि प्राथमिक समूह में नशे का चलन हो, तो सामाजिक अधिगम के कारण किशोरों में इसकी संभावना बहुगुणी हो जाती है।

एरिक्सन (1968), फ्रायड (1923) तथा सदरलैंड (1947) के सिद्धांत किशोरों में नशा व्यसन के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारणों को स्पष्ट करते हैं। तथापि, इन अध्ययनों में पहचान संकट, मानसिक तनाव तथा सहकर्मी प्रभाव के संयुक्त प्रभाव का समग्र विश्लेषण सीमित है। विशेष रूप से वर्तमान डिजिटल युग में सोशल मीडिया, ऑनलाइन समूहों और बदलती पारिवारिक संरचनाओं की भूमिका पर पर्याप्त शोध उपलब्ध नहीं है। साथ ही, ग्रामीण एवं अर्ध–शहरी क्षेत्रों के किशोरों में नशा व्यसन के बढ़ते प्रसार के संदर्भ में इन कारकों की अंतःक्रिया का अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। इसलिए इस विषय पर आगे शोध की आवश्यकता है।

5.3 सामाजिक–आर्थिक कारक एवं राष्ट्रीय नीतिपरक प्रतिवेदन :

5.3.1 सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय (2019) : भारत सरकार के इस मंत्रालय द्वारा जारी राष्ट्रीय सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार, किशोरों और युवाओं में तंबाकू, तरल मादक पदार्थों (शराब) और सिंथेटिक ड्रग्स का सेवन तेजी से बढ़ा है। रिपोर्ट यह भी रेखांकित करती है कि आर्थिक रूप से विपन्न और श्रमिक वर्गों के किशोरों में यह समस्या कहीं अधिक पैठ बना चुकी है।

5.3.2 राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (2022) : एनसीआरबी के वार्षिक प्रतिवेदनों के अनुसार, नशा व्यसन और बाल अपराध के मध्य एक प्रत्यक्ष और घनात्मक (Positive) संबंध पाया गया है। मादक पदार्थों की लत को पूरा करने के लिए किशोर अक्सर चोरी, छिनैती, गंभीर हिंसा और अन्य असामाजिक गतिविधियों में संलिप्त पाए जाते हैं।

5.4 स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर बहुआयामी दुष्प्रभाव :

5.4.1 चिकित्सीय एवं स्वास्थ्य विशेषज्ञ अध्ययन (शर्मा एवं अन्य, 2021) : क्लिनिकल अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि कम उम्र में नशा शुरू करने से किशोरों के शारीरिक स्वास्थ्य (हृदय और फेफड़ों के गंभीर विकार, प्रतिरोधी क्षमता का क्षय) के साथ–साथ उनके मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा आघात लगता है, जिसके कारण तीव्र अवसाद (Clinical Depression), व्यवहार में आक्रामकता और आत्मघाती प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं।

5.4.2 शैक्षणिक प्रभाव संबंधी विमर्श (कुमार, 2020) : शिक्षाविदों और समाजशास्त्रियों के शोध दर्शाते हैं कि

नशीले पदार्थों का सेवन मस्तिष्क की संज्ञानात्मक क्षमता, एकाग्रता और स्मरण शक्ति को शिथिल कर देता है। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में विद्यालय से निरंतर अनुपस्थिति (Absenteeism), अकादमिक प्रदर्शन में गिरावट और अंततः बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने (Drop-out) की प्रवृत्ति देखी जाती है।

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय (2019) तथा राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (2022) की रिपोर्टें नशा व्यसन के सामाजिक–आर्थिक प्रभावों और बाल अपराध से उसके संबंध को स्पष्ट करती हैं। तथापि, किशोरों में नशा व्यसन के पीछे कार्यरत पारिवारिक, शैक्षिक एवं सामुदायिक कारकों के संयुक्त प्रभाव पर सीमित अध्ययन उपलब्ध हैं। विशेषकर स्थानीय स्तर पर नशा, गरीबी और अपराध के अंतर्संबंधों की गहन पड़ताल की आवश्यकता है।

6. साहित्य समीक्षा का निष्कर्ष :

उपरोक्त साहित्य समीक्षा से स्पष्ट होता है कि किशोरों में नशा व्यसन एक बहुआयामी सामाजिक समस्या है। इसके पीछे सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक कारण कार्य करते हैं। नशा व्यसन किशोरों के स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवहार एवं सामाजिक जीवन पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव डालता है। पूर्व अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हुआ कि पारिवारिक विघटन, गलत संगति, बेरोजगारी तथा मानसिक तनाव किशोरों में नशा व्यसन को बढ़ावा देने वाले प्रमुख कारक हैं।

पूर्वांचल क्षेत्र में इस विषय पर सीमित शोध उपलब्ध हैं, विशेषकर किशोरों के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक जीवन पर नशा व्यसन के प्रभावों के संदर्भ में। अतः प्रस्तुत अध्ययन इस शोध अंतर को भरने का प्रयास करेगा तथा नशा नियंत्रण एवं किशोर कल्याण संबंधी योजनाओं के निर्माण में उपयोगी सिद्ध होगा।

7. नशा व्यसन के कारण :

7.1 पारिवारिक कारण : माता–पिता का नशा करना, घरेलू हिंसा, परिवार में तनाव।

7.2 सामाजिक कारण : गलत संगति, मित्रों का दबाव, सामाजिक दिखावा।

7.3 आर्थिक कारण : बेरोजगारी, गरीबी, आर्थिक असुरक्षा।

7.4 मनोवैज्ञानिक कारण : तनाव एवं अवसाद, असफलता का भय, अकेलापन।

8. नशा व्यसन के प्रभाव :

8.1 शारीरिक प्रभाव : फेफड़ों एवं हृदय की बीमारी, कमजोरी एवं थकान, प्रतिरोधक क्षमता में कमी।

8.2 मानसिक प्रभाव : अवसाद एवं चिंता, चिड़चिड़ापन, आत्महत्या की प्रवृत्ति।

8.3 शैक्षिक प्रभाव : पढ़ाई में रुचि कम होना, विद्यालय छोड़ना, परीक्षा परिणाम में गिरावट।

8.4 सामाजिक प्रभाव : अपराध की प्रवृत्ति, पारिवारिक संबंधों में तनाव, सामाजिक अलगाव।

9. शोध पद्धति :

91. शोध का प्रकार : यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पर आधारित है।

9.2 अध्ययन क्षेत्र : पूर्वांचल क्षेत्र के चयनित जिले जैसे : वाराणसी, सोनभद्र, मिर्जापुर।

9.2.1 सोनभद्र एवं मिर्जापुर : इन औद्योगिक और खनन बहुल क्षेत्रों पर किए गए क्षेत्रीय अध्ययन बताते हैं कि यहाँ श्रमिक संस्कृति और कठिन श्रम के कारण वयस्कों में शराब और तंबाकू का सेवन एक सामान्य सामाजिक स्वीकृति प्राप्त व्यवहार बन चुका है। किशोर अपने पारिवारिक और कार्यस्थल के इसी परिवेश से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होकर कम उम्र में ही व्यसन के जाल में फंस जाते हैं।

9.2.2 वाराणसी : इस अर्ध–शहरी/शहरी केंद्र में आधुनिकता की अंधी दौड़, सोशल मीडिया का अति–प्रभाव, पाश्चात्य जीवनशैली का अनुकरण और तीव्र प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न अवसाद किशोरों को नशीले पदार्थों की ओर आकर्षित कर रहा है।

9.3 नमूना चयन : 50 किशोरों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति द्वारा किया गया है।

9.4 तथ्य संकलन के स्रोत :

9.4.1 प्राथमिक स्रोत : साक्षात्कार, प्रश्नावली, अवलोकन।

9.4.2 द्वितीयक स्रोत : पुस्तकें, शोध पत्र, सरकारी रिपोर्ट, इंटरनेट।

10. निष्कर्ष :

पूर्वांचल क्षेत्र के सोनभद्र, मिर्जापुर और वाराणसी जिलों के युवाओं पर किए गए इस अध्ययन से किशोरों और युवाओं में नशा व्यसन के गंभीर और चिंताजनक प्रभाव सामने आए हैं। इस अध्ययन में शामिल लक्षित समूह के कुल युवाओं में से 70% युवा सक्रिय रूप से नशे की लत में लिप्त पाए गए हैं। यदि जनसांख्यिकीय संरचना की बात की जाए, तो इसमें सर्वाधिक भागीदारी 22–25 वर्ष के युवाओं की है जो कुल संख्या का 60% हैं, जबकि 20–22 वर्ष के युवा 22% और 17–18 वर्ष के किशोर 18% हैं। भौगोलिक और क्षेत्रीय आधार पर यह समस्या ग्रामीण इलाकों में कहीं अधिक गहरी है, जहाँ नशा करने वाले 90% युवा ग्रामीण क्षेत्रों से और केवल 10% शहरी क्षेत्रों से आते हैं। क्षेत्रवार विश्लेषण में मिर्जापुर के युवाओं में नशा व्यसन का प्रभाव सबसे अधिक 72% देखा गया है, जिसके बाद सोनभद्र में 18% और वाराणसी में 10% युवा इसके प्रभाव में हैं। अध्ययन का एक बेहद चौंकाने वाला पहलू यह है कि उच्च शिक्षा भी युवाओं को इस लत से दूर रखने में प्रभावी साबित नहीं हो रही है। नशे की चपेट में आए युवाओं में 40% स्नातक और 60% स्नातकोत्तर स्तर के हैं। अध्ययन में युवाओं के नशे की ओर आकर्षित होने के प्रमुख कारणों का भी विश्लेषण किया गया है, जिसमें सबसे बड़ा कारण युवाओं की अपनी जिज्ञासा 50% पाई गई है, इसके बाद मनोरंजन 40% और पारिवारिक समस्या 10% को जिम्मेदार माना गया है। युवाओं द्वारा उपयोग किए जाने वाले नशीले पदार्थों के प्रकारों में बीड़ी और सिगरेट का चलन सबसे अधिक 50% पाया गया है, जबकि पान मसाला और शराब का सेवन समान रूप से 20–20% युवा करते हैं, और शेष 10% युवाओं द्वारा तंबाकू का उपभोग किया जाता है। इस व्यसन का युवाओं के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर अत्यंत नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। अध्ययन के अनुसार, नशे के कारण 40% युवा नींद न आने की समस्या (अनिद्रा) से जूझ रहे हैं, 30% तीव्र तनाव का सामना कर रहे हैं, 20% युवाओं में व्यवहारिक चिड़चिड़ापन देखा गया है, और 10% युवा शारीरिक कमजोरी से ग्रस्त हो चुके हैं। इस भयावह स्थिति के बावजूद, क्षेत्र में जागरूकता का स्तर बेहद निराशाजनक है। अध्ययन में शामिल युवाओं में से केवल 50% को ही नशा व्यसन के वास्तविक और दूरगामी दुष्प्रभावों का पूरा ज्ञान है। यह डेटा स्पष्ट करता है कि पूर्वांचल के युवाओं, विशेषकर उच्च शिक्षित और ग्रामीण आबादी को इस जाल से निकालने के लिए व्यापक स्तर पर स्वास्थ्य सुधार, मनोवैज्ञानिक परामर्श और जागरूकता अभियानों की तत्काल आवश्यकता है।

11. सुझाव :

11.1 विद्यालयों में नशा विरोधी जागरूकता कार्यक्रम चलाए जाएँ।

11.2 माता–पिता को किशोरों के व्यवहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

11.3 सरकारी स्तर पर नशा मुक्ति केंद्रों की संख्या बढ़ाई जाए।

11.4 खेल एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाए।

11.5 किशोरों के लिए परामर्श सेवाएँ उपलब्ध कराई जाएँ।

संदर्भ सूची :

- आहूजा, राम. (2014). भारतीय समाज में सामाजिक समस्याएँ। जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स।
- एरिक्सन, एरिक एच., 1968, पहचान : युवावस्था और संकट (Identity: Youth and Crisis), न्यूयॉर्क : डब्ल्यू. डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी।
- कुमार, एस., 2020, किशोरों में नशा व्यसन और शैक्षणिक उपलब्धि पर उसका प्रभाव, नई दिल्ली : अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- फ्रायड, सिगमंड. (1923). द ईगो एंड द इड (The Ego and the Id)। लंदन : होगार्थ प्रेस एंड इंस्टीट्यूट ऑफ साइको–एनालिसिस।
- मौर्य, ए. के. (2022). पूर्वांचल में बेरोजगारी, पलायन और सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन। गोरखपुर : पूर्वांचल शोध संस्थान प्रकाशन।
- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, 2022, क्राइम इन इंडिया 2022, नई दिल्ली : गृह मंत्रालय, भारत सरकार।
- विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ), 2018, मादक पदार्थों के उपयोग एवं निर्भरता संबंधी प्रतिवेदन, जिनेवा : विश्व स्वास्थ्य संगठन।
- विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2018, किशोर स्वास्थ्य एवं मादक पदार्थ सेवन पर प्रतिवेदन, जिनेवा : विश्व स्वास्थ्य संगठन।
- शर्मा, आर., कुमार, ए., एवं सिंह, पी. (2021). किशोरों में मादक पदार्थों के सेवन का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव : एक चिकित्सीय अध्ययन। भारतीय मनोचिकित्सा एवं जनस्वास्थ्य जर्नल, 12(3), 45–58।
- सदरलैंड, एडविन एच. (1947). अपराधशास्त्र के सिद्धांत (Principles of Criminology)। फिलाडेल्फिया : जे. बी. लिप्पिनकॉट कंपनी।
- सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, 2019, भारत में मादक पदार्थों के सेवन की व्यापकता और स्वरूप पर राष्ट्रीय सर्वेक्षण, नई दिल्ली : भारत सरकार।
- सिंह, योगेन्द्र, 2004, भारतीय समाज एवं सामाजिक परिवर्तन, नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन्स।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 167-172

Advanced Techniques of Rainwater Harvesting

Dr. Sanjay Kumar Sinha.
Assistant Professor, P.G .Department of Geology.
S.N.S.R.K.S. College, Saharsa.
B.N. Mandal University, Madhapura (Bihar).

Abstract :

Currently, the water crisis has become a serious global issue. Due to population growth, urbanization, industrialization, and the unwarranted exploitation of water resources, groundwater levels are continuously declining. In this situation, rainwater harvesting has emerged as an effective, inexpensive, and sustainable solution. Only a small portion of the Earth's water is suitable for human use. In a country like India, where there is a high dependence on the monsoon, proper management of rainwater becomes extremely important. This research article analyzes advanced rainwater harvesting methods, their utility, technical aspects, and their impact in India.

Keywords : Rain water, Harvesting, technique, water conservation, resource

Introduction :

Water is a beautiful, precious, and free gift provided by nature. Living life is unimaginable without water. It is well known that in the entire universe, only life and water exist on Earth. Life cannot be imagined without water. Therefore, understanding the importance of water in our lives, we must make every effort to conserve it. Today, the availability of clean water is one of the world's major problems. Water scarcity has made life difficult in many areas of many countries. This is not a problem created by nature but rather a problem created by human activities. In many parts of India, excessive groundwater extraction is rapidly depleting the water table. The depletion of groundwater levels due to excessive groundwater extraction is having adverse effects on natural resources, the environment, the availability of drinking water, agriculture, and the industrial sector.

Maudie Barlow, a global water crisis expert and member of the Council of Canada, writes in her book Bluewinner (Blue Promise) that the global population has tripled in the twentieth century, but water use has increased sevenfold in comparison. By 2050, our population will reach three billion, which will require 80% of our water supply to meet this demand. The demand for water is increasing day by day, but its sources are not only limited, but is also becoming scarce.

According to the information obtained from the water sources available in the world at present, out of the water present on the earth, about 97.2% water is in the form of salty water in the oceans, the remaining 2.8% is available on the earth in the form of fresh water from other sources. Out of the pure water present on the earth, 68.7% water is in the form of ice in glaciers and ice blocks, 30% water is in the form of underground water inside the earth, 0.3% water is in the form of surface water and 0.9% water is present on the earth in other forms. 87% of the water available on the surface is in lakes, ponds etc., 11% is in the form of perpetual moisture and the remaining 2% water is in rivers.

Review of literature :

The literature on rainwater harvesting highlights how it has evolved into a practical and sustainable solution for managing water scarcity.

- **Su et al. (2009)**, emphasize that rainwater harvesting is not just a simple collection method but a carefully designed system where factors like rainfall variability and storage capacity play a crucial role. Their study shows that since rainfall is unpredictable, having an adequately sized storage tank becomes essential to balance water supply and demand, helping reduce shortages.
- **Farrecy et al. (2011),** focus on urban settings, explaining how rooftops serve as effective collection surfaces. They point out that the type, slope, and material of roofs significantly influence both the quantity and quality of collected water, making design considerations very important for efficient systems.
- **Ward et al. (2012),** explore rainwater harvesting as part of broader sustainable water management strategies. Their research, conducted in an office building, compares real-world system performance with predicted outcomes using simulation techniques. They found that such systems not only conserve water but can also lead to noticeable cost savings over time.
- **Thomas et al. (2014),** highlight the social dimension of rainwater harvesting in the United States. They stress the importance of community participation, user awareness, and proper water treatment practices. Their survey-based findings suggest that public involvement and continuous research are key to expanding the adoption of rainwater conservation methods. Together, these studies provide a comprehensive understanding of rainwater harvesting from technical, environmental, and social perspectives.

Classification of Rain Water Harvesting :

Rainwater is a precious natural gift. Rainwater harvesting has a long history. Evidence of the history of water harvesting and irrigation in India was found in Sindhu Gahti Civilization. Archaeological excavations at the World Heritage Site of the Gardens revealed a cistern built in the 7th century BC to collect rainwater. Similarly, a rock catchment system was built in Sigiriya, Sri Lanka, to collect rainwater. This system was built in 425 BC. The Thar region of Rajasthan state dates

back to 4500 years ago. Evidence of catchment in India was found during excavations at Harappa. Years ago, rainwater was used to collect water from the caves. Rainwater harvesting is essential. The process of collecting this water after rainfall for productive use is called "rainwater harvesting." Rainwater harvesting is an effective method of addressing the current water scarcity problem and improving groundwater levels. Rainwater harvesting can be broadly classified into the following categories:

1. **Artificial groundwater recharge :**

Over time, increasing water demand has led to the exploitation of groundwater, resulting in a clear gap between the groundwater level and the recharge level. This problem can be addressed by adopting artificial recharge techniques. Artificial groundwater recharge techniques should be used based on the geographical location, availability of rainfall in the area and available resources. The most common artificial groundwater recharge techniques are as follows:-

- **Small dams or gully dams** : This type of structure requires special technical and geological preparation. This technology not only increases water storage in the channel but also increases groundwater recharge. This technology is quite economical, and does not require large areas of land for dam construction. These types of structures are proving to be very useful for small rivers and streams.
- **Recharging of wells and tanks** : The existing wells and tanks in the Sankh region, which are currently of no use, i.e., are dry, can be cleaned and the waste water can be diverted to these tanks and used as recharge structures.
- **Check Dam and Pond :** In areas with sloping fields, water flow is stopped by building small dams or ponds. This water is used for irrigation. And the llama is used for cattle work.
- **Refilling hand pumps and Kund** : In this method, pre-dug wells are filled. Wells that have dried up or their water levels have dropped significantly is used to create groundwater recharge reservoirs. Rainwater from channels, streams, and grain holes is used to recharge dried aquifers. Rainwater collected at wells in urban and rural areas can be conserved and recharged.
- **Extended by Basin :** In this technique a large hole is made on the ground.

A channel is created and filled with water from the main stream or other water sources. This technique is particularly useful for artificially recharging well-watered areas.

2. **Natural groundwater recharge :**

Rainwater is the only source that provides water to the Earth, providing soil moisture, recharging groundwater, etc. Rainwater flows through hills, streams, waterfalls, etc. This water reaches the rivers and gets absorbed naturally according to the permeability of the surface soil while flowing and increases the groundwater level. The hills in which groundwater accumulates are called aquifers.

Generally, aquifers are made of gravel, sand, sandstone and sand stone, due to which water seeps through the rocks and groundwater gets recharged. The interconnected number of hills makes the hills permeable. The places in the aquifers where water remains are called saturated zones. The depth at which water is found from the surface is 16 times that.

3. **Groundwater recharge :**

Increasing demand over time as dependence on groundwater to meet these needs increases, its indiscriminate exploitation has led to a decline in groundwater levels and a widening gap between groundwater supply and water availability. Groundwater exploitation is crucial to maintaining a balance between groundwater exploitation and groundwater recharge.

Proper management of water supply and recharge is essential. The first evidence of water management was found during excavations at Sindhu Ghati. Evidence of numerous reservoirs has also been found at Dhauravira. Arrangements were made in this area to drain floodwaters. Similarly, the art of well-making developed during the Harappa period.

- **Water Management in Agriculture :**

The term "water management" is most commonly used in agricultural fields. Irrigation contributes 15-16% to crop production. Adequate water for crops means adequate soil moisture. Drip irrigation, sprinkle techniques, and field leveling can prevent water misuse. Traditional irrigation techniques can be replaced with modern irrigation methods as needed.

- **Sprinkler Irrigation Technique :** By boudoir or sprinkler method Irrigation involves spraying water in streams like raindrops. This is considered a very useful and scientific method.
- **Drip Irrigation System :** This is an advanced method using for High quality produce, efficient use of chemicals and fertilizers, reduced water leaching and runoff, weed control, and water savings can be ensured. This method can be adapted for most crops, depending on the soil type, field slope, water source, and farmer's skills.

4. **Water management in residential areas** :

The huge population of the country has increasing the demand for water. In addition to urban areas, water scarcity is also becoming apparent in rural areas. The following are simple measures for water management/rainwater harvesting in residential areas :

- While constructing houses, colonies or any type of buildings in residential areas, it should be made necessary and mandatory whether provision for rainwater harvesting has been made or not.
- The water used by people in residential areas should be used in a systematic manner in plantations and gardens. I again
- In urban scenario, waste water from hotels and residential places should be used for reuse and underground recharge.

- There is a need to motivate the public to use rain water judiciously.

5. Management of rainwater in industrial areas :

In the modern era, expansion of industries is essential for the development of any nation. With proper expansion of industries, economic strength is achieved at the international level along with the nation. Industries require a significant amount of water. Water harvesting and its use in industries promote water conservation. If rainwater is used, then sufficient amount of water will be available for industries. The treated water can be used again and again after purification and polluted water can also be treated.

6. Traditional techniques of recharge :

The following traditional techniques of water harvesting have been adopted in India since ancient times :-

- **Virda** : A technique used in Kutch region of Gujarat where the ground is dug deeper to allow fresh water to seep into and accumulate salt water
- **Johads and ponds** : In rural areas, the utility of small ponds is realized for storing groundwater, in which rainwater is collected in ponds and the surrounding groundwater level is increased.

Conclusion :

To address this problem, emphasis is placed on water management, as well as groundwater storage and recharge. Groundwater storage and recharge can be achieved by adopting natural or artificial techniques tailored to the situation. Human attention needs to be paid to water management in agricultural, residential, and small industrial areas. For groundwater management, efforts should be made to address the problem by adopting techniques such as small dams or drains, distribution channels, ponds, hand pumps, channel expansion, and percolation ponds. The Government of India, under the Jal Shakti Abhiyan, has set a goal of providing water to "every village, every home" by 2024. Positive results are being achieved by collaborating with government and non-government organizations to address the water problem. However, given the magnitude of the current problem, there is a need for greater engagement in groundwater storage, recharge, and management. Rainwater harvesting is a simple yet very promising technique that can play a vital role in alleviating the water crisis. Its efficiency can be further increased by using advanced technologies. If adopted on a large scale, it will ensure water security in the future.

Reference :

- Central Ground Water Board. (2000). Guide on artificial recharge to groundwater. Ministry of Water Resources, Government of India.
- Vedavati, R., Pujari, V. V., Dimri, V. P., & Dimri, V. V. (2012).Artificial groundwater recharging

in India. In Proceedings of the International Conference SWRDM.

- Ministry of Jal Shakti. (2022). Rainwater harvesting guidelines: Government policies and conservation strategies in India. Government of India.
- Central Ground Water Board. (2020).Manual on rainwater harvesting: Official Indian guidelines on design and implementation of rainwater harvesting systems. Government of India.
- Food and Agriculture Organization. (2019). Rainwater harvesting for agriculture: Focus on rural and agricultural applications. FAO.
- Agarwal, A., & Narain, S. (2011). Dying wisdom: Rise, fall and potential of India's traditional water harvesting systems. Centre for Science and Environment.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 173-180

CONTEMPT OF COURT : A CRITICAL ANALYSIS

Dr. Sarita Sharma
Research Scholar, Pt. Ravishankar Shukla University, Raipur.

ABSTRACT :

This study explores the nuances of contempt laws within India's legal framework, focusing on constitutional and statutory dimensions alongside judicial interpretations. Through an examination of case precedents and academic discourse, it navigates the interface between contempt legislation and constitutional liberties, notably the freedom of expression. Highlighting lacunae and complexities in existing laws, the research suggests measures to enhance clarity and fairness in contempt proceedings. By elucidating this intricate legal domain, the paper contributes to a nuanced understanding of the delicate balance between judicial authority and individual freedoms in India's legal milieu.

Keywords : Contempt of Court, Rule of Law, Judicial Administration, Constitutional Provisions, Legal Statutes, Supreme Court.

- **INTRODUCTION :**

Contempt of court basically means that if an individual shows disobedience or disrespects the court of law that it challenges the justice, authority, and dignity of the court it can be said that such person has committed the offence of contempt of court. The aim of the law of contempt principally is to protect the dignity of the courts and the due administration of justice.In *"Brahma Prakash Sharma vs. State of Uttar Pradesh",* the Supreme Court had held that in order to constitute the offence of Contempt of Court, it was not necessary to specifically prove that an actual interference with administration of justice has been committed. The Court held that it was enough if a defamatory statement is likely or in any way tends to interfere with the proper administration of justice.

Halsbury's Law of England defining "contempt of court" states: "*Any act done or writing published which is calculated to bring a court or a Judge into contempt, or to lower his authority, or to interfere with the due course of justice or the lawful process of the court, is a contempt of court. Any episode in the administration of justice may, however be publicly or privately criticised, provided that the criticism is fair and temperate and made in good faith. The absence of any intention to refer to a court is a material point in favour of a person alleged to be in contempt."*

A contempt of court is a matter which concerns the administration of justice and the dignity and authority of judicial tribunals. The law dealing with contempt of courts is for keeping the administration of justice pure and undefiled; and, jurisdiction in contempt is not a right of a party to be invoked for the redressal of its grievances.

Statement of Problem :

The main problem is the law of contempt of court is vague and it is difficult to analyze as it tends to overlap with the Article 19 and also many time there is a clash of power of legislature to make the laws related to the contempt v/s the power of supreme court and the high court to punish for the contempt. The researcher will analyze the law of contempt in India with the help of cases decided by the court with the time and to develop an understanding of the laws of contempt in India in present situation of the country.

Objective of the study :

- To understand the contempt of court in India.
- To find out gaps in the laws related to contempt of court.
- To find out the solutions of the problems associated with the present laws.

Research questions :

In the light of the statement of problem and to achieve the objectives of the research, the researcher will find out the answer of the following questions :

- What is Contempt of court?
- What are the gaps in the present law of contempt of court and its limitations?
- What can be done to overcome the difficulties of the present laws related to the contempt?

Hypothesis :

- Understanding contempt laws can minimize litigation and improve compliance with Article 19(2), reducing contempt charges in higher courts.

Research Methodology :

The researcher used quantitative mode of research to analyse the topic and to understand the concept of contempt of court and form a structure of the paper. To collect data and information doctrinal method is used and the data used is both primary such as books, legislations and judicial pronouncements as well as secondary data such as news article, other reports etc.

Literature review :

The major source of information is the **Law commission report of April 2018 i.e., Review of Contempt of Courts Act, 1971.** The report deals with various provisions of the act of 1971 and studies case laws related to the contempt of court and also deals with development and the problems associated with the present law and provide recommendations to improvise the present law of contempt.

The researcher also referred to the **M. P. Jain's Indian Constitutional Law, 2018 edition,** for understanding constitutional aspects of the contempt of court as provided under Article 19, 129, 142, 215, 235. Also the researcher used various legislations such as Contempt of Court Act, 1971, Constitution of India, Code of Criminal Procedure, 1973, Indian Penal Code, 1860.

The researcher referred live law for various articles and news with regard to the topic, such as, an article published in live law namely **"SC Grants 16 weeks more time for 'Contemnors' Vijay Kurle,NileshOjha and Rashid Khan Pathan to surrender"** dated 18 Aug 2020 (7:42 PM) and also **"Law of contempt of court- A face off with right to freedom of speech and expression which includes right of fair criticism"** dated 10/06/2020.

Also referred to **Mriganka Shekhar Dutta &Amba Uttara Kak, Contempt of Court: Finding the Limit, 2 NUJS L. Rev. 55 (2009).** This article examines the genesis of this power of the court, which has been subject to many an academic debate in recent time of modern democratic setup.

- **PROVISIONS RELATED TO CONTEMPT OF COURTS IN INIDA :**
- **Constitutional Provisions :**

It is well established that Rule of Law is a basic feature of the Constitution, and the Rule of Law is postulated in the Constitution in the sense of its supremacy. It entails inter alia the right to obtain judicial redress through administration of justice, which is the function of the Courts, and is imperative for the functioning of a civilised society. To administer justice in an undefiled manner, judiciary, as the guardian of Rule of Law, is entrusted with the extraordinary power to punish misconduct aimed at undermining its authority or bringing the institution into disrepute, whether outside or inside the courts. Indeed, the courts must be able to discharge their functions without fear or favour.

In the case of *Kapildeo Prasad Sah & Others*. v. *State of Bihar &Ors.,*(1999) 7 SCC 569, the Supreme Court held that "disobedience of court's order would be a violation of the principle of Rule of Law. The law of contempt can thus be considered to be the thread which holds together the basic structure of the Constitution. And, the maintenance of dignity of the Court is one of the cardinal principles of Rule of Law. The law of contempt must be judiciously pressed into service, and must not be used as a tool to seek retribution." However, any insinuation to undermine the dignity of the Court under the garb of mere criticism is liable to be punished. The Contempt proceedings are intended to ensure compliance of the orders of the court and adherence to the Rule of Law. Once the essentials for initiation of contempt proceedings are satisfied, the Court would initiate an action uninfluenced by the nature of the direction, i.e., as to whether these directions were specific in a lis pending between the parties or were of general nature or were in rem.

- **Courts of Record and Power to Punish for Contempt :**

The Constitution of India designates the Supreme Court and the High Courts as the Courts of Record. It further grants the Supreme Court and every High Court the power to punish for contempt of itself. While Article 129, dealing with the said power of the Supreme Court, provides that "The Supreme Court shall be a court of record and shall have all the powers of such a court including the power to punish for contempt of itself"; Article 215 vests similar power with the High Courts. The High Courts are also entrusted with the supervisory control over the subordinate courts under Article 235 of the Constitution. In this manner, a High Court is the guardian of the subordinate judiciary under its jurisdiction. While the Constitution does not define the term "court of record", its meaning is well understood across all jurisdictions. In *Delhi Judicial Service Association, Tis Hazari Court, Delhi v. State of Gujarat*, the Supreme Court applied the term to a court whose acts and proceedings are enrolled for a "perpetual memory and testimony". Once a court has been declared to be a "court of record" by a statute, the power to punish for its own contempt automatically ensues. Such a court also has the power to punish for the contempt of the courts and tribunals subordinate to it. Additionally, a court of record has the power to determine the question of its own jurisdiction.

In terms of definitions in other sources, Words and Phrases define "court of record" as court where acts and judicial proceedings are enrolled in parchment for a perpetual memorial and testimony. Such rolls are called the "record" of the court and are of high and super eminent authority, the truth of which is beyond question.As the Supreme Court observed in the case of *Pallav Sheth v. Custodian &Ors., AIR 2001 SC 2763*, that there is no doubt that the Supreme Court and High Courts are courts of record, and that the Constitution has given them the power to punish for contempt, which power cannot be "abrogated or stultified"

- **Law of Contempt and Article 19(1) (a) :**

Freedom of speech and expression is regarded as the "lifeblood of democracy"; Article 19(1) (a) of the Constitution guarantees this freedom to the citizens of India. This right, however, is not absolute, and is subject to certain qualifications i.e. reasonable restrictions on the grounds set out in Article 19(2). One such ground relates to the contempt of court. The Constitution, which has given its citizens right to freedom of speech and expression, has given certain powers to the Judiciary to guard against the misuse of the same, to prevent the right to freedom of speech and expression being so exercised that it damages the dignity of the Courts or interferes with the 'administration of justice'. In *Aswini Kumar Ghose & Anr. v. Arabinda Bose &Anr., AIR 1953 SC 75*, the Supreme Court held that while fair and reasonable criticism of a judicial act in the interest of public good would not amount to contempt, it would be gross contempt to impute that Judges of the Court acted on extraneous considerations in deciding a case.

Right to freedom of speech and expression does not embrace the freedom to commit contempt of court. And, in the garb of exercising right to freedom of speech and expression, under Article 19(1) (a), if a citizen tries to assail the dignity of the court, or undermine its authority, the court may invoke the power to punish for contempt, under Article 129 or 215 as the case may be. Any law made by the Parliament or the application of any existing law in relation to contempt of courts, would tantamount to a reasonable restriction on the freedom of speech and expression. The defence of fair comment is available even during the pendency of the proceedings.

- **Other Constitutional Provision :**

In addition to Article 129, the Supreme Court also draws power to investigate or punish any contempt of itself from Article 142(2), which reads as under :

"(2) Subject to the provisions of any law made in this behalf by Parliament, the Supreme Court shall, as respects the whole of the territory of India, have all and every power to make any order for the purpose of securing the attendance of any person, the discovery or production of any documents, or the investigation or punishment of any contempt of itself."

This power of contempt under Article 142(2) lies outside the confines of the Act 1971 and remains unaffected by the limitation under section 20 of the Act.

The above position changed in 2016 with the case of *Mahipal Singh Rana v. State of U.P., AIR 2016 SC 3302*, The Supreme Court further held :

"We may add that what is permissible for this Court by virtue of statutory appellate power Under Section 38 of the Advocates Act is also permissible to a High Court under Article 226 of the Constitution in appropriate cases on failure of the Bar Council to take action after its attention is invited to the misconduct."

- **Statutory Provisions :**
- **Contempt of court act, 1971 :**

The Act 1971 was enacted to give effect to the recommendations contained in Sanyal Committee report of 1963. Section 2 of the Act, defines "contempt of court", and distinguishes between "civil contempt" and "criminal contempt", reading as follows :

"Civil contempt" means wilful disobedience to any judgment, decree, direction, order, writ or other process of a court or wilful breach of an undertaking given to a court.

"Criminal contempt" means the publication (whether by words, spoken or written, or by signs, or by visible representation, or otherwise) of any matter or the doing of any other act whatsoever which :

- Scandalises or tends to scandalise, or lowers or tends to lower the authority of, any court, or
- Prejudices, or interferes or tends to interfere with, the due course of any judicial proceeding,

or

- Interferes or tends to interfere with, or obstructs or tends to obstruct, the administration of justice in any other manner.

Section 10 of the Contempt of court Act deals with the contempt of subordinate courts. It empowers the High Court to "exercise the same jurisdiction, powers and authority, in accordance with the same procedure and practice, in respect of contempt of courts subordinate to it as it has and exercises in respect of contempt of itself". Proviso to the section carves an exception for cases of contempt which amount to an offence punishable under the India Penal Code, barring the High Court from taking cognizance in such cases. Section 12 prescribes the punishment for contempt of court and the limits thereto; also laying down specifics of punishment for when the contemnor is a company. Section 22 specifies that the provisions of the Act 1971 are supplemental to the provisions of any other existing law relating to contempt of courts.

- **The Code of Criminal Procedure, 1973 :**

Section 345 of Code of Criminal Procedure, 1973 prescribes for Procedure in certain cases of contempt. Code of Criminal Procedure, 1973 empowers any civil, criminal or revenue court to punish summarily a person who is found guilty of committing any offence under Section 175, 178, 179, 180 or Section 228 of the Indian Penal Code 1860 in the view or presence of the court.

CONCLUSION :

I conclude my paper as the Constitution of India provides Supreme Court and High Court inherent power to punish for their contempt which cannot be limited by any law or legislation made by the parliament. In such a case there is possibility that while exercising the power of contempt the courts may exercise it arbitrary or it is possible that individual's fundamental right to speech and expression can be infringed because of the fact that both the rights i.e., courts power to punish for its contempt and the fundamental right to freedom of speech and expression are visible to be overlapping in the modern democracy in India. Therefore a proper guideline is very much needed in such a time where everyday questions are growing with regard to dignity of the judiciary and a proper legislation which would provide proper guideline for exercising the law of contempt of court for the supreme court and high court and also which would provide for proper definitions for the word contempt of court and what all acts and omission amounts to contempt and what does not amount to contempt should be specified. In India there is rule of law no department should act arbitrary, where the rights and privileges are given there should also be certain limitations to such rights, no body of government, court or individuals can be given rights and privileges without certain restrictions otherwise the body which are given such rights and privileges can act arbitrary, it will not be regarded as the rule of law.

BIBLIOGRAPHY :

Printed source :

- Report No.274, LAW COMMISSION OF INDIA, Review of the Contempt of Courts Act, 1971(Limited to Section 2 of the Act), April 2018.
- Jain M.P., INDIAN CONSTITUTION LAW, 2018 Edition
- The constitution of India, Government of India Ministry of Law and Justice Legislature Department, [As on 9th December, 2020]
- THE CONTEMPT OF COURTS ACT, 1971 ACT NO. 70 OF 1971.
- Indian Penal Code, 1860, Act no. 45 of Year 1860.
- The Code of Criminal Procedure, 1973, (Act No. 2 of 1974).
- Mriganka Shekhar Dutta &Amba Uttara Kak, Contempt of Court: Finding the Limit, 2 NUJS L. Rev. 55 (2009)
- BasuDurga Das, Commentary on the Constitution of India 5616, LexisNexis ButterworthsWadhwa, Nagpur, Vol. 5, 8th edition.

Online source :

- https://thewire.in/law/supreme-court-finds-prashant-bhushan-guilty-of-contempt-in-tweets-case
- https://www.livelaw.in/top-stories/-sc-grants-sixteen-weeks-more-time-for-vijay-kurle-et-al-to-surrender-161622
- https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/satyam-bruyat/contempt-law-threatens-freedom/
- https://www.scconline.com/blog/post/2018/05/01/law-commissions-review-on-amendment-to-contempt-of-court-act-whether-necessary/

- 1954 AIR 10, SCR 1169
- Halsbury's Laws of England (3rd Edn., Vol. 8) at p. 7.
- A. Ramalingam v. V. V. MahalingaNadar, AIR 1966 Mad. 21.
- In re: Bineet Kumar Singh, AIR 2001 SC 2018; See also Shakuntala Sahadevram Tewari (Smt.) & Anr. v. Hemchand M. Singhania, (1990) 3 Bom CR 82.
- A. Ramalingam (supra).
- KesavanandaBharatiSripadagalvaru& Ors.v. State of Kerala &Anr., AIR 1973 SC 1461; Smt. Indira Nehru Gandhi v. Shri Raj Narain&Anr.,AIR 1975 SC 2299; Supreme Court Advocates-on-Record Association & Anr. v. Union of India (2016) 5 SCC 1; State of Haryana & Ors. vs. Bhajanlal&Ors, AIR 1992 SC 604.
- In re: Bineet Kumar Singh.
- In Re: Vinay Chandra Misra,AIR 1995 SC 2348; In Re : S. K. Sundaram,AIR 2001 SC 2374;

Mrityunjoy Das v. Sayed HasiburRahaman,AIR 2001 SC 1293; J. R. Parashar, Advocate &Ors. v. Prashant Bhushan, Advocate &Ors., AIR 2001 SC 3395; Chotu Ram v. Urvashi Gulati &Anr.,AIR 2001 SC 3468, AIR 2001 SC 3468.

- (1999) 7 SCC 569; and T.N. Godavarman Thirumulpad through the Amicus Curiae v. Ashok Khot&Anr.,AIR 2006 SC 2007.
- In Re: Arundhati Roy, AIR 2002 SC 1375.
- Priya Gupta & Anr. v. Additional Secretary, Ministry of Health & Family Welfare &Ors.,(2013)11 SCC 404.
- AIR, 1991 SC 2176.
- Delhi Development Authority v. Skipper Construction Co. (Pvt.) Ltd. &Anr., AIR 1996 SC 2005; Supreme Court Bar Association v. Union of India, AIR 1998 SC 1895; and Vitusah Oberoi & Ors. v. Court on its own motion, AIR 2017 SC 225.
- Income Tax Appellate Tribunal through President v. V. K. Agarwal &Anr., AIR 1999 SC 452
- Ravi S. Naik v. Union of India &Ors.,AIR 1994 SC 1558.
- Permanent Edition. Vol. 10 at 429 cited in Durga Das Basu, Commentary on the Constitution of India 5616 (LexisNexis Butterworths Wadhwa, Nagpur, Vol. 5, 8th edn.)
- Ibid.
- State of Bombay vs. P., AIR 1959 Bom. 182.
- J.R. Parashar v. Prashant Bhushan, AIR 2001 SC 3395; and Het Ram Beniwal & Ors.v. Raghuveer Singh &Ors., AIR 2016 SC 4940.
- Rama Dayal Markarha v. State of M.P., AIR 1978 SC 921.
- Delhi Development Authority v. Skipper Construction Co. (Pvt.) Ltd. &Anr., AIR 1996 SC 2005.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 181-187

डिजिटल युग में किशोरों का मानसिक स्वास्थ्य एवं पारिवारिक परिवेश : गृह विज्ञान और मानव विकास के संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ. सरोज बाला श्याग बिश्नोई
सहायक प्राध्यापक, गृहविज्ञान
शास. विवेकानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मनेन्द्रगढ़ जिला–एम.सी.बी. (छ.ग.)

सारांश :

वर्तमान समय डिजिटल क्रांति का युग है, जहाँ मोबाइल फोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने मानव जीवन की कार्यप्रणाली को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। विशेष रूप से किशोर वर्ग इस परिवर्तन से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है। डिजिटल माध्यमों ने शिक्षा, संचार और ज्ञानार्जन के नए अवसर प्रदान किए हैं, किन्तु इसके साथ मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक व्यवहार, पारिवारिक संबंध तथा व्यक्तित्व विकास से संबंधित अनेक चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

यह शोध आलेख किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर डिजिटल माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन गृह विज्ञान एवं मानव विकास के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि अत्यधिक स्क्रीन समय, सोशल मीडिया की निर्भरता, ऑनलाइन प्रतिस्पर्धा, साइबर बुलिंग तथा आभासी संबंध किशोरों में तनाव, अवसाद, अकेलापन, आत्मविश्वास में कमी और व्यवहारगत असंतुलन को बढ़ा रहे हैं।

शोध में पारिवारिक परिवेश, माता–पिता की भूमिका, संतुलित दिनचर्या, पोषण, संवाद, भावनात्मक सहयोग तथा जीवन कौशल शिक्षा के महत्व को भी रेखांकित किया गया है। गृह विज्ञान एक ऐसा बहुआयामी विषय है जो पोषण, स्वास्थ्य, परिवार प्रबंधन, बाल विकास और जीवन कौशल के माध्यम से संतुलित व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

यह अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध प्रविधि पर आधारित है तथा द्वितीयक स्रोतों 'पुस्तकों, शोध पत्रों, सरकारी रिपोर्टों एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययनों' का उपयोग किया गया है। निष्कर्षतः यह शोध बताता है कि डिजिटल युग में किशोरों के समग्र विकास के लिए परिवार, विद्यालय और समाज को समन्वित प्रयास करने होंगे।

मुख्य शब्द (Keywords) : मानसिक स्वास्थ्य, किशोरावस्था, डिजिटल युग, गृह विज्ञान, मानव विकास, सोशल मीडिया, पारिवारिक परिवेश।

प्रस्तावना :

मानव विकास एक सतत प्रक्रिया है, जो जन्म से लेकर जीवन के अंतिम चरण तक चलती रहती है। इस प्रक्रिया में परिवार, समाज, शिक्षा, संस्कृति, पोषण तथा परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किशोरावस्था मानव विकास का अत्यंत संवेदनशील चरण माना जाता है, जिसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और

सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से होते हैं।

21वीं सदी में डिजिटल तकनीक ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। मोबाइल फोन, इंटरनेट और सोशल मीडिया ने किशोरों की जीवन शैली, सोच, व्यवहार और संबंधों में व्यापक परिवर्तन लाया है। कोविड–19 महामारी के बाद ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल माध्यमों का उपयोग और अधिक बढ़ गया, जिससे किशोरों का स्क्रीन समय अत्यधिक बढ़ा।

गृह विज्ञान और मानव विकास का अध्ययन इन समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। गृह विज्ञान केवल घरेलू कार्यों तक सीमित विषय नहीं है, बल्कि यह परिवार प्रबंधन, पोषण, बाल विकास, स्वास्थ्य शिक्षा, संसाधन प्रबंधन और जीवन कौशल से संबंधित वैज्ञानिक अध्ययन है।

शोध के उद्देश्य (Objectives of the Study)

- डिजिटल माध्यमों का किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन करना।
- सोशल मीडिया और स्क्रीन समय से उत्पन्न व्यवहारगत परिवर्तनों का विश्लेषण करना।
- पारिवारिक परिवेश की भूमिका को समझना।
- गृह विज्ञान और मानव विकास के माध्यम से मानसिक स्वास्थ्य सुधार के उपाय प्रस्तुत करना।
- किशोरों के संतुलित विकास हेतु व्यावहारिक सुझाव देना।

शोध प्रविधि (Research Methodology)

यह शोध गुणात्मक (Qualitative) एवं वर्णनात्मक (Descriptive) पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्रों, समाचार पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, यूनिसेफ और विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के दस्तावेजों तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से सामग्री संकलित की गई है।

अध्ययन में तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसके अंतर्गत डिजिटल तकनीक के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का परीक्षण किया गया है।

किशोरावस्था : मानव विकास का संवेदनशील चरण, जीवन का संक्रमणकाल :

किशोरावस्था मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण अवस्था है, जो बाल्यावस्था और वयस्कावस्था के बीच का संक्रमणकाल होती है। सामान्यतः 10 से 19 वर्ष की आयु को किशोरावस्था कहा जाता है। इस अवधि में शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा सामाजिक स्तर पर तीव्र परिवर्तन होते हैं, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

किशोरावस्था की विशेषताएँ :

इस अवस्था में शरीर का तीव्र विकास होता है। लड़कों और लड़कियों में यौन परिपक्वता विकसित होती है। साथ ही स्वतंत्र सोच, आत्मसम्मान, पहचान की खोज तथा निर्णय लेने की क्षमता का विकास होने लगता है। किशोर अपने मित्रों और सामाजिक परिवेश से अधिक प्रभावित होते हैं।

1. शारीरिक विकास में तीव्रता :

किशोरावस्था में शरीर की वृद्धि बहुत तेजी से होती है। ऊँचाई और वजन बढ़ते हैं, मांसपेशियों का विकास होता है तथा यौन परिपक्वता के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। लड़कों में आवाज भारी होना, दाढ़ी–मूँछ आना तथा लड़कियों में मासिक धर्म का प्रारंभ होना इस अवस्था के प्रमुख शारीरिक परिवर्तन हैं।

2. भावनात्मक अस्थिरता :

इस अवस्था में हार्मोनल परिवर्तनों के कारण किशोरों की भावनाएँ तेजी से बदलती हैं। वे कभी अत्यधिक प्रसन्न तो कभी उदास या क्रोधित हो सकते हैं। छोटी–छोटी बातों पर संवेदनशील प्रतिक्रिया देना तथा तनाव या चिंता अनुभव करना सामान्य बात है।

3. आत्म–पहचान की खोज :

किशोर स्वयं को समझने और अपनी पहचान बनाने का प्रयास करते हैं। वे यह जानना चाहते हैं कि वे कौन हैं, उनकी रुचियाँ, क्षमताएँ और जीवन के लक्ष्य क्या हैं। इसी प्रक्रिया में वे अपने व्यक्तित्व और भविष्य की दिशा निर्धारित करते हैं।

4. सामाजिक संबंधों में परिवर्तन :

किशोरावस्था में मित्रों का प्रभाव बढ़ जाता है तथा परिवार पर निर्भरता अपेक्षाकृत कम होने लगती है। किशोर अपने साथियों के साथ अधिक समय बिताना पसंद करते हैं। नए सामाजिक संबंधों का निर्माण और समूह में स्वीकार्यता की इच्छा भी बढ़ती है।

5. स्वतंत्रता की इच्छा :

इस अवस्था में किशोर स्वयं निर्णय लेने और स्वतंत्र रूप से कार्य करने की इच्छा रखते हैं। वे अपने विचारों और पसंद को महत्व देना चाहते हैं तथा अत्यधिक नियंत्रण का विरोध कर सकते हैं। यह स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास का संकेत है।

6. निर्णय क्षमता का विकास :

किशोरावस्था में तार्किक सोच और समस्या–समाधान की क्षमता विकसित होने लगती है। किशोर विभिन्न विकल्पों पर विचार कर निर्णय लेने का प्रयास करते हैं। यद्यपि अनुभव की कमी के कारण उनके निर्णय हमेशा परिपक्व नहीं होते, फिर भी यह अवस्था निर्णय क्षमता के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

किशोरावस्था में प्रमुख समस्याएँ :

1. तुलना की प्रवृत्ति :

सोशल मीडिया पर लोग प्रायः अपने जीवन के केवल सकारात्मक और आकर्षक पहलुओं को प्रदर्शित करते हैं। किशोर इन आदर्श और संपादित छवियों की तुलना अपने वास्तविक जीवन से करने लगते हैं। परिणामस्वरूप उनमें हीन भावना, असंतोष और आत्म–मूल्य में कमी उत्पन्न हो सकती है। निरंतर तुलना की यह प्रवृत्ति मानसिक तनाव और असुरक्षा की भावना को बढ़ावा देती है।

2. साइबर बुलिंग :

सोशल मीडिया के माध्यम से होने वाला उत्पीड़न या दुर्व्यवहार साइबर बुलिंग कहलाता है। अपमानजनक टिप्पणियाँ, अफवाहें फैलाना, धमकी देना या किसी का मजाक उड़ाना इसके सामान्य रूप हैं। साइबर बुलिंग का शिकार होने वाले किशोर भय, चिंता, शर्म और मानसिक तनाव का अनुभव कर सकते हैं। यह उनके आत्मविश्वास और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करता है।

3. अकेलापन और अवसाद :

यद्यपि सोशल मीडिया लोगों को जोड़ने का दावा करता है, लेकिन अत्यधिक उपयोग कई बार वास्तविक सामाजिक संबंधों को कमजोर कर देता है। आभासी दुनिया में अधिक समय बिताने से किशोर परिवार और मित्रों

से दूर हो सकते हैं। सामाजिक समर्थन की कमी और अकेलेपन की भावना धीरे–धीरे अवसाद और मानसिक थकान का कारण बन सकती है।

4. आत्मविश्वास की कमी :

सोशल मीडिया पर सुंदरता, सफलता और लोकप्रियता के अवास्तविक मानकों को देखकर कई किशोर स्वयं को कमतर समझने लगते हैं। यदि उनकी पोस्ट को अपेक्षित प्रतिक्रिया या प्रशंसा नहीं मिलती, तो वे स्वयं को असफल मान सकते हैं। इससे आत्मविश्वास में गिरावट आती है तथा व्यक्तित्व विकास प्रभावित होता है।

मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव :

इन समस्याओं के कारण किशोरों में तनाव, चिंता, चिड़चिड़ापन, भावनात्मक अस्थिरता और आत्म–सम्मान में कमी जैसी मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। लंबे समय तक ऐसी परिस्थितियाँ बनी रहने पर उनके शैक्षणिक प्रदर्शन, पारिवारिक संबंधों और सामाजिक जीवन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

डिजिटल युग और किशोर जीवन :

वर्तमान समय को डिजिटल युग कहा जाता है। इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया, ऑनलाइन शिक्षा तथा विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्म ने किशोरों के जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। आज का किशोर ज्ञान प्राप्त करने, संवाद स्थापित करने, मनोरंजन करने तथा अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिए डिजिटल माध्यमों का व्यापक उपयोग करता है। यद्यपि डिजिटल तकनीक ने अनेक अवसर प्रदान किए हैं, वहीं इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी सामने आए हैं। अतः डिजिटल युग के प्रभावों को संतुलित दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है।

डिजिटल माध्यमों के सकारात्मक प्रभाव :

1. ऑनलाइन शिक्षा और ज्ञानवर्धन :

डिजिटल माध्यमों ने शिक्षा को अधिक सुलभ और प्रभावी बना दिया है। किशोर घर बैठे ऑनलाइन कक्षाओं, वेबिनार, ई–पुस्तकों तथा शैक्षणिक वीडियो के माध्यम से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनकी सीखने की क्षमता और विषयों की समझ में वृद्धि होती है।

2. वैश्विक जानकारी तक पहुँच :

इंटरनेट ने दुनिया को एक वैश्विक गाँव में बदल दिया है। किशोर किसी भी देश, संस्कृति, विज्ञान, तकनीक या समसामयिक घटनाओं की जानकारी तुरंत प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनके ज्ञान का दायरा विस्तृत होता है तथा वैश्विक दृष्टिकोण विकसित होता है।

3. रचनात्मकता और तकनीकी कौशल का विकास :

डिजिटल प्लेटफॉर्म किशोरों को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करते हैं। वे ब्लॉग लेखन, वीडियो निर्माण, ग्राफिक डिजाइन, प्रोग्रामिंग तथा डिजिटल कला के माध्यम से अपनी रचनात्मकता को विकसित कर सकते हैं। इससे तकनीकी दक्षता और नवाचार की भावना भी बढ़ती है।

4. संचार और अभिव्यक्ति के नए अवसर :

सोशल मीडिया, ई–मेल तथा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग जैसे साधनों ने संचार को सरल और त्वरित बना दिया है। किशोर अपने विचारों, अनुभवों और भावनाओं को व्यापक स्तर पर व्यक्त कर सकते हैं तथा विभिन्न समुदायों से जुड़ सकते हैं।

डिजिटल माध्यमों के नकारात्मक प्रभाव :

1. स्क्रीन की लत :

स्मार्टफोन, वीडियो गेम और सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग से किशोरों में स्क्रीन की लत विकसित हो सकती है। इससे समय का दुरुपयोग होता है तथा पढ़ाई और अन्य आवश्यक गतिविधियाँ प्रभावित होती हैं।

2. शारीरिक निष्क्रियता :

अधिक समय तक स्क्रीन के सामने बैठने से शारीरिक गतिविधियाँ कम हो जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप मोटापा, आंखों की समस्याएँ तथा अन्य स्वास्थ्य संबंधी परेशानियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

3. नींद की कमी :

रात्रि में मोबाइल या इंटरनेट का अधिक उपयोग किशोरों की नींद को प्रभावित करता है। पर्याप्त नींद न मिलने से थकान, चिड़चिड़ापन तथा कार्यक्षमता में कमी आ सकती है।

4. ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई :

डिजिटल माध्यमों पर लगातार बदलती सूचनाएँ और मनोरंजक सामग्री किशोरों की एकाग्रता को प्रभावित करती हैं। इससे अध्ययन तथा अन्य महत्वपूर्ण कार्यों पर ध्यान केंद्रित करना कठिन हो जाता है।

5. सामाजिक अलगाव :

यद्यपि डिजिटल माध्यम संचार के साधन हैं, फिर भी उनका अत्यधिक उपयोग वास्तविक सामाजिक संबंधों को कमजोर कर सकता है। किशोर परिवार और मित्रों के साथ प्रत्यक्ष संवाद कम करने लगते हैं, जिससे सामाजिक अलगाव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

6. आक्रामक व्यवहार :

हिंसात्मक खेलों, अनुचित सामग्री तथा ऑनलाइन विवादों के प्रभाव से कुछ किशोरों में आक्रामकता और असहिष्णुता की प्रवृत्ति विकसित हो सकती है। यह उनके व्यवहार और सामाजिक संबंधों पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है।

डिजिटल युग में किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने की चुनौतियाँ :

डिजिटल युग ने किशोरों के जीवन को अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं, किंतु इसके साथ ही मानसिक स्वास्थ्य संबंधी नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। इंटरनेट, सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा डिजिटल तकनीकों का बढ़ता प्रभाव किशोरों के व्यवहार, सोच, भावनाओं और सामाजिक संबंधों को प्रभावित कर रहा है। इसलिए इन चुनौतियों को समझना और उनका समाधान खोजना अत्यंत आवश्यक है।

1. कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकों ने शिक्षा और जानकारी प्राप्त करने के नए अवसर प्रदान किए हैं, लेकिन इनके अत्यधिक उपयोग से किशोरों की स्वतंत्र चिंतन क्षमता और रचनात्मकता प्रभावित हो सकती है। एआई पर अत्यधिक निर्भरता निर्णय क्षमता तथा समस्या–समाधान कौशल के विकास में बाधा बन सकती है।

2. आभासी जीवनशैली (Virtual Lifestyle) :

किशोरों का अधिक समय ऑनलाइन दुनिया में व्यतीत होने लगा है। आभासी मित्रता और डिजिटल पहचान के कारण वास्तविक सामाजिक संबंध कमजोर पड़ सकते हैं। इससे अकेलापन, सामाजिक अलगाव और भावनात्मक असंतुलन की समस्या बढ़ सकती है।

3. डिजिटल निर्भरता (Digital Dependency) :

मोबाइल फोन, सोशल मीडिया, ऑनलाइन गेम और इंटरनेट की लत किशोरों में तेजी से बढ़ रही है। डिजिटल निर्भरता के कारण पढ़ाई, पारिवारिक जीवन, शारीरिक गतिविधियाँ और मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हो सकते हैं। यह तनाव, चिड़चिड़ापन और ध्यान की कमी का कारण बन सकती है।

4. साइबर अपराध (Cyber Crime) :

ऑनलाइन धोखाधड़ी, पहचान की चोरी, साइबर बुलिंग, हैकिंग और अनुचित सामग्री जैसी समस्याएँ किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। साइबर अपराध का शिकार होने पर भय, चिंता और असुरक्षा की भावना विकसित हो सकती है।

5. पारिवारिक संवाद में कमी :

डिजिटल उपकरणों के अत्यधिक उपयोग के कारण परिवार के सदस्यों के बीच प्रत्यक्ष संवाद कम होता जा रहा है। संवाद की कमी से किशोर अपनी समस्याएँ साझा नहीं कर पाते, जिससे तनाव और भावनात्मक अकेलापन बढ़ सकता है।

6. मानसिक रोगों में वृद्धि :

डिजिटल दबाव, ऑनलाइन तुलना, साइबर बुलिंग और सामाजिक अलगाव के कारण किशोरों में चिंता (Anxiety), अवसाद (Depression), तनाव और आत्मसम्मान में कमी जैसी मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ बढ़ रही हैं। यह स्थिति उनके शैक्षणिक और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित कर सकती है।

डिजिटल युग में किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य में पारिवारिक परिवेश की भूमिका :

डिजिटल युग ने किशोरों के जीवन को अनेक सुविधाएँ और अवसर प्रदान किए हैं, किंतु इसके साथ ही मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। सोशल मीडिया, ऑनलाइन गेम, इंटरनेट तथा डिजिटल उपकरणों के बढ़ते उपयोग का किशोरों के व्यवहार, भावनाओं और सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ऐसे समय में परिवार किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा और उनके संतुलित विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सकारात्मक पारिवारिक वातावरण की विशेषताएँ कुछ इस प्रकार हैं जैसे खुला संवाद, भावनात्मक सहयोग, अनुशासन और स्वतंत्रता में संतुलन, परिवार के साथ समय बिताना, सकारात्मक प्रोत्साहन।

गृह विज्ञान की भूमिका :

गृह विज्ञान एक बहुआयामी विषय है जो परिवार, स्वास्थ्य, पोषण और मानव विकास को वैज्ञानिक दृष्टि से समझने में सहायता करता है।

डिजिटल युग में किशोरों का जीवन तकनीकी साधनों से अत्यधिक प्रभावित हो रहा है। इंटरनेट, सोशल मीडिया, ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल मनोरंजन ने उनके जीवन को सुविधाजनक बनाया है, लेकिन साथ ही मानसिक तनाव, चिंता, अकेलापन और व्यवहारगत समस्याओं जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। ऐसी परिस्थितियों में गृह विज्ञान एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में किशोरों के मानसिक, शारीरिक और सामाजिक स्वास्थ्य के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जैसे संतुलित पोषण, समय प्रबंधन, जीवन कौशल शिक्षा, पारिवारिक संबंधों को सुदृढ़ बनाना, स्वास्थ्य शिक्षा।

किशोर मानसिक स्वास्थ्य सुधार के उपाय :

डिजिटल संतुलन, स्क्रीन समय सीमित करना, "नो मोबाइल जोन" बनाना, पढ़ाई और मनोरंजन में संतुलन, योग, प्राणायाम और ध्यान तनाव कम करने में सहायक हैं। खेल और शारीरिक गतिविधियाँ आत्मविश्वास और सामाजिक कौशल बढ़ाते हैं। रचनात्मक गतिविधियाँ जैसे संगीत, चित्रकला, लेखन और नृत्य मानसिक संतुलन बनाए रखने में सहायक हैं।

निष्कर्ष :

डिजिटल युग ने किशोरों के जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन लाए हैं। जहाँ तकनीक ने शिक्षा और ज्ञान के नए द्वार खोले हैं, वहीं मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को भी बढ़ाया है। किशोरावस्था मानव विकास का संवेदनशील चरण है, इसलिए इस अवस्था में संतुलित पारिवारिक वातावरण, सकारात्मक शिक्षा, स्वस्थ दिनचर्या और भावनात्मक सहयोग अत्यंत आवश्यक हैं।

गृह विज्ञान और मानव विकास विषय किशोरों के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संतुलित पोषण, समय प्रबंधन, जीवन कौशल, मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता और पारिवारिक समन्वय के माध्यम से किशोरों को स्वस्थ और संतुलित जीवन की दिशा दी जा सकती है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि परिवार, विद्यालय, समाज और सरकार मिलकर किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाएँ। यदि सही दिशा और सहयोग प्रदान किया जाए, तो डिजिटल युग की चुनौतियों को अवसरों में बदला जा सकता है।

संदर्भ सूची (References) :

1. मानव विकास – डॉ. प्रेमलता पुजारी।
2. गृह विज्ञान एवं परिवार संसाधन प्रबंधन – एनसीईआरटी।
3. किशोरावस्था एवं मानसिक स्वास्थ्य – डॉ. आशा शर्मा।
4. WHO Report on Adolescent Mental Health.
5. UNICEF Digital Wellbeing Report.
6. Educational Psychology — S.S. Mathur.
7. Child Development and Family Relations — Hurlock.
8. भारतीय शिक्षा और मानसिक स्वास्थ्य अध्ययन रिपोर्ट।
9. साइबर मनोविज्ञान और किशोर व्यवहार – राष्ट्रीय शोध पत्रिका।
10. डिजिटल युग और सामाजिक परिवर्तन – विश्वविद्यालय प्रकाशन।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed
& Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 188-194

प्राथमिक शिक्षा में सांस्कृतिक चेतना और मुण्डारी लोक साहित्य

डॉ. खातिर हेमरोम, TRL मुण्डारी विभाग
मारवाड़ी कॉलेज राँची, राँची विश्वविद्यालय, राँची।
सत्यनारायण मुण्डा, शोधार्थी
विश्वविद्यालय विभाग मुण्डारी, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

प्राथमिक शिक्षा में सांस्कृतिक चेतना और मुण्डारी लोक साहित्य :–

वर्तमान दौर में शिक्षा केवल पढ़ने लिखने या अक्षर ज्ञान तक सीमित नही बल्कि यह व्यक्ति के सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक विकास का भी माध्यम है। जिसके तहत वे अपनी भाषा, समाज की संस्कृति, परंपरा और नैतिक मूल्यों को भी नई पीढ़ी तक पहुंचाने का मध्याम है। प्राथमिक शिक्षा बच्चे की जीवन का आधार या उनकी प्रथम औपचारिक शिक्षा होती है। जहाँ से उनकी व्यक्ति, सोच और सामाजिक चेतना का विकास प्रारंभ होती है। इस स्तर पर बच्चों की बौद्धधिक शक्ति अच्छी होती है। जिस प्रकार कुम्हार कपरा को बनाने अच्छी तरह से मिटटी को मिलाकर सांचे में डालते है। वैसे ही बच्चों को उनकी मातृभाषा, संस्कृति और लोक परंपराओं से जोड़कर शिक्षा दी जाए तो उनमें आत्मविश्वास, होंसला और सांस्कृतिक चेतना का विकास होता है। मुण्डा समाज की लोक साहित्य जैसे लोक कथाएँ, लोकगीत, मुहावरे, कहावते पहेलियाँ, लोक नृत्य, मंत्र और पांरपरिक ज्ञान सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने में महत्वपूर्ण साबित होगी।

मुण्डारी लोक साहित्य, मुण्डा समाज का दर्पण है। जिसमें जन्म से लेकर मृत्यु तक के कर्म कण्डों का सामुहिक धरोहर है। जिसमें मुण्डा समाज की लोकगीत, लोक कथाएँ, मुहावरे, पहेलियाँ, कहावते, मंत्र रीति रिवाज और धार्मिक विश्वासों का संगम है। यह साहित्य मुण्डाओ की रहन–सहन, खान–पान आचार–विचार विधि विधानों से शोभित तथा मुण्डा जनसामान्य के जीवन दर्शन, प्रकृति प्रेम, सामूहिकता और नैतिक मूल्यों का परिचायक है। इसलिए प्राथमिक शिक्षा में मुण्डारी लोकसाहित्य को शामिल करने पर बच्चों में सांस्कृतिक चेतना का विकास होता है तथा वे अपनी पहचान और परंपराओं को समझ सके।

सांस्कृतिक चेतना का अर्थ :–

सांस्कृतिक चेतना का तात्पर्य अपनी भाषा, संस्कृति परंपरा रीति–रिवाजों और सामाजिक मूल्यों के प्रति जागरूकता, सहभागिता एवं सम्मान भावना से है। प्राथमिक स्तर पर सांस्कृति चेतना बच्चों को अपनी जड़ों से जोड़ती है। तथा विकास उसमें सामाजिक और नैतिक मूल्यों का करती है। जब अपनी संस्कृति को नजदीकी से देखेगें और सुनेगें तो उसकी शिक्षा में अधिक सहज, रोचक, रोमांचक और प्रभावशाली डालेगी।

मुण्डारी लोक साहित्य का परिचय मुण्डारी लोक साहित्य समझने से पहले लोक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान कृष्णा देव उपाध्याय लिखते है। 'लोक शब्द संस्कृति के लोककृत दर्शीने धतु से धंञ प्रत्यय करने पर निष्पन हुआ है। इस बात का अर्थ देखना होता है, जिसे लट लकार में अन्य पुरुष एक वचन देखना होता है।

अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। इस प्रकार यह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है। लोक कहलायेगा।[1]

इस प्रकार मुण्डारी लोक साहित्य भी मुण्डा समाज का दर्पण है। जो कि भारत देश में झारखण्ड, विहार, पश्चिम बंगाल, उडिसा, छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश, असम और अंडामन निकोबर अदि राज्यों में निवास करती है। मुण्डा समाज पितृसतात्मक हैं। पैतृक सम्पति पिता के बाद पुत्र को मिलता है। इस समाज में समगोत्रीय विवाह वर्जित हैं। इस समाज में एकाकी एवं संयुक्त दोनों तरह का परिवार मिलता है। बुजुर्ग व्यक्ति परिवार का मुखिया होता है। जन्म से मरण तक इन्हें कई संस्कारों से गुजरना पड़ता है। संस्कारों में जन्म संस्कार, छठी संस्कार, कर्ण–छेद संस्कार, विवाह संस्कार तथा मरण संस्कार प्रमुख हैं। कर्ण–छेद संस्कार का संपादन किये बगैर विवाह वर्जित होता है।

गाँव का मालिक मुण्डाश कहलाता है, जो गाँव के प्रशासन को ठीक ढंग से चलाने का कार्य करता हैं। तथा पाहन गाँव का धार्मिक प्रधान होता है जो गाँव के देवी देवताओ को अरदाना विनती कर समस्त गाँव के खुशहाली की कामना करता है, साथ ही रहन–सहन, आचार–विचार तथा पूजा–पाठ के विधि विधान इनके अपने हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत मुण्डा जनजाति को अनुसूचित जनजाति की सूची में सम्मिलित किया गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार मुण्डा जनजाति की जनसंख्या झारखण्ड में 18,17000 के लगभग है। इनकी अपनी भाषा साहित्य एवं संस्कृति है। मुण्डा जनजाति की भाषा मुण्डारी है, जो आस्ट्रो–एशियाटिक भाषा परिवार के अन्तर्गत आती है। मुण्डा लोग अपने को 'होड़ो' कहते है। 'होड़ो' का शब्दिक अर्थ है मानव या। इसी आधार पर ये अपनी भाषा को होड़ो जगर 'मुण्डा भाषा या वर्तमान मुण्डारी कहते हैं। मुण्डा भाषा के अन्तर्गत हो, संताली, खड़िया, असुरी, बिरहोरी आदियाँ आती हैं, जो हर दृष्टि से एक दूसरे से बहुत अधिक समानता रखती है।[2]

इसमें से झारखण्ड में 'अधिकतर साहित्य का विकास अंग्रेजो के अगमान से हुई है। मुण्डारी लोक साहित्य अति प्राचीन है। जिसक उल्लेख ऋग्वेद से भी पहले बताया गया है। लेकिन इसका मौखिक रूप में मुण्डा संस्कारों एवं व्यवहारों का कुछ अशं ऋग्वेद, रामयाण, महाभारत में मिलता है। मुण्डारी लोक साहित्य भी अपने अप में विशाल एवं काफी समृद्ध थी। इसका 83वी ई–पूर्व से पहले तक छोटानागपुर में मुण्डारी राजकीय भाषा हुआ करती थी। लेकिन कलांतर में आर्या नागवांसी शासन आने के साथ ही मुण्डाओं का समृद्धि राज्य तहस नश हो गई। लेकिन हजारो साल होने के बाद भी मुण्डारी संस्कृति का पीढ़ी दर पीढ़ी संदियों से वैसे का वैसा ही है। प्रसिद्ध विद्वावन लिखते है कि 'भारत में अंग्रेजी शासन युग में शासन और धर्म प्रचार की आवश्यकताओं एवं शेर, चीतों, जंगली जातियों विशिष्ट प्रथाओं और भिन्न–भिन्न संस्कृतियों के आश्चर्य जनक देश के आकर्षण ने लोकसाहित्य और संस्कृति के अध्ययन की ओर बिद्वानों की प्रेरित किया।'[3]

मुण्डारी का सबसे अधिक प्रचार प्रसार तो मिशनारियों के आगमान के साथ हुई है। और धीरे–धीरे लोक साहित्य का संकलन होना शुरू हुई और अभी तक बहुत ही अधिक लिखित साहित्य है। लेकिन फिर कम है। इसी दौर का एक जादुर गीत से समझते है।

रेलेए चलाओ डाइबर बाबुकिन
डबा ताबु रादिः ताना।

गोमके दिसुम मालिकि
जगह तम लिलामए तान।।
डबा तमअ रादिः ताना
साहु को सबै कोमेंए।
जगह तम लिलामएतान
रैति को दुबेए कोमेंए।।'[4]

अर्थात् इस गीत के माध्य से कहना चाह रहा है। कि जैसे अंग्रेज आने के बाद रेलगाड़ी, जमीन जैयद जैसे समान या जमीन का नियम कानून बदलने वाली है। वे कहा रहे हैं कि हे रेल चलाने वाले रेल का डाबा जंग लग रही है। तो साहुकार को डुंडोओ तथा देश चलाने वाले साहब आपकी जमीन को नीलम किया जा रहा है। इसलिए यहाँ पर रेती को बैठा दें।

मुण्डा लोकसाहित्य के संग्रह और नये साहित्य के सर्जन के प्रसंग में सामाजिक और निजी प्रत्यन अधिक सराहनीय और उत्साहवर्द्धक है। एक लम्बी अंतराल के बाद यह समाज नई चेतना के प्रभात में जग है। इन्होंने सामाजिक जागरण है समान ही साहित्य जागरण के लिए एक समिति की गठित की है। अनेक लेखकों ने अपने नये गीतों कविताओं और नटको से समाज को जगा रहे हैं।[5]

मुण्डारी लोक सादित्य का स्वरूप :

(1) **मुण्डारी लोकगीतों :–** प्रकृति के अनुरूप ही संस्कृति का विकास होता है और संस्कृति का सर्वोत्रम उपादान है संगीत। संगीत में समाहित है गायन, वादन और नर्थन। अप्रतिम है। झारखण्ड की प्रकृति और संस्कृति। यहाँ की आदिम संस्कृति में ही विधामान है संगीत की अनगिणा स्वर लहरियों। संगीत के बिना झारखण्ड निष्प्राण हैं। 'सेन गे सुसुन काजि गे दुरङ, डुरिगे दुमङ– अर्थात चलना ही नृत्य है बोलना ही संगीत और वक्ष व नितम्ब ही मांदर है। यह पुरानी कहावत मुण्डारी और सदानी की।(6)

मौसम के अनुसार मुण्डा गीतों के बहुत से भेद हो गये है। और सबके लय ताल आदि अलग–अलग है। सभी गीत अपने ही मौसम विशेष में गये जाते हैं। एक मौसम का गीत दूसरे मौसम में गाया जाना वार्जित है। और इसका नियम का पालन बड़े अनुशासन के साथ करते हैं। मौसम के अनुसार ही उन गीतो सम्बद्ध बाजों के ताल और नृत्य भी अलग–अलग हो गये है। जदूर, ओर जदूर, गेणा, चिट्टिद करम, जरगा, जापी, जतरा और शादी और प्रायः प्रत्येक प्रकार का गीत किसी न किसी प्रमुख पर्व से सम्बद्ध है।(7)

सरदूलध्बाः गीत जदुर
बा–गे–बा–गेबु हिआतिङः केन
बा–दो बासांतेरू आउआ कादा।
सुड़ा सांगेन गेबु चाकातिङः केना
सुड़ा सांगेन बोले बाइआ कादा।।
बा–दो बासांते आउआ कादा
जोलोम हासा गोम आदेर ताना।
सुड़ा सांगेन बोले बाइआ कादा
तापान इलि गोम आकिद ताना।।

दिने मुण्डि बोले तेबाः ताना
इलि मांडि बोले लिङगि ताना।
साराजोम बा–बोले सुड़ा सांगेन
बोंगा कोचा रे सिदुबा काना।।
दांगाड़ा–दांगिड़ि को दुति साड़ि
नावा–नावा होको तुसिङा काना।
हाड़ाम बुड़िआ को लांदा जागार
तापान इलि होको–नामा–कादा। (8)

अर्थात – इस गीत के मध्य से यह पाता चलता है। सरहुल–सरहुल कहा रहे थे लो अब तो बंसत ऋतु लाया है। एव पल्व पलव बोलेते थे तो बसंत लाया है। सरहुल पहुंचा है। तो तुम लीपने के लिए मिट्टी गुस्साई हो। हांड़िया भी तैयार है, जो खाना–पीने के साथ नाच गान तथा हॅसी मजक करते हुए आपस में प्रेम से रहेंगें।

(2) करम गीत :

करम् चण्डुः मुलुः लेन
करम् ओड़ाः साल बाल।
करम् बोंगा को धेआन धोरोम तन
हइ–जिलुः ककाे जोम् तन।।
करम् दरु को अगु लेदा
रच रेको बिद् केदा।
चुमन–सिन्दुरि धुना धूप केदा
करम् बोंगा पुंजी ओम को तन।।
कटब् कुड़ि को हिजुः लेना
चड़द चुड़द चुरिन् लेका।
करम् दरु को दुबे बियु ंकेद
लेलोः तनाःको चुरिन् लेका।।
कहनी गुरु कजि तन
सबेपेगो करम् कोतो।
करम् बोंगा पुजीः ओमा पेआ
बूढ़न सिंह दोरे–ए मनतिङ् तन।।(9)

अर्थात – इस गीत में कहा रहा है कि करम का चाँद निकाल आया और करमा की तैयारी घरो में जोरो से लगी हुई। करमा का ध्यान धोरोम के करण मास मछली खाना माना है करम का डाल जंगल से लाया और आँगन में गढ़ कर दुआन सिंदूर के साथ चुमावन हो रहा है। तथा उपवास लड़की लोग आकर करम पेड़ को गेर कर बैठ गए। और करमा का पूजा कर रहे लोगों से कवि कहा रहे हैं कि करम का डाल पकड़ लो इससे दान दौलत मदद मिलेगी!

(3) मागे :

तिसिङ दोंगा बुरू बोंगाले
बिदा केंद मेया दो
बिदा केद मेया दो
हाइरि हाए ——————।

लाइरू हसु, बोओ हसुः
आलोम नम लेया दो
आलोम नम लेया दो
हाइरि हाए——— ।

रिंडिञ तेवन कड़ि तोवले
बिदा केद मेया दो
विदा केद मेया दो
हइरि हाए ———।

अर्थात – इस गीत के माध्य से कहता है कि हे पहाड़ देवता आज हम लोग–पुस माना रहे है। इसके साथ ही आपके लिए जो पूजा सामग्री है वे सभी उदर–पंइचा करके हम लोग जोगाड़ कर के अर्पित किये। इस लिए अब से हम लोग का पेट दर्द न हो और हम लोग खुशहाली से रहे।

(2) कहावते : कहावत को 'मुण्डारी' में काजि रअ जुगुतुको बोलते है, इसमें पुरखों की कही महत्वपूर्ण शक्तित स्वरूप शब्दों को वर्तमान पिड़ि की बच्चों को कहा का एहसास होगा और अपनी भौतिक अभौतिक कलाओं के साथ मानव जीवन का उत्सव भारीगी।

(1) अपिर तन चेडे कुदव :– उड़ती पंछी को दौंड़ना।
(2) एटअरू निअरू देअ रे गुगुचुरू :– दुसरे के भरोसे रहना।
(3) रअएरू कुला काए हुअगा :– गरजने वाले बाघ नहीं कटेगा।
(4) मेंनअरू रेदो हटअरू हटअरू बनोरू रेदो बटअरू बटअरू :– रहने पर थाली थाली न रहने कुछ नहीं।

(3) पहेलियाँ :– पहेली को मुण्डारी में लुतुम कहनि बोलते हैं, इसके मध्यम से समाज की हर तबके के लोगों को चह बुढ़े बच्चे है इसके बौद्धिक क्षमता विकसित होती है जिस प्रकार इन्टरव्यू में होती है वे पहले से सिख लेंगे।

(1) मियद् दारु रे सुई गे सुई :– एक पेड़ में केवल सूई ही सूई।
(फुटकल मोए/फुटकल की कली)
(2) मिंडि दिरिङ ककरा कोकोरो :– भेड़ की सींग खाली खोली। – जोजो/इमली
(3) दुबमेअ डेम्का दारुइञ् देगा :– बेटा डेमका, तुम बैठो, मैं पेड़ पर चढ़ता हूँ।
(हड़द बोओरू/गेंठी कंद)
(4) ती रे हरियर, मोचा रे अरअः :– हाथ में हरा, मुँह में लाल। (पान/पान)
(5) मियद् होड़ो लाईः तेएः सेनेअ :– एक आदमी है जो पेट से चलता है। बिङ/सांप

(4) **मुहावरा :-** अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है। परस्पर बातचीत करना या सवाल जबाव करना। अंग्रेजी में : 'इडियम' शब्द का प्रयोग मिलता है।

मुण्डारी में मुहावरा को जोनोका कजिको बोलते हैं।[10]

(1) मोचा बइ :– मुँह बनाना।

(2) जी सेनोः :– जान जाना।

(3) अपिर तन चेंड़े कुदव :– उड़ती चिडियों का पीछा करना।

(4) दअः लेका टका दूल :– पानी की तरह रुपया बहाना।

(5) मदुकम लेका होरो :– महुआ जैसा जोहना।[11]

प्राथमिक शिक्षा में मुण्डारी लोक साहित्य का महत्व :-

(1) मातृभाषा आधारित शिक्षा को बढ़ाना :-

प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा देने से बच्चे विषयों को सरलता से समझ सकते हैं। मुण्डारी लोकसाहित्य से बच्चों के लिए शिक्षा को सहज और रोमचक बनेगा।

(2) सांस्कृतिक पहचान की संरक्षण :-

लोक साहित्य के माध्यम से बच्चों अपने समाज की परंपराओं, रिति रिवाजों और इतिहास से परिचित होती है। इससे उनमें संस्कृति पहचन कर गर्व की भावना उत्पन्न होती है।

(3) नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का विश्वास :-

लोक कथाएँ और लोकगीतों से बच्चों में ईमानदारी सहयोग अनुशासन और सामूहिकता जैसे गुणो का विकास होगी।

(4) रचनात्मकता और अभिव्यक्ति का विकास :-

लोकगीतो पहेलियों और कहावते मुहावरा बच्चों की भाषा क्षमता स्मरण शक्ति और कल्पना शक्ति को बढ़ाती है।

(5) प्रकृति और पर्यावरण के प्रति जागरूकता :-

सरना का पेड़ नहीं काटेंगे, पेड़ काटेगें तो एक हाँथ के उपर और उसके उपर पत्ता ढकाने के बाद पत्थर रख देंगे, जंगल में आग न लगाने दे, जंगल को अंधाधुन्ध न काटने दे।

चुनौतियाँ :-

- आधुनिक शिक्षा प्रणाली में स्थानीय भाषाओं की उपेक्षा।
- मुण्डारी लोक साहित्य की लिखित रूप में सीमित उपलब्ध होना।
- मातृ भाषा आधारित शिक्षण सामग्री की कमी।
- नई पीढ़ी का पांरपरिक संस्कृति से दूर होना।
- वर्तमान पीढ़ी के बच्चों को मोबाइल में प्रीपायर, सॉर्ट विडीयो का लत लगना।

शिक्षण में उपयोग के उपाय :-

- प्राथमिक विद्यालयों में मुण्डारी और लोक साहित्य को मातृभाषा के रूप में पाठयक्रम में शामिल किया जाए।
- लोक कथाओं, लोकगीतों और कहावतो मुहावरों का अधिक से अधिक संकलन एवं प्रकाशन किया जाए।

- **NEP-2020** के आधार पर शिक्षकों को मातृभाषा आधारित शिक्षण का प्रशिक्षण दिया जाए।
- सांस्कृतिक कार्यक्रमों और लोक उत्सवो के माध्य से बच्चों को अपनी संस्कृति को जोड़ा जाए।

निष्कर्ष :-

प्राथमिक शिक्षा में सांस्कृतिक चेतना और लोकसाहित्य का समावेश से बच्चों के सर्वागीण विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह न केवल शिक्षा को सरल और प्रभावी बनाता है। बल्कि बच्चों में सांस्कृतिक चेतना आत्म गौरव और नैतिक मूल्यों को भी विकास करता है। अपनी कला, संस्कृति रहन–सहन, खान–पान, रिति रिवाज, नेग दस्तुर, गीत संगीत के माध्य से भी सांस्कृतिक चेतना जागृत होती है। मुण्डारी लोक साहित्य मुण्डा समाज की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है। जिसे प्राथमिक शिक्षा के माध्यम से संरक्षित और विकसित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची :-

1. लोक साहित्य की भूमिका– कृष्णा देव उपाध्याय, पृष्ठ – 9
2. सांस्कृतिक चेतना खण्ड–3, डॉ. रामदयाल मुंडा, पृष्ठ –16–17
3. मुण्डा लोक कथाएँ – श्री जगदीश त्रिगुणयत, पृष्ठ – 4
4. जादुर गीत – चाड़ा मुण्डा बारुबेड़ा बुड़मू, राँची।
5. बाँसुरी बाज रही – श्री जगदीश त्रिगुणयत, पृष्ठ–20
6. झारखण्ड का लोक संगीत – डा. गिरिधारी राम गौझू गिरिराज, पृष्ठ–10
7. बाँसुरी बाज रही – श्री जगदीश त्रिगुणयत, पृष्ठ–30
8. ससंङ बा पीले फुल – काण्डे मुण्डा, पृष्ठ– 9
9. बाँसुरी बाज रही – श्री जगदीश त्रिगुणयत, पृष्ठ–260
10. मुण्डारी मुहावरा कोश – डा. मनसिद्ध बड़ायद, पृष्ठ–5
11. मुण्डारी मुहावरा कोश – डा. मनसिद्ध बड़ायद, पृष्ठ–7

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 195-198

Sultanpur National Park as a Wintering Ground : Linking the Indo-Gangetic Plains with Himalayan Avian Migration Routes

Seema Kumari
Department of Zoology, Dronacharya Government College, Gurugram 122001, India
Umesh Kumar
Department of Zoology, MNS Government College, Bhiwani 127021, India

Abstract :

Sultanpur National Park is an important wetland ecosystem in the Indo-Gangetic plains that supports diverse resident and migratory bird species. This study examines its role as a wintering and stopover habitat for birds associated with Himalayan and trans-Himalayan migration routes, particularly along the Central Asian Flyway. Field observations, literature review, and secondary data were used to assess avian diversity, migration linkages, ecological importance, and conservation threats. The park supports migratory species belonging to major orders such as Anseriformes, Charadriiformes, Passeriformes, Ciconiiformes, Pelecaniformes, Apodiformes, and Podicipediformes. However, habitat degradation, water scarcity, pollution, tourism pressure, and urban expansion threaten its ecological integrity. Strengthened monitoring, habitat management, and India–Nepal cooperation are needed to conserve migratory birds and their interconnected wetland habitats.

Keywords : Sultanpur National Park; migratory birds; Central Asian Flyway; wetland conservation; Himalayan migration; anthropogenic pressure.

1. Introduction :

Bird migration enables species to use seasonal resources across distant geographic regions. Wetlands are especially important in this process because they provide feeding, resting, breeding, and wintering habitats for resident and migratory birds. The Himalayan region of northern India and Nepal functions as an important breeding and transit zone for several migratory species. Many of these birds move along the Central Asian Flyway, connecting high-altitude breeding areas with lowland wintering habitats.

Sultanpur National Park, located in Haryana within the Indo-Gangetic plains, is a significant

wetland known for its avian diversity. During winter, it attracts migratory birds such as the bar-headed goose (Anser indicus), northern pintail (Anas acuta), common teal (Anas crecca), and several waders and wetland-associated birds. This study highlights the role of Sultanpur National Park as a wintering site and explores its relevance in Himalayan-linked migration and regional conservation planning.

2. Materials and Methods

2.1 Study Area :

Sultanpur National Park is located at approximately 28°28? N latitude and 76°53? E longitude in Haryana, India (Fig.1). The park contains a core wetland area of about 143 ha, mainly consisting of low-lying marshes. Sultanpur Lake is seasonal, with water levels highest during the monsoon and winter and lowest during summer. These hydrological fluctuations strongly influence habitat availability and bird diversity.

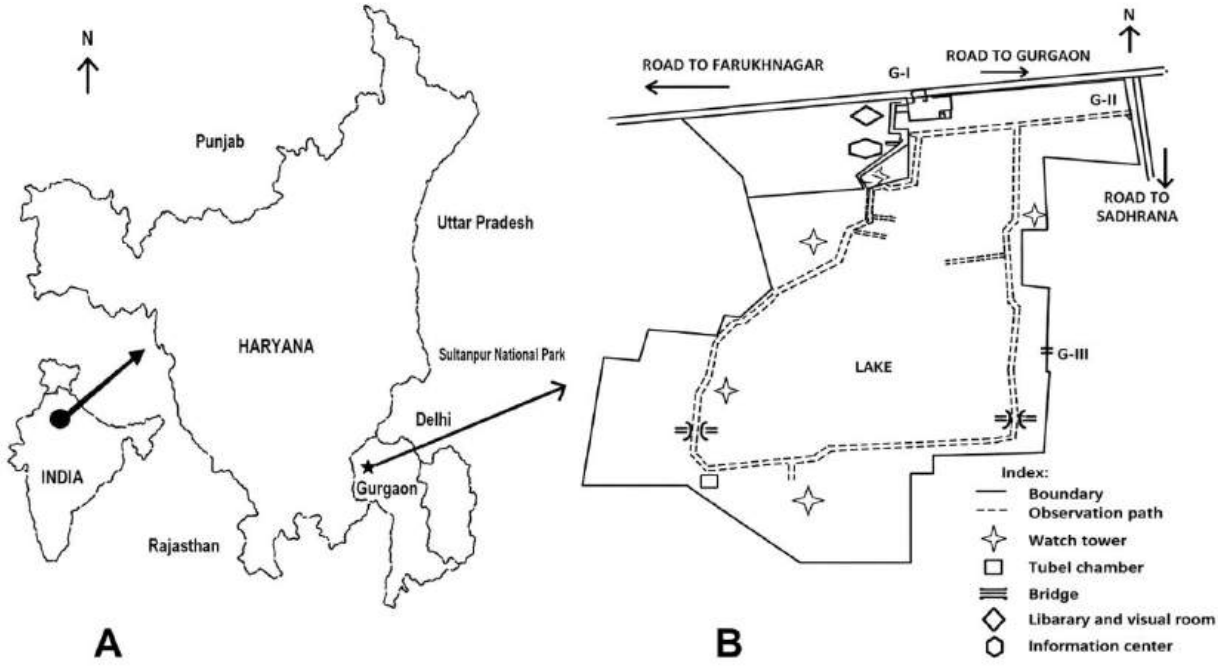


Figure 1. (a) Map showing the location of the study site in Haryana, India. (b) Diagrammatic representation of Sultanpur National Park.

2.2 Data Collection and Sampling :

Field observations were conducted during the winter months from November to February, with fortnightly surveys wherever possible. Birds were identified using standard field guides and published literature. Secondary information was obtained from research articles, forest department records, and biodiversity databases.

Avian diversity was assessed using point count and transect walk methods. Species richness, diversity, and migratory status were evaluated, and observations were compared with known Himalayan and Central Asian Flyway migration patterns.

3. Results and Discussion :

3.1 Avian Diversity :

Sultanpur National Park supports diverse avian groups, including waterfowl, waders, raptors, and wetland-associated passerines. Common winter visitors include bar-headed geese, northern shovelers, gadwalls, common teals, pintails, black-winged stilts, sandpipers, marsh harriers, and kingfishers. Migratory birds from the orders Anseriformes, Charadriiformes, Passeriformes, Ciconiiformes, Pelecaniformes, Apodiformes, and Podicipediformes form an important component of the park's wetland bird diversity.

3.2 Migration Linkages :

Many bird species recorded in Sultanpur are associated with Himalayan and trans-Himalayan breeding regions. Their movement to lowland wetlands during winter reflects ecological connectivity between the Himalayas, Nepal, northern India, and the Indo-Gangetic plains. Sultanpur therefore functions as an important stopover and wintering habitat within the Central Asian Flyway.

3.3 Ecological Importance :

The park provides essential resources such as aquatic vegetation, insects, molluscs, fish, amphibians, roosting sites, and shelter from predators. These resources support both resident and migratory birds during winter. Thus, Sultanpur contributes not only to local biodiversity but also to the larger migratory network linking Himalayan ecosystems with lowland wetlands.

3.4 Threats and Conservation Concerns :

Despite its ecological value, Sultanpur National Park faces increasing pressure from urbanization, water scarcity, pollution, tourism, and habitat degradation. Seasonal drying of the lake may reduce feeding and roosting habitats, while pollution and human disturbance can affect wetland productivity and bird survival.

3.5 Scope for India–Nepal Cooperation :

Because several migratory birds connect Himalayan and lowland habitats across political boundaries, coordinated conservation between India and Nepal is important. Joint monitoring, migration tracking, data sharing, habitat management, and policy coordination can strengthen conservation of migratory birds and wetland ecosystems.

4. Conclusion :

Sultanpur National Park is an important wintering and stopover habitat for migratory birds linked to Himalayan and trans-Himalayan ecosystems. Its location within the Central Asian Flyway makes it significant for regional and global bird migration. However, anthropogenic pressures threaten its ecological stability. Conservation actions should focus on habitat protection, water management, pollution control, regulated tourism, and transboundary cooperation between India and Nepal.

References :

- Bassi, N., Kumar, M. D., Sharma, A., & Pardhasaradhi, P. (2014). Status of wetlands in India: A review of extent, ecosystem benefits, threats and management strategies. Journal of Hydrology: Regional Studies, 2, 1–19.
- BirdLife International. (2023). Central Asian Flyway factsheet.
- Chopra, G., Tyor, A. K., Kumari, S., & Rai, D. (2012). Status and conservation of avian fauna of Sultanpur National Park, Gurgaon, Haryana, India. Journal of Applied and Natural Science, 4(2), 207–213.
- Chopra, G., Tyor, A. K., & Kumari, S. (2013). A study on wetland avian species of Sultanpur National Park, Gurugram, Gurgaon, Haryana, India. Journal of Research in Biology, 3(5), 1032–1040.
- Grimmett, R., Inskipp, C., & Inskipp, T. (2011). Birds of the Indian subcontinent. Oxford University Press.
- Jamwal, P. S., Chandan, P., Rattan, R., Anand, A., Kannan, P. M., & Parsons, M. H. (2017). Survey of avifauna of the Gharana Wetland Reserve: Implications for conservation in a semi-arid agricultural setting on the Indo-Pakistan border. BMC Zoology, 2, 7. https://doi.org/10.1186/40850-017-0016-z
- Jha, K. K., & McKinley, C. R. (2015). Composition and dynamics of migratory and resident avian populations in wintering wetlands from northern India. Notulae Scientia Biologicae, 7(1), 1–15.
- Kumar, A., Sati, J. P., Tak, P. C., & Alfred, J. R. B. (2005). Handbook on Indian wetland birds and their conservation. Zoological Survey of India.
- Kumar, P., & Gupta, S. K. (2013). Status of wetland birds of Chhilchhila Wildlife Sanctuary, Haryana, India. Journal of Threatened Taxa, 5(5), 3969–3976.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 199-202

क्षेत्रीय भाषाओं का विकास और संरक्षण
(भारत मध्य प्रदेश के निमाड़ अंचल के बारेली भाषा के संदर्भ में)

डॉ. सेवन्ती डावर
सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय कन्या महाविद्यालय, जिला–खरगोन (म.प्र.) भारत।

प्रस्तावना –

भाषा वैज्ञानिक जॉर्ज ग्रियर्सन के 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' – सन् 1907 से आज तक मध्य–प्रदेश की भाषाओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता हैं, कि यहाँ की 87 आदिवासी भाषाओं में से केवल 18 भाषाएँ प्रचलन में है। अनेक भाषाएँ विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्त होने के निकट हैं। डॉ. हीरालाल शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'जनभाषा साहित्य' में जो तथ्य प्रस्तुत किए उन से यह ज्ञात होता हैं कि सन् 1967 में अविभाजित मध्यप्रदेश के बस्तर जिले में मुंडा परिवार की 'गदबा' समाप्त हो गयी। 'निहाल' और 'नंगेसिया' भी शताब्दी के अन्त तक विलुप्त हो गयी। मध्यप्रदेश में आदिवासी भाषाओं के संरक्षण की दिशा में गंभीर प्रयासों का अभाव देखा गया है।

मध्य–प्रदेश के निमाड़ अँचल की भीली समूह की बोलियो के संरक्षण के अभाव में विलुप्त होने के कगार पर हैं। निमाड़ की 'निमाड़ी' उनको तीव्रता से अपदस्थ कर रही है। अनेक भाषा विज्ञानियों ने मध्य–प्रदेश को भाषा और बोलियों का भण्डार कहा है।

मध्य–प्रदेश की आदिवासी जनभाषाओं की वाचिक परम्परा का अनुशीलन उनके लोक साहिल्य, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संगठन का अनुशीलन है। भाषा के विविध प्रयोंगों एवं रूपों का शैक्षिक, आर्थिक, राजनैतिक असमानताओं से गहन संबंध है। निमाड़ अँचल की 'निमाड़' वर्तमान में भिलाली, बारेली राठवी पाली और पटली सहित भीली समूह की अन्य जन बोलियों को तीव्रता से अपदस्थ कर रही है।

भीली एवं बारेली :–

भील आदिवासी समुदाय की भाषा भीली का क्षेत्र भीलों के अधिवासों से संबंधित है। भील मुख्यतः गुजरात और मध्य–प्रदेश के भागों में निवास करते हैं। 'भीली' मध्य–प्रदेश के धार एवं झाबुआ में प्रमुख रूप से और अन्य क्षेत्रों में गौण रूप में प्रचलित है। मध्य–प्रदेश के पश्चिमी भू–भाग से भीलों का निमाड़ अँचल में प्रव्रजन हुआ। ये निमाड़ के सघन वनांचलों में आकर घने जंगलों में 'नवाड़' की भूमि पर बस गये। भीली भाषासमूह की भिलाली बारेली, राठ्वी एवं पाली का व्यवहारकर्त्ता आदिवासी समाज निमाड़ के दूरस्थ अँचलों में शताब्दियों से निवासरत है।

निमाड़ अँचल की बारेला जनजाति :–

बारेला' भीलों की एक उपजाति है। 'बारेला' शब्द का शाब्दिक अर्थ है– 'बा' अर्थात् 'बाहर से', तथा 'रेला' का अर्थ 'समूह' है, अतः बाहर से आया समूह। बारेली 'गाथाओं' वार्ताओं' में पृथ्वी के निर्माण का और मानव जाति

की उत्पत्ति का उल्लेख आया है, पृथ्वी के निर्माण के बाद मानव जाति यत्र तत्र निवास करने लगी। जब–कभी मानव परिवार एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसने लगे, वही स्थान' बारेला' नाम स्थानीय लोगों द्वारा दिया गया है। भारत शासन द्वारा किए जाने वाले जनगणना में बारेला को भील जाति के संवर्ग जाति के अन्तर्गत समावेश किया गया है।

बारेली लोकसाहित्य के विविध आयाम निम्नानुसार है :–

1. लोकगीत 2. लोककथा 3. लोकगाथा 4. लोगवार्ता 5. लोकोक्तियाँ एवं मुहावरें 6. टोने–टोटके।

1. लोकगीत :–

बारेला समुदाय में लोकगीतों के बिना किसी कार्य को पूर्ण नहीं किया जाता है। बारेली लोकगीतों में अपने समुदाय के सहज सरल भावों की अभिव्यक्ति होती है। बारेली लोकगीतों में गरबा गीत, नवाई गीत, दिवासा गीत, दिवाली गीत, विवाह गीत, ईंदल गीत, भगोरिया गीत, होली गीत, आदि गीत गाये जाते हैं।

गरबा गीत –

'गोर्बो□ म्यारो□ काका–काकी ने घोर गौर्बो
गोरबो□ म्यारो□ रोगीलो गोरेबो,
'गोरबो□ मारो□ दादा–भाभी ने घोर गोर्बो
गोर्बो□ मारो□ रोगीलो गोर्बो,
गोरबो□ म्यारो□ मामा–मामी ने घोर गोरेबो
गोरबो□ मारो□ रोगीलो गोर्बो,
गोरेबो□ मारो□ आया–बाबा ने घोर गोर्बो
गोरेबो□ मारो□ रोगीलो गोर्बो।

इंदल गीत :–

पीते वियों लोटो जोले भोर्यो
आमू डालू पाणी लेणे चाल्या रे,
काचो सूते सूती दे दो,
चोटे दिने चोडी गोयौ
कुवार्यौ भायौ
कोटे दिने काटी दे दो
कुवार्यौ भायौ
चोटे दिने झेली लेदो
कुवार्यौ भायौ

बारेली लोक कथाएँ :–

कथा साधारणतया एक देश, जनपद, प्रान्त, जाति अथवा राष्ट्र तक ही सीमित रहती है। किचिंत हेर–फेर के साथ एक छोटी सी लोक कथा भी सर्वत्र प्रचलित मिलती है। बारेली लोककथाएँ सरल तथा सीधी शैली में उपलब्ध होती है। ये कथाएँ गाँव के वृद्धजनों के द्वारा सुनाई जाती है। महिलाएँ एवं बच्चों का समूह कथाएँ सुनने को सदैव लाला....यित रहते हैं। कथा के दौरान सुनने वालों में से एक हुंकारा अर्थात बीच में हूं, हूं करता हैं और

कहानी अबाध गति से अन्त तक कहते रहते हैं। प्रचलित बारेली लोककथाएँ, 1 धोक्कान एने मुक्को' 2.'उन्दरी एने उन्दरू' 3 'दानोन फोल' 4 राजा एने राणी 5 'मुर एने खाळड़ावी' 6 गुळळो पानी 7 डाहवाळू नाहार 8 आदलू चाँद।

लोकगाथा :–

बारेली लोकगाथाएँ गायन शैली में प्रस्तुत की जाती है। वाद्ययंत्र ढाक बजाकर गाथा की कड़ी दर कड़ी गायी जाती है। बारेली गाथाओं में मानव जीवन की सम्पूर्ण गाथा का वर्णन मिलता है। यह गाथाएँ रात भर गायी जाती है। बारेली लोकगाथाओं में' 'भोगवाराणी जोसाकुवारी'' रेवा गुवाव, रेवलु कोबाड़ी आदि लम्बी गाथाएँ है।

लोकवार्ता :–

लोकसाहित्य में लोकवार्ता के प्रयोग का श्रेय डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल को हैं। हिन्दी में यह शब्द व्यापक स्वीकृति प्राप्त कर चुका है। प्राचीन समय से आदिवासी अपनी परम्परा और संस्कृति का परिचय वार्तालाप के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करते आये हैं।

बारेली में वार्ता को 'वातरा' कहा जाता है। 'बारेला' आदिवासी समुदाय के लोक साहित्य में 'लोकवार्ता' का महत्वपूर्ण स्थान है। लोकवार्ताएँ लम्बी होती है। जिसे बिना रूके निरन्तर एक ही व्यक्ति द्वारा कहीं जाती है। बारेली में लोकवार्ता को 'पुडू' कहा जाता है। बारेली में 'छाकोन् पुडू' व 'झोगड़ान पुडू' दाहड़ान् पुडू' आदि प्रचलित है।

लोकोक्तियाँ एवं मुहावरें :–

बारेली कहावतें और लोकोक्तियाँ बोलचाल व व्यवहारिकता में समाहित है। बारेली में इसे ''छुडेवणाय कहानी'' कहा जाता है। और कहावतें को 'कोवाड़ा' कहा जाता हैं बारेली लोकसाहित्य में बारेली कहावतें, मुहावरें, व पहेलियाँ भी मौखिक परम्परा में प्रचलित है।

बारेली मूल की पहेलियाँ :–

1. ''राजान् घोर, राणी नी, राणीन घोर राजा नी, चौ काय?''
   उत्तर :– बाहरू एने बाहरी।
2. डुबती–कुकड़ी, डुबती जाय, नौ सौ आडा मेकती जाय, चौ काय?
   उत्तर :– सुई और धागा।
3. बुकडा गैर दोम, कुडियों धुवीन पी जाम, चौ काय?
   उत्तर :– माहाव।
4. धोवळ्या बुल्योन बारेखालड़ा, चौ काय?
   उत्तर :– दोंगवी।
5. चालती बायोर घुघरी वेरे। चौ काय?
   उत्तर :– बुकड़ी।

बारेली मूल की कहावतें :–

1. तारी–मारी नी जाणो।
2. आंधारो होय जो।
3. आद्ला रूटा पोर दाळ झेले।

4. हाडा माँ मुँय घालणो।
5. माने ति देव नी माने ति दोगडू।
6. कानकेड़ा लेणो।
7. चिलड़ान धाके ढाटी नी छुड़नो।
8. जोणे ची जाणे वांजाय काय जाणे।
9. दीवा तोले आंदारो
10. तीस लागेती कुँवू खुदे।

बारेला समुदाय में प्रचलित टोने-टोटके व मंत्र :-

जनजातियों के समान बारेलाओं में भी आधिब्याधि के समय मंत्र झाड़ फूँक, टोटके आदि का प्रचलन है। अनेक टोने–टोटके व मंत्र विभिन्न गाँवों में भिन्न–भिन्न रूपों में जिव्हा पर सुरक्षित हैं इनका प्रयोग बड़वे और पुजारे करते हैं। कुछ बीमारियों के टोटके निम्नानुसार है :–

1. मेहर चांदा (बड़ी फुंसी)
2. घडसू उतारणेन (साँप का विष उतारना)
3. आँखठ्ी उतारणेन (जला हुआ ठीक करना)
4. विच्छु उतारणेन (बिच्छु उतारणेन)
5. आद्लो मुडळो उतारणेन (आधा सिर दर्द ठीक करना)
6. सेरी उतारणेन (बुखार ठीक करने का मंत्र)

निष्कर्ष :-

'बारेली' निमाड़ अँचल के बारेला समुदाय की बोली है। यह भीली की एक उपभाषा है। निमाड़ अँचल के बड़वानी जिले में 80 प्रतिशत जनसंख्या बारेला है। इनका प्रव्रजन नर्मदा पार के गुजरात से हुआ हैं। क्रमशः बड़वानी, खरगोन एवं खण्डवा जिलों में सदियों से बसते रहे हैं।

शब्द कुंजी :- लोक संस्कृति, सांस्कृतिक महत्व, लोक भाषा साहित्य, जनजातियाँ, मौखिक परम्पराएँ।

संदर्भ सूची :-

1. भीली का भाषाशास्त्र – डॉ. नेमिचंद जैन।
2. लोकसाहित्य की भूमिका –कृष्णदेव उपाध्याय।
3. मध्य–प्रदेश की जनजातियाँ – डॉ. शिव कुमार तिवारी।
4. निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास– पं. रामनाराणण उपाध्याय।
5. लोक साहित्य और संस्कृति – दिनेश्वर प्रसाद।
6. हिन्दी और उसकी बोलियाँ –डॉ. दीपकचन्द्र जैन।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 203-206

पाली और प्राकृत भाषाओं का नेपाल में संरक्षण

डॉ. शबनम खान
प्राध्यापक, हिन्दी
माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इंदौर (म.प्र.), भारत।

सारांश :

पाली और प्राकृत भारतीय आर्य भाषाओं के विकासक्रम की अत्यंत महत्वपूर्ण भाषाएँ हैं। पाली भाषा मुख्यतः बौद्ध धर्म के साहित्य की भाषा रही है, जबकि प्राकृत भाषाएँ जैन, बौद्ध तथा लौकिक साहित्य की प्रमुख अभिव्यक्ति रही हैं। नेपाल भारतीय उपमहाद्वीप का ऐसा सांस्कृतिक क्षेत्र है जहाँ बौद्ध एवं हिन्दू परम्पराओं का दीर्घकालीन सहअस्तित्व रहा है। इस कारण यहाँ पाली एवं प्राकृत भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन और अध्ययन की समृद्ध परम्परा विकसित हुई। नेपाल में उपलब्ध बौद्ध विहारों, प्राचीन अभिलेखों, ताम्रपत्रों, हस्तलिखित ग्रन्थों तथा धार्मिक संस्थाओं ने इन भाषाओं को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों तथा सांस्कृतिक संगठनों द्वारा भी पाली और प्राकृत के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। प्रस्तुत शोध–पत्र में नेपाल में पाली और प्राकृत भाषाओं के संरक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वर्तमान स्थिति तथा चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : पाली, प्राकृत, नेपाल, संरक्षण, बौद्ध साहित्य, सांस्कृतिक विरासत।

भूमिका :

भाषा किसी भी समाज की सांस्कृतिक स्मृति और ऐतिहासिक चेतना की संवाहक होती है। पाली और प्राकृत भाषाएँ भारतीय भाषिक परम्परा की महत्वपूर्ण धरोहर हैं। इन भाषाओं में न केवल धार्मिक और दार्शनिक साहित्य की रचना हुई, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक जीवन का भी विस्तृत चित्रण मिलता है। नेपाल का सांस्कृतिक इतिहास भारतीय सभ्यता से गहराई से जुड़ा हुआ है। भगवान बुद्ध का जन्मस्थल लुम्बिनी वर्तमान नेपाल में स्थित है। इस कारण नेपाल प्राचीन काल से ही बौद्ध अध्ययन और साधना का प्रमुख केन्द्र रहा है। बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ–साथ पाली भाषा भी नेपाल में पहुँची और वहाँ के धार्मिक तथा शैक्षणिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई।

प्राकृत भाषाओं का प्रभाव भी नेपाल की सांस्कृतिक संरचना में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। नेपाल में प्राप्त अनेक अभिलेखों, शिलालेखों तथा हस्तलिखित ग्रन्थों में प्राकृत के स्वरूप और उसके प्रभाव के प्रमाण मिलते हैं। नेपाल के विद्वानों और धार्मिक समुदायों ने इन भाषाओं की अमूल्य विरासत को सुरक्षित रखने में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

शोध के उद्देश्य :

1. नेपाल में पाली भाषा के संरक्षण की ऐतिहासिक परम्परा का अध्ययन करना।

2. नेपाल में प्राकृत भाषाओं की उपस्थिति एवं संरक्षण की स्थिति का विश्लेषण करना।
3. बौद्ध एवं अन्य धार्मिक संस्थाओं की भूमिका का मूल्यांकन करना।
4. पाली एवं प्राकृत भाषाओं के संरक्षण में आधुनिक शैक्षणिक संस्थाओं के योगदान का अध्ययन करना।
5. वर्तमान चुनौतियों एवं संभावित समाधानों पर विचार प्रस्तुत करना।

नेपाल में पाली भाषा का ऐतिहासिक विकास :

पाली भाषा बौद्ध धर्म की प्रमुख साहित्यिक भाषा रही है। त्रिपिटक सहित बौद्ध धर्म के अधिकांश प्राचीन ग्रन्थ इसी भाषा में रचित हैं। नेपाल में बौद्ध धर्म के आगमन के साथ पाली साहित्य का भी प्रवेश हुआ।

नेपाल के अनेक बौद्ध विहारों और मठों में पाली ग्रन्थों का संरक्षण किया गया। विशेष रूप से काठमांडू घाटी के विहारों में अनेक प्राचीन पांडुलिपियाँ सुरक्षित रखी गईं। मध्यकाल में नेपाल बौद्ध अध्ययन का प्रमुख केन्द्र बन गया, जहाँ भारत और तिब्बत से अनेक विद्वान अध्ययन एवं शोध हेतु आते थे।

नेपाल के बौद्ध भिक्षुओं ने पाली ग्रन्थों का अध्ययन, प्रतिलिपि निर्माण तथा संरक्षण किया। इससे पाली साहित्य की अनेक दुर्लभ कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं। नेपाल के पुस्तकालयों में संरक्षित पांडुलिपियाँ विश्व बौद्ध साहित्य की अमूल्य निधि मानी जाती हैं।

नेपाल में प्राकृत भाषाओं की परम्परा :

प्राकृत भाषाएँ संस्कृत के समानांतर विकसित हुई जनभाषाएँ थीं। इनका प्रयोग धार्मिक, साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रों में व्यापक रूप से किया जाता था। नेपाल में प्राप्त प्राचीन अभिलेखों और सांस्कृतिक अवशेषों में प्राकृत के प्रभाव के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं।

नेपाल के प्रारम्भिक शिलालेखों में प्राकृत भाषा और उसकी भाषिक विशेषताओं का प्रभाव देखा जा सकता है। व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्कों के माध्यम से प्राकृत भाषाओं का नेपाल में प्रसार हुआ। जैन और बौद्ध परम्पराओं के साहित्यिक सम्पर्क ने भी प्राकृत को नेपाल में प्रतिष्ठा प्रदान की।

यद्यपि नेपाल में प्राकृत का स्वतंत्र साहित्यिक विकास अपेक्षाकृत सीमित रहा, फिर भी वहाँ के धार्मिक साहित्य, अभिलेखों तथा लोकभाषाओं पर उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

नेपाल की सांस्कृतिक संस्थाओं की भूमिका :

नेपाल में पाली और प्राकृत भाषाओं के संरक्षण में विभिन्न सांस्कृतिक एवं धार्मिक संस्थाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

काठमांडू, पाटन और भक्तपुर के प्राचीन बौद्ध विहार पाली ग्रन्थों के संरक्षण के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। इन संस्थाओं ने न केवल पांडुलिपियों को सुरक्षित रखा बल्कि उनके अध्ययन–अध्यापन की परम्परा को भी जीवित बनाए रखा।

नेपाल राष्ट्रीय अभिलेखागार, राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा विभिन्न शोध संस्थान प्राचीन पांडुलिपियों के संग्रह, संरक्षण और डिजिटलीकरण का कार्य कर रहे हैं। इससे दुर्लभ ग्रन्थों को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने में सहायता मिल रही है।

इसके अतिरिक्त अनेक धार्मिक संगठनों द्वारा पाली भाषा के प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा बौद्ध अध्ययन पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं, जिससे नई पीढ़ी में इन भाषाओं के प्रति रुचि विकसित हो रही है।

विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों का योगदान :

नेपाल के उच्च शिक्षा संस्थानों ने पाली और प्राकृत अध्ययन को विशेष महत्व दिया है। नेपाल के विभिन्न विश्वविद्यालयों में बौद्ध अध्ययन, प्राच्यविद्या तथा भाषा–विज्ञान से संबंधित विभाग इन भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

शोधार्थियों द्वारा पाली और प्राकृत ग्रन्थों का संपादन, अनुवाद तथा भाषिक विश्लेषण किया जा रहा है। अनेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में इन विषयों पर शोध प्रस्तुत किए जाते हैं।

डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग से पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण, ऑनलाइन अभिलेख निर्माण तथा ई–संसाधनों का विकास भी किया जा रहा है। इससे विश्वभर के शोधकर्ताओं को नेपाल में संरक्षित सामग्री तक पहुँच प्राप्त हो रही है।

संरक्षण की वर्तमान चुनौतियाँ :

यद्यपि नेपाल में पाली और प्राकृत भाषाओं के संरक्षण के लिए अनेक प्रयास किए जा रहे हैं, फिर भी कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियाँ विद्यमान हैं।

पहली चुनौती इन भाषाओं के अध्ययन में घटती हुई रुचि है। आधुनिक शिक्षा और रोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रमों के कारण विद्यार्थी पारंपरिक भाषाओं की ओर कम आकर्षित हो रहे हैं।

दूसरी चुनौती प्राचीन पांडुलिपियों के संरक्षण से संबंधित है। जलवायु, प्राकृतिक आपदाओं तथा संसाधनों की कमी के कारण अनेक पांडुलिपियाँ नष्ट होने के खतरे में हैं।

तीसरी चुनौती प्रशिक्षित विशेषज्ञों की कमी है। पाली और प्राकृत के विद्वानों की संख्या सीमित होती जा रही है, जिससे अनुसंधान और शिक्षण कार्य प्रभावित हो रहा है।

चौथी चुनौती वित्तीय संसाधनों की है। संरक्षण परियोजनाओं, डिजिटलीकरण तथा शोध कार्यों के लिए पर्याप्त आर्थिक सहयोग आवश्यक है।

संरक्षण के लिए आवश्यक उपाय :

पाली और प्राकृत भाषाओं के प्रभावी संरक्षण हेतु कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए जाने चाहिए :

1. विश्वविद्यालयों में पाली और प्राकृत अध्ययन के लिए विशेष विभाग स्थापित किए जाएँ।
2. प्राचीन पांडुलिपियों के संरक्षण और डिजिटलीकरण को प्राथमिकता दी जाए।
3. राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शोध परियोजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाए।
4. विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति और शोध अनुदान उपलब्ध कराए जाएँ।
5. बौद्ध विहारों और सांस्कृतिक संस्थाओं को संरक्षण कार्यों में सहयोग प्रदान किया जाए।
6. इन भाषाओं के साहित्य का आधुनिक भाषाओं में अनुवाद किया जाए ताकि सामान्य पाठकों तक उनकी पहुँच बढ़ सके।

निष्कर्ष :

पाली और प्राकृत भाषाएँ भारतीय एवं नेपाली सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य धरोहर हैं। नेपाल ने ऐतिहासिक रूप से इन भाषाओं के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बौद्ध विहारों, धार्मिक संस्थाओं, अभिलेखागारों तथा विश्वविद्यालयों के प्रयासों के कारण अनेक दुर्लभ ग्रन्थ और पांडुलिपियाँ आज सुरक्षित हैं।

वर्तमान समय में तकनीकी विकास और शैक्षणिक शोध के माध्यम से इन भाषाओं के संरक्षण की नई संभावनाएँ उत्पन्न हुई हैं। यद्यपि अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं, फिर भी संगठित प्रयासों, सरकारी सहयोग तथा शैक्षणिक प्रतिबद्धता के माध्यम से पाली और प्राकृत भाषाओं की इस महान विरासत को भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। नेपाल का योगदान इस दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक है।

संदर्भ सूची :

1. भिक्षु जगदीश कश्यप – पाली साहित्य का इतिहास।
2. भरत सिंह उपाध्याय – बौद्ध दर्शन तथा पाली साहित्य।
3. राहुल सांकृत्यायन – बौद्ध संस्कृति।
4. हजारीप्रसाद द्विवेदी – भारतीय संस्कृति के स्वरूप।
5. वासुदेवशरण अग्रवाल – प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य।
6. नेपाल राष्ट्रीय अभिलेखागार, काठमांडू की प्रकाशित शोध सामग्री।
7. नेपाल अकादमी द्वारा प्रकाशित भाषा एवं संस्कृति संबंधी शोध पत्रिकाएँ।
8. त्रिपिटक साहित्य एवं बौद्ध अध्ययन संबंधी विभिन्न शोध ग्रन्थ।
9. जैन एवं प्राकृत अध्ययन से संबंधित मानक संदर्भ ग्रन्थ।
10. प्राच्यविद्या एवं बौद्ध अध्ययन की शोध पत्रिकाएँ।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 207-210

Ecological Challenges and Conservation Strategies for Sustainable Harvesting of Himalayan Medicinal Herbs

Dr. Sharad Singh Lodhi
Assistant Professor, Department of Botany,
Mata Jijabai Govt PG Girls College, Indore, Madhya Pradesh, India

Abstract :

The Indian Himalayan Region (IHR) is a global biodiversity hotspot harboring an exceptionally high concentration of endemic medicinal and aromatic plants (MAPs). For centuries, these high-altitude herbs have formed the backbone of traditional medicine systems, including Ayurveda, Unani, and Amchi, while simultaneously sustaining the livelihoods of alpine indigenous communities. However, escalating global market demand, destructive wild-harvesting practices, habitat fragmentation, and climate change have pushed several high-value species to the brink of localized extinction. This article reviews the ecological consequences of unscientific extraction of critical Himalayan herbs such as Aconitum heterophyllum, Nardostachys jatamansi, and Ophiocordyceps sinensis. It evaluates the structural bottlenecks in current conservation frameworks and proposes an integrated multi-tier strategy. This strategy combines community-led sustainable harvesting protocols, Good Agricultural and Collection Practices (GACP), molecular markers for genetic diversity assessment, and blockchain-driven supply chain traceability. Bridging the gap between traditional ethno-ecological knowledge and modern conservation biology is essential to safeguard the evolutionary potential of these botanical resources.

Keywords : Himalayan Medicinal Plants, Sustainable Harvesting, Ethnobotany, Aconitum heterophyllum, Conservation Strategies, Biodiversity Management.

1. Introduction :

The Himalayan Mountain ecosystem stands as one of the world's most ecologically fragile yet biologically rich landscapes. Characterized by sharp altitudinal gradients, varied microclimates, and complex topography, the Indian Himalayan Region (IHR) supports over 10,000 species of plants, of which roughly 1,740 species are documented for their therapeutic properties. These alpine and sub-alpine flora synthesize unique secondary metabolites—ranging from alkaloids and glycosides to essential terpenoids—developed as evolutionary adaptations to survive extreme physiological stress,

intense ultraviolet radiation, and sub-zero temperatures.

Historically, the collection of medicinal herbs was regulated by indigenous customary laws, cultural taboos, and seasonal restrictions, ensuring that the natural extraction rate did not outpace the reproductive capacity of the target species. However, the transition from subsistence-based traditional usage to commercial exploitation has radically altered this equilibrium. Today, over 90% of the medicinal herbs utilized by the domestic herbal industry in India are sourced through wild-harvesting from public forest lands and alpine meadows (bugyals). This destructive, unregulated extraction threatens ecosystem stability and jeopardizes the economic security of forest-dependent communities.

2. High-Value Flora under Threat :

To understand the ecological impact of current harvesting patterns, we must examine specific high-altitude medicinal herbs that are critically endangered or vulnerable due to targeted exploitation.

2.1 Aconitum heterophyllum (Ativisha) :

Belonging to the family Ranunculaceae, Aconitum heterophyllum is a critically endangered herb endemic to sub-alpine and alpine zones (2,500 m to 4,000 m). Its tuberous roots contain atisine, a non-toxic alkaloid highly valued for treating acute diarrhea, dysentery, and persistent fevers. Because the roots are the economically viable part, harvesting requires the complete uprooting of the plant before it can disperse seeds, directly disrupting its reproductive cycle and severely diminishing wild population densities.

2.2 Nardostachys jatamansi (Jatamansi) :

This critically endangered, rhizomatous perennial of the Caprifoliaceae family thrives in steep, rocky alpine pastures. The underground rhizomes yield an intense essential oil used globally in neuroprotective drugs, sedatives, and cosmetics. Large-scale, indiscriminate digging destroys the fragile alpine topsoil, causing localized soil erosion and triggering the degradation of associated plant communities.

2.3 Ophiocordyceps sinensis (Yartsa Gunbu / Caterpillar Fungus) :

Though technically an entomopathogenic fungus parasitizing ghost moth caterpillars, this complex is ecologically and economically intertwined with alpine herb collection. It is collected at elevations above 4,000 m. The unsustainable influx of thousands of collectors into fragile alpine meadows during early spring leads to heavy pollution, compaction of soil, and over-harvesting, leaving no spores behind for the next reproductive cycle.

3. Ecological Consequences of Destructive Harvesting :

The transition from selective gathering to opportunistic, competitive mass-harvesting triggers several cascading ecological issues :

- **Population Bottlenecks and Loss of Genetic Diversity :** Extirpating mature, seed-bearing

individuals from isolated alpine pockets leaves behind small, fragmented populations. This accelerates inbreeding depression and drastically reduces the adaptive capacity of the species to withstand shifting environmental parameters.

- **Reproductive Disruptions :** For species reliant on underground organs (rhizomes, tubers, bulbs) for vegetative propagation and survival, premature harvesting before senescent seed-set entirely halts natural recruitment.
- **Habitat Fragmentation :** Fragile alpine tundra ecosystems have very low primary productivity and slow recovery rates. Heavy foot traffic and physical disruption of soil crusts during harvesting create optimal conditions for invasive alien species, altering native species compositions.

4. Comprehensive Strategies for Sustainable Management :

Transitioning from opportunistic exploitation to a structured model of sustainable resource management requires a multi-pronged scientific and policy intervention.

4.1 Community-Based Forest Management & Traditional Knowledge Integration :

Conservation frameworks fail when they exclude indigenous communities. By establishing localized medicinal plant conservation areas (MPCAs), wild harvesting can be monitored through institutional joint forest management committees. Setting explicit annual harvest quotas based on scientific biomass estimation assessments ensures that a minimum of 30% to 40% of mature, seed-producing wild individuals remain untouched to maintain natural regeneration.

4.2 Standardizing Ex-situ Cultivation and Agro-techniques :

Domestication is an effective mechanism to reduce industrial reliance on wild populations. However, cultivating alpine herbs at lower altitudes often alters their phytochemical profiles due to differing environmental pressures. To mitigate this, high-altitude nurseries and specialized herbal gardens must be established within the plants' native altitudinal ranges. Standardizing low-cost agro-techniques, tissue culture protocols for micropropagation, and providing premium planting materials directly to mountain farmers can create an alternative, high-yield supply chain.

4.3 Advanced Technological Interventions :

- **Molecular Authentication & Conservation Genetics :** Deploying DNA barcoding (using markers like rbcL, matK, and its2) prevents adulteration in trade and helps identify distinct genetic chemotypes with high active ingredient profiles.
- **Traceability Frameworks :** Implementing blockchain technology paired with digital barcodes can track harvested materials from the specific forest division or cultivation plot right to the manufacturing unit. Ensuring transparency rewards sustainable collectors with fair-trade pricing and penalizes illegal poaching.

5. Conclusion :

The conservation of Himalayan medicinal plant wealth cannot be achieved through absolute preservationist isolation or unchecked commercial exploitation. Sustainable harvesting represents a dynamic middle path that balances human therapeutic needs and economic survival with ecological resilience. To protect species like Aconitum heterophyllum and Nardostachys jatamansi from extinction, we must rapidly implement stringent field collection protocols, expand high-altitude cultivation systems, and enforce absolute supply chain traceability. Cultivating collaborative partnerships between botanists, forest administrators, tribal collectors, and the pharmaceutical industry remains the only viable path to preserving the evolutionary heritage of the Himalayas for future generations.

References :

- Kala, C. P. (2005). Indigenous uses, status and conservation of medicinal plants in Indian Himalaya. Global Ecology and Conservation, 3, 290-297.
- Kunwar, R. M., Shrestha, K. P., & Bussmann, R. W. (2010). Traditional herbal medicine in the Himalaya : challenges and conservation. Journal of Ethnobiology and Ethnomedicine, 6(1), 35.
- Schippmann, U., Leaman, D. J., & Cunningham, A. B. (2002). Impact of cultivation and gathering of medicinal plants on biodiversity: global trends and issues. Biodiversity and the Ecosystem Approach in Agriculture, Forestry and Fisheries, 1-21.
- Semwal, D. P., Uniyal, R. C., & Bhatt, A. B. (2007). Agro-techniques of some high-value medicinal herbs of Garhwal Himalaya. Journal of Non-Timber Forest Products, 14(2), 115-122.
- Ved, D. K., Goraya, G. S., Sarma, P. U., & Shankar, D. (2018). Demand and Supply of Medicinal Plants in India. National Medicinal Plants Board (NMPB), Government of India, New Delhi.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 211-212

हिंदी साहित्य के विकास में नेपाली लेखकों का योगदान

डॉ. शर्मिला चौहान
सहायक प्राध्यापक – हिंदी,
माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला इंदौर (म.प्र.), भारत।

शोध सारांश :

किसी भी समृद्ध भाषा का इतिहास केवल उसकी अपनी भौगोलिक सीमाओं के भीतर निर्मित नहीं होता, बल्कि इसके विकास और वैश्विक विस्तार में पड़ोसी संस्कृतियों और भाषा–भाषी मनीषियों का अमूल्य योगदान रहता है। इस संदर्भ में हिंदी भाषा और साहित्य के संवर्द्धन और प्रचार–प्रसार में नेपाल के साहित्यकारों, संपादकों और शोधार्थियों का स्थान अत्यंत श्लाघनीय और ऐतिहासिक रहा है। भारत और नेपाल के सांस्कृतिक एवं भाषाई संबंध अत्यंत प्राचीन और प्रगाढ़ हैं, क्योंकि दोनों भाषाओं का उद्‌गम संस्कृत मूल से होने तथा दोनों की लिपि देवनागरी होने के कारण इनके मध्य एक सहज साहित्यिक विनिमय सदैव विद्यमान रहा है। नेपाल में हिंदी का प्रयोग शिक्षा, साहित्य, पत्रकारिता तथा सांस्कृतिक–धार्मिक कार्यों में लंबे समय से होता रहा है। इस ऐतिहासिक अंतःक्रिया को समझने के लिए प्रस्तुत शोध–पत्र में ऐतिहासिक, तुलनात्मक और विधागत विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसके तहत प्राथमिक स्रोत के रूप में नेपाली लेखकों की अनुदित व मूल कृतियों तथा द्वितीयक स्रोत के रूप में भारत और नेपाल के वरिष्ठ समीक्षकों के आलोचनात्मक ग्रंथों का सहारा लिया गया है।

विस्तृत शोध आलेख :

इस भाषाई संबंध के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखें तो वाराणसी यानी काशी सदियों से नेपाली छात्रों और प्रबुद्ध वर्ग की शिक्षा का मुख्य केंद्र रही, जहाँ नेपाली लेखकों ने हिंदी में कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध और आलोचनात्मक साहित्य लिखकर हिंदी शब्द–भंडार को समृद्ध किया। भारत के मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और रामायण–महाभारत जैसी धार्मिक कृतियों के प्रभाव ने नेपाल में हिंदी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और हिंदी साहित्य ने नेपाली लेखकों को अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक व्यापक और बहु–सांस्कृतिक मंच प्रदान किया।

नेपाल के प्रमुख रचनाकारों की बात करें तो नेपाली साहित्य के 'आदिस्रष्टा' माने जाने वाले आदिकवि भानुभक्त आचार्य का अवदान इस दिशा में मील का पत्थर है। उन्होंने संस्कृत रामायण का नेपाली भाषा में जो पद्यानुवाद किया, उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि हिंदी के 'भक्ति काल' में गोस्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस के पूर्णतः समानांतर थी। उनकी रचनाओं ने भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक साहित्य को नेपाल के जनसामान्य तक पहुँचाया और हिंदी साहित्य की भक्ति परंपरा को एक अंतर्राष्ट्रीय विस्तार दिया। इसी श्रृंखला में आगे चलकर मोतीराम भट्ट ने वाराणसी को अपना मुख्य कार्यक्षेत्र बनाकर हिंदी के 'भारतेन्दु युग' की प्रवृत्तियों को अपनाया और

दोनों भाषाओं में मुद्रण तथा प्रकाशन को बढ़ावा दिया, जिसके कारण हिंदी के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ नेपाल के प्रबुद्ध वर्ग के पठन–पाठन का हिस्सा बन सके।

आधुनिक काल के अंतर्गत लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा का योगदान इस भाषाई सेतु को सबसे अधिक मजबूती प्रदान करता है। देवकोटा नेपाली साहित्य के आकाश के सबसे चमकीले नक्षत्र और बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे, जिनका हिंदी भाषा पर असाधारण अधिकार था। उनका काव्य बोध हिंदी साहित्य के 'छायावाद' में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानंदन पंत की चेतना तथा उत्तरवर्ती 'प्रगतिवाद' के विचारों से गहराई से अनुप्राणित था। उनकी कृतियों में मानवता, करुणा और शोषित वर्ग के प्रति जो गहरी सामाजिक चेतना का स्वर मिलता है, वह हिंदी कवियों के समतुल्य है। उन्होंने विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हिंदी और नेपाली साहित्यिक परंपराओं के ऐतिहासिक संबंधों को पुरजोर तरीके से स्थापित किया। समकालीन युग में भी कविता और कहानी विधा के माध्यम से हिमालयी जीवन के यथार्थ, सामंतवाद विरोधी स्वर और वैश्विक भाईचारे को नेपाली लेखकों द्वारा हिंदी में प्रमुखता से स्थान दिया जा रहा है।

साहित्यिक विधाओं के अतिरिक्त नेपाल में हिंदी पत्रकारिता का विकास भी वहाँ के लेखकों और प्रबुद्ध वर्ग के प्रयासों से ही संभव हुआ। नेपाल की धरती से समय–समय पर कई प्रतिष्ठित हिंदी समाचार पत्र और साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिन्होंने दोनों देशों के लेखकों को एक साझा मंच प्रदान किया। इसके साथ ही, नेपाल के उच्च शिक्षण संस्थानों, विशेषकर त्रिभुवन विश्वविद्यालय में हिंदी विषय के अध्ययन, अध्यापन और उच्च स्तरीय अकादमिक शोध कार्यों ने हिंदी साहित्य के सैद्धांतिक ढांचे को वैश्विक स्तर पर मजबूत किया है। समग्र विश्लेषण के उपरांत यह अकादमिक निष्कर्ष प्राप्त होता है कि नेपाली लेखकों ने हिंदी को केवल एक देश की भाषा न मानकर, उसे अपनी साझी तिमाही संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और इसे भौगोलिक सीमाओं से मुक्त कर एक अंतर्राष्ट्रीय और समावेशी स्वरूप प्रदान किया। नेपाल और भारत की यह साझा सांस्कृतिक विरासत इस बात का प्रमाण है कि साहित्य सीमाओं में नहीं बंधता। भविष्य में भी यह साहित्यिक संबंध दोनों देशों की सांस्कृतिक, भाषाई और राष्ट्रीय एकता को निरंतर मजबूती प्रदान करते रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. उपनिषद. बृहदारण्यक उपनिषद (याज्ञवल्क्य–जनक संवाद प्रसंग). गीता प्रेस, गोरखपुर.
2. झा, डॉ. रामनाथ. मिथिला का इतिहास और संस्कृति. मैथिली अकादमी, पटना.
3. त्रिपाठी, डॉ. वासुदेव. नेपाली और हिंदी साहित्य के अंतःसंबंध. साझा प्रकाशन, ललितपुर, नेपाल.
4. देवकोटा, लक्ष्मीप्रसाद. देवकोटा रचनावली (खंड–२). नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान, काठमांडू.
5. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद. साहित्य का साथी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
6. प्रधान, डॉ. कुमार. नेपाली साहित्य का इतिहास. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली.
7. मैथिल, डॉ. सत्यनारायण. मिथिलांचल की लोककला और मधुबनी चित्रकला. ग्रंथलोक, पटना.
8. वाल्मीकि, महर्षि. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (बालकाण्ड). गीता प्रेस, गोरखपुर.
9. शर्मा, डॉ. रामविलास भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
10. सिंह, डॉ. अनिरुद्ध. भारत–नेपाल सांस्कृतिक संबंध और जनकपुरधाम. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 213-216

क्षमा शर्मा के बाल साहित्य का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन एक शोधपरक अध्ययन

शोभा मेवाड़ा

शोधार्थी, महारानी लक्ष्मी बाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर (स्वशासी) महाविद्यालय, भोपाल, म.प्र.।

शोध सार :

प्रस्तुत शोध आलेख "क्षमा शर्मा के बाल साहित्य का मनोविज्ञानिक अनुशीलन" में लेखिका के बाल साहित्य तथा कथा साहित्य में निहित मनोवैज्ञानिक तत्वों का अध्ययन किया गया है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है, कि पारिवारिक वातावरण, शिक्षा प्रणाली, सामाजिक परिवेश तथा आधुनिक जीवन शैली बच्चों के मानसिक विकास को गहराई से प्रभावित करते हैं। क्षमा शर्मा बच्चों की भावनात्मक आवश्यकताओं को महत्व देती हैं तथा अभिभावकों और समाज को बच्चों के प्रति संवेदनशील बनने का संदेश देती हैं। शोध के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि क्षमा शर्मा का साहित्य हिन्दी बाल साहित्य को नई दिशा प्रदान करता है तथा बाल मनोविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक सिद्ध होता है।

कुंजी शब्द :- बाल मनोविज्ञान, हिन्दी बाल साहित्य, बाल चेतना, मानसिक विकास।

प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य में बाल साहित्य की परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। समय–समय पर अनेक साहित्यकारों ने बच्चों की भावनाओं, उनकी मानसिक जिज्ञासाओं, सामाजिक परिवेश तथा उनके विकास से संबंधित विषयों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। आधुनिक हिन्दी साहित्य में "क्षमा शर्मा" का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने बाल साहित्य, कथा साहित्य, उपन्यास तथा पत्रकारिता के माध्यम से समाज और विशेषकर बच्चों की मानसिक दुनिया को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है।यह शोध आलेख क्षमा शर्मा के साहित्य में निहित बाल मनोवैज्ञानिक तत्वों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें उनके साहित्य में बाल चेतना, सामाजिक परिवेश, पारिवारिक प्रभाव, शिक्षा, नैतिक विकास तथा आधुनिक जीवन के प्रभावों का अध्ययन किया गया है।

बाल मनोविज्ञान : अवधारणा और स्वरूप :

बाल मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जो बच्चों के मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक तथा बौद्धिक विकास का अध्ययन करती है। यह जन्म से किशोरावस्था तक बालक के व्यवहार, उसकी रुचियों, आदतों, कल्पनाओं और व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करता है। बालक का मन अत्यंत कोमल और संवेदनशील होता है। वह अपने परिवेश से निरंतर सीखता है। परिवार, विद्यालय, मित्र, समाज तथा मीडिया उसके मानसिक विकास को प्रभावित करते हैं। साहित्य बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि साहित्य उनके भीतर संवेदना, नैतिकता और कल्पनाशक्ति का विकास करता है। क्षमा शर्मा ने बाल

साहित्य को केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे बालक के मानसिक विकास और सामाजिक चेतना से जोड़ा।

क्षमा शर्मा : व्यक्तित्व और साहित्यिक परिचय :

"क्षमा शर्मा" समकालीन हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण लेखिका हैं। उन्होंने कहानी, उपन्यास, बाल साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है। उनकी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ, स्त्री विमर्श और बाल मनोविज्ञान का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। वे बच्चों की मानसिक दुनिया को समझने वाली संवेदनशील लेखिका हैं। उनके साहित्य में बच्चे अपनी स्वाभाविक जिज्ञासाओं, डर, सपनों और संघर्षों के साथ उपस्थित होते हैं। वे बच्चों को उपदेश देने के बजाय उनकी भावनाओं को समझने का प्रयास करती हैं। यही कारण है कि उनका बाल साहित्य बच्चों के साथ–साथ बड़ों को भी प्रभावित करता है।

क्षमा शर्मा के साहित्य में बाल मनोविज्ञान :

1. बाल जिज्ञासा का चित्रण :

बच्चों का स्वभाव जिज्ञासु होता है। वे हर वस्तु और घटना के पीछे कारण जानना चाहते हैं। क्षमा शर्मा ने अपनी कहानियों में बच्चों की इसी जिज्ञासु प्रवृत्ति को अत्यंत स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में बच्चे प्रश्न पूछते हैं, नई चीजें सीखना चाहते हैं और अपने आसपास की दुनिया को समझने का प्रयास करते हैं। यह जिज्ञासा उनके मानसिक विकास का आधार बनती है। लेखिका बच्चों की जिज्ञासा को दबाने के बजाय उसे प्रोत्साहित करने की बात करती हैं। उनकी कहानियों में यह संदेश मिलता है कि यदि बच्चों को उचित वातावरण मिले तो उनकी जिज्ञासा रचनात्मकता में बदल सकती है।

2. पारिवारिक वातावरण और बाल मन :

बालक के व्यक्तित्व निर्माण में परिवार की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्षमा शर्मा ने अपने साहित्य में परिवार और बाल मन के संबंध को गहराई से चित्रित किया है। उनकी कहानियों में ऐसे बच्चे दिखाई देते हैं जो माता–पिता के प्रेम, उपेक्षा, कठोरता अथवा अपेक्षाओं से प्रभावित होते हैं। आधुनिक परिवारों में व्यस्तता के कारण बच्चों को पर्याप्त समय नहीं मिल पाता, जिससे उनके मन में अकेलापन उत्पन्न होता है। लेखिका ने यह दिखाया है कि बच्चों को केवल भौतिक सुविधाएँ नहीं, बल्कि भावनात्मक सुरक्षा भी चाहिए। जब परिवार बच्चों की भावनाओं को समझता है तो उनका मानसिक विकास स्वस्थ रूप से होता है।

3. अकेलापन और असुरक्षा की भावना :

आधुनिक जीवन शैली ने बच्चों के जीवन को भी प्रभावित किया है। संयुक्त परिवारों के विघटन और तकनीकी व्यस्तता के कारण बच्चे भावनात्मक रूप से अकेले होते जा रहे हैं। क्षमा शर्मा ने अपने साहित्य में बच्चों की इसी मानसिक स्थिति को संवेदनशीलता से चित्रित किया है। उनके पात्र कई बार स्वयं को उपेक्षित महसूस करते हैं। वे अपने मन की बातें कहने के लिए किसी साथी की तलाश करते हैं। लेखिका यह स्पष्ट करती हैं कि बच्चों की छोटी–छोटी भावनाओं की अनदेखी उनके भीतर असुरक्षा और भय को जन्म देती है। इस प्रकार उनका साहित्य आधुनिक समाज के लिए चेतावनी भी प्रस्तुत करता है।

4. शिक्षा और मानसिक विकास :

क्षमा शर्मा शिक्षा को केवल परीक्षा और अंकों तक सीमित नहीं मानतीं। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बच्चे के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। उनकी कहानियों में विद्यालय का वातावरण, शिक्षक का व्यवहार

तथा शिक्षा पद्धति बच्चों के मानसिक विकास को प्रभावित करते दिखाई देते हैं। वे रटंत शिक्षा प्रणाली की आलोचना करती हैं और रचनात्मक शिक्षा पर बल देती हैं। बच्चों पर अत्यधिक प्रतियोगिता और अपेक्षाओं का दबाव मानसिक तनाव उत्पन्न करता है। लेखिका इस समस्या को गंभीरता से प्रस्तुत करती हैं और बच्चों को स्वतंत्र सोचने का अवसर देने की आवश्यकता बताती हैं।

5. बाल कल्पनाशक्ति का चित्रण :

कल्पनाशक्ति बच्चों की सबसे बड़ी विशेषता होती है। बच्चे अपनी कल्पनाओं के माध्यम से नई दुनिया का निर्माण करते हैं। क्षमा शर्मा की रचनाओं में बच्चों की कल्पनाशक्ति अत्यंत जीवंत रूप में दिखाई देती है। उनके पात्र सपने देखते हैं, काल्पनिक संसार रचते हैं और छोटी–छोटी चीजों में आनंद खोज लेते हैं। लेखिका मानती हैं कि कल्पनाशक्ति बच्चे के रचनात्मक विकास का आधार है। इसलिए बच्चों को स्वतंत्र वातावरण मिलना चाहिए जहाँ वे अपनी कल्पनाओं को व्यक्त कर सकें।

6. नैतिक विकास और संवेदनशीलता :

क्षमा शर्मा के साहित्य में नैतिक शिक्षा उपदेशात्मक रूप में नहीं आती। वे बच्चों के अनुभवों और परिस्थितियों के माध्यम से नैतिक मूल्यों को प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानियाँ बच्चों में सहानुभूति, सहयोग, ईमानदारी, मित्रता और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना विकसित करती हैं। वे यह दिखाती हैं कि बच्चा स्वभाव से संवेदनशील होता है और उचित मार्गदर्शन मिलने पर वह अच्छे मूल्यों को सहज रूप से ग्रहण कर सकता है। उनकी रचनाओं का उद्देश्य बच्चों में मानवीय संवेदना का विकास करना है।

7. सामाजिक यथार्थ और बाल मन :

क्षमा शर्मा बच्चों को समाज से अलग करके नहीं देखतीं। उनके साहित्य में सामाजिक विषमताएँ, आर्थिक समस्याएँ, लैंगिक भेदभाव और बदलते सामाजिक मूल्य बच्चों के जीवन को प्रभावित करते दिखाई देते हैं।

गरीबी, पारिवारिक तनाव और सामाजिक असमानता बच्चों के मन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। लेखिका ने इन समस्याओं को अत्यंत यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया है।

उनकी रचनाएँ यह संकेत देती हैं कि स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए बच्चों को सुरक्षित और संवेदनशील वातावरण देना आवश्यक है।

क्षमा शर्मा के बाल साहित्य की विशेषताएँ :

1. **सरल और सहज भाषा** – उनकी भाषा अत्यंत सरल, सहज और संवादात्मक है। बच्चे उनकी रचनाओं से आसानी से जुड़ जाते हैं।
2. **मनोवैज्ञानिक गहराई** – वे बच्चों की मानसिक स्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण करती हैं। यही उनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता है।
3. **मनोरंजन और शिक्षा का समन्वय** – उनकी कहानियाँ रोचक होने के साथ–साथ शिक्षाप्रद भी हैं।
4. **यथार्थवादी दृष्टिकोण** – वे बच्चों की समस्याओं को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करती हैं।
5. **संवेदनशीलता** – उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदना और भावनात्मक गहराई स्पष्ट दिखाई देती है।

बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से क्षमा शर्मा का महत्व :

"क्षमा शर्मा" का साहित्य बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि उन्होंने बच्चों को केवल कहानी का पात्र नहीं, बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी रचनाएँ यह समझने में सहायता

करती हैं कि बच्चे किस प्रकार सोचते हैं, महसूस करते हैं और अपने परिवेश से प्रभावित होते हैं। वे बच्चों की भावनात्मक आवश्यकताओं को महत्व देती हैं और समाज को उनके प्रति संवेदनशील बनने का संदेश देती हैं। आज के समय में जब बच्चे मानसिक तनाव, अकेलेपन और प्रतिस्पर्धा के दबाव से गुजर रहे हैं, तब क्षमा शर्मा का साहित्य अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

उपसंहार :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "क्षमा शर्मा" ने हिन्दी बाल साहित्य को मनोवैज्ञानिक गहराई और सामाजिक संवेदनशीलता प्रदान की है। उनके साहित्य में बाल मन की जिज्ञासा, कल्पनाशक्ति, संवेदनशीलता, अकेलापन, भय और नैतिक विकास का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण मिलता है। उन्होंने बच्चों को समझने और उनकी भावनाओं का सम्मान करने की आवश्यकता पर बल दिया। उनका साहित्य केवल बच्चों के मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व निर्माण का महत्वपूर्ण साधन है। इस प्रकार क्षमा शर्मा का साहित्य हिन्दी बाल साहित्य की अमूल्य धरोहर है तथा बाल मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।

संदर्भ सूची :-

1. हिन्दी बाल साहित्य : स्वरूप और विकास।
2. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य।
3. लाल फूलों वाली किताब : क्षमा शर्मा।
4. बाल मनोविज्ञान : डॉ. एस.एस. माथुर।
5. क्षमा शर्मा की कहानियाँ एवं उपन्यास।
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास।
7. समकालीन हिन्दी महिला लेखन।
8. शिक्षा मनोविज्ञान एवं बाल विकास संबंधित ग्रंथ।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 217-229

Social Sector Expenditure as a tool of Strengthening the Socio-Economic Security for a Resilient India

Dr. Sonam Gupta
Assistant Professor, Arya Kanya Degree College, University of Allahabad, Prayagraj.

Abstract :

The main objective of any development plan is to develop the population of the country as human capital for strengthening of India. To convert the population into human capital, proper education and good health are required. This is like a cornerstone for a strong social and economic foundation of development for all developed and developing countries, because an educated and healthy population contributes to good productivity, which plays an important role in increasing economic growth and bringing social change in the right direction for long run. In developing countries, it becomes more important than developed countries to maintain the availability of education and health facilities for the general public through policies and schemes by the government. Therefore, in a developing country like India the role of social sector expenditure made by the government becomes more important, but there has been a rapid decline in the expenditure on education sector in India. Expenditure on medical sector has also declined in proportion to total social sector expenditure, but at a slower pace than education sector. Keeping the above variables in mind, econometric analysis shows that social sector expenditure in India significantly affects per capita GDP and Human Development Index. Which is an important component of inclusive growth, but the impact of social sector expenditure is more on per capita GDP than on human development index. Also, per capita expenditure on education is significantly related to improvement in education and per capita health expenditure is significantly related to improvement in health. Therefore, inclusive growth can be increased by increasing social sector expenditure for strengthening human capacity.

Key words - Social Sector expenditure, social security, human capital.

Development with equity has been the focus of Indian economic policy since the 1960s. India is the youngest nation in the world in terms of size. While this "youth power" has created immense opportunities for India, but it also poses many challenges. These youth will need health, proper education and appropriate skills, so that they can fully participate in the country's economy.

According to the 'trickle-down theory', Increasing Gross Domestic Product was considered an important factor in social development and poverty reduction, where the benefits of growth automatically trickle down to the lower levels. But when the path of economic development is that of the market system, the importance of social security and development with social justice increases even more because there is no such system in the market system that ensures that the fruits of rapid economic development will automatically trickle down to the weaker sections. Without developing the social sector, such economic development which is sustainable is not possible. Thus, there are two ways to achieve social security in India-

1. Through employment generation.
2. Public expenditure policy or social sector expenditure.

Employment is the medium which makes the fruits generated by economic development reach the people in the process of economic development itself, but the employment aspect of economic development based on market system is very weak, hence the role of the state or the role of public expenditure policy will be very important to ensure inclusive growth in such an economy, without this inclusive growth cannot happen.

The reason for this is that even if the government increases employment by increasing economic growth, still due to increasing population and market system, the government will have to make social sector expenditure to maintain the availability of facilities like education and health etc. On the other hand, the process of providing employment to the people will also run smoothly only when the population of the country is skilled and trained, the process of inclusive development cannot be made long-term by providing employment to unskilled and unqualified people. According to Vikram

Chaddha and Ishu Chaddha, 2019, the best way to achieve inclusive growth can be found by strengthening human capacity and improving the delivery of social and economic services.

According to the Reserve Bank of India - Social sector expenditure includes expenditure on social services, (education, sports, arts and culture, medical and public health, family welfare, sanitation and water supply, housing, urban development, welfare of OBCs and STs, labour and workers welfare, nutrition, expenditure on natural calamities, others) rural development and food storage and warehousing, revenue expenditure, capital expenditure and borrowings and advances taken by the states.

Importance -

The importance of studying 'Social Sector Expenditure as a tool of strengthening the socio-economic security for a resilient India' becomes clear from the fact that the availability of basic needs like health, education, clean drinking water etc. directly affects the welfare levels in the short term and determines economic opportunities in the long term. Development of social sector is an important and essential component of the economic development of any country. The experience of the country's development in the last 7 decades once again clarifies the significance of development of social sector.

1990 is the time when for the first time a new and historic step in the direction of human development was started with the publication of Human Development Report (Human Development Report), which not only established a clear distinction between economic growth and economic development but also clearly linked economic development with human development and established that national development should not be measured on the basis of some traditional indicators of economic growth like gross product per capita or income as has been done but with it Life expectancy at birth and literacy should also be taken into account.

Government's Dilemma in Spending on Social Sector -

Investment on physical and energy assets contributes to economic growth, but expenditure on social services is a kind of investment in human resources, which makes development sustainable by using various resources more efficiently because the only means of converting the growing population on a large scale into healthy and skilled human capital is social sector expenditure by the government.

If expenditure on social sector is increased, it increases social infrastructure (education, health institutions etc.), which increases the above facilities and opportunities of choice to more and more

people, but more investment on social sector increases the share of revenue expenditure in the total expenditure of the government, which increases the fiscal deficit of the economy, which has a bad effect on the fiscal health of the economy.

If expenditure on social sector is reduced then it leads to reduction in social infrastructure, which reduces opportunities of choices, the reduction in investment on social sector will reduce social security, but reduction in expenditure on social sector reduces the share of revenue expenditure in total expenditure of the government, which reduces fiscal deficit of the economy and improves fiscal health of the country.

So, if there is an alternative use of the resource, then its best use should be done by using the resource in a balanced manner for fulfilling various goals. According to Robbins, "Economics in a science which studies human behaviour as a relationship between ends and scare means, which have alternative use.

Review of Literature -

The overview of literature related to the present topic can be divided on the basis of trend, adequacy and functional relationship between the related variables. Some economists like- **Mahendra Dev and Jas Mooij (2002), Aggarwal R.K. (2011), Report of the Comptroller and Auditor General of India or State Finances: Government of Uttar Pradesh, 31 March 2015, D. Legio Meril, May, 2016** are of the opinion that social sector expenditure has declined in the last few years. The allocation of revenue towards social sector expenditure reflects the policy priorities of the government. Some economist like- **Chandrasekhar & Abhiroop Mukhopadhy (2006), Mercy W.J., (2007)** believe that the amount of social sector expenditure is not sufficient. Apart from this, some thinkers like- **The Hindu (16 Dec, 2015), Acountability Initiative (2016)** believe that if the states are given freedom of expenditure, then the amount of social sector expenditure increases. Some economists like – **Madhusudan Ghosh (2006), Shariff, A. and Ghosh, P. (2002), Gangal V.L.N. and Gupta H. (2013), State Finances: A Study of Budgets of 2012-13, A. Rahul, T. Volodymyr & K. Naresh, April, 2014** believe that a positive correlation is found between public expenditure and inclusive growth. Inclusive growth has been measured by variables like reduction in poverty, increase in crude birth rate and reduction in death rate etc.

Rationale of the present study -

Instead of economic growth used in earlier studies, the effect of increase in social sector expenditure on social security has been observed in the present study. Along with this, an attempt has been made to understand the relations through multivariate regression and the relations have been assessed at the dynamic level. This study is based on the analysis of annual data of almost three decades from 1991 to 2018, which is different from other studies in this context.

Hypotheses -

(1) H_0 There is no significant relationship between social security and social sector expenditure.

(2) H_0 There is no significant relationship between improvement in education and expenditure on education.

(3) H_0 There is no significant relationship between improvement in health and expenditure on health.

(4) H_0 There is no significant relationship between GDP per capita and per capita education expenditure, per capita health expenditure and per capita social sector expenditure.

Methodology of research study -

The title of the research work is **"Social sector expenditure as a tool of Strengthening the Socio-Economic Security for a Resilient India** is based on descriptive research technique. The research study is mainly based on secondary research data. This research data is mainly of quantitative type. To fulfill the objective of the research study, secondary data has been collected from various published literatures, magazines, articles, books and official websites. The main source of secondary data is State Finance a Study of Budget, Reserve Bank of India. The data has been collected from Handbook of Statistics on Indian Economy, Reserve Bank of India (www.bankofindia.in), Handbook of Statistics on Indian States, Reserve Bank of India (www.bankofindia.in), official websites, Economic Survey etc. To find out the impact and relationship of social sector expenditure on socio security, cause-effect study has been done. For measuring this, some factors of social sector expenditure like per capita education expenditure, per capita health expenditure, per capita social sector expenditure and for measuring socio security, some factors like per capita gross domestic product, education index, health index, human development index have been selected. Along with this, an attempt has been made to measure short-term and long-term effects.

For selecting the components of social sector expenditure, the expenditures of sub-components of total social sector expenditure have been taken as percentage/ratio, in which the highest ratio can be made the basis of selection.

Table -1

Composition of Social Sector Expenditure (in %)								
Items			1990-91	1995-96	2000-01	2005-06	2010-11	2015-16	2018-19
A	**Social services**		85.28	88.33	88.62	87.49	89.48	84.46	84.87
	a	Education, sports, art & culture	44.90	45.09	47.35	42.19	42.65	37.18	34.81
	b	Medical & public health	13.73	10.86	10.59	10.17	9.38	9.63	9.75
	c	Water supply and sanitation	5.67	6.29	6.78	7.20	4.50	4.74	5.30
	d	Welfare of SCs, STs and OBCs	5.44	5.64	5.20	6.18	6.23	6.01	6.95
	E	Other	15.54	20.45	18.86	21.75	26.72	26.90	28.06
B	**Economic services**		14.72	11.73	11.38	12.51	10.52	15.54	15.13
Total Social Sector Expenditure A+B			**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**

Source : Computed by author on the basis of State Finances: A Study of Budgets Report, RBI various issues

It is clear from the above table that the percentage of expenditure on social services in total social sector expenditure has decreased after 2010-11, along with it the percentage of education, sports, art and culture, medical and public health has also decreased after 2010-11, but relatively the percentage of education, sports, art and culture, medical and public health has remained high in the total social sector expenditure.

If we look at the sub-components of social services, it is found that education, sports, art and culture are in the first place. Medical and public health are in the second place. On this basis, for further analysis, education, sports, art and culture and medical and public health have been taken as the standard for the study of the components of social sector expenditure, which are shown in the form of health expenditure and education expenditure.

1) There is no significant relationship between social security and social sector expenditure.

$$PCGDP_t = \beta_0 + \beta_1 PCSSE_t + \varepsilon_t$$

By applying Augmented Dickey Fuller test to check the stationarity of the series, it was found that both the series are non-stationary, hence log has been used to assess the relationship between them, which shows the following format

$$logPCGDP_t = \beta_0 + \beta_1 logPCSSE_t + \beta_2 PCGDP_{t-1} + \varepsilon_t$$

Although the basis of evaluation is social security, hence it has been represented by per capita gross domestic product (PCGDP). Apart from this, an attempt has been made to link the findings on the basis of Human Development Index (HDI), Education Index, Health Index, which is defined by UNDP.

This equation exhibits a dynamical (AR,1) form, on which the residuals were homogeneous {Glejser Test P(0.61)} normally distributed { Jarque bera P (0.47)}, and no autocorrelation {Q-Static (P=0.08, on IInd differential)} was observed.

$$logPCGDP_t = 2.84 + 0.92 logPCSSE_t + 0.90 PCGDP_{t-1} + \cup_t$$

S..E = (0.05) (0.06) (0.17)

$t_{(Sta)}$ = (55.37) (14.73) (5.21)

P value = (0.000) (0.000) (0.000)

It is clear from the above equation that the elasticity of per capita GDP (PCGDP) with respect to per capita social sector expenditure (PCSSE) is 0.92, which shows almost unit elasticity between them. In other words, 1 percent proportional change in PCSSE brings 0.92 percent proportional change in PCGDP and the value of PCGDP depends on its previous year's value, i.e. 1 percent proportional change in previous year's value brings 0.90 percent proportional change in current value.

The value of R^2 in the above equation is 0.99, which shows that the change in independent variable is affecting the dependent variable by 99 percent. The value of F-Static is found to be 3372.68 on degree of freedom (1, 24), at 5% level of significance and its probability is found to be 0.000. This shows that the model fitted is significant, hence the null hypothesis will not be accepted, hence a significant relationship is found between social security and social sector expenditure.

2) There is no significant relationship between social security and social sector expenditure.

$$HDI_t = \beta_0 + \beta_1 PCSSE_t + \varepsilon_t$$

Since the categories of both the variables are non-stationary, the relation between them is based on log series and since the relation was also affected by serial correlation, hence AR model has also been used in the model, whose actual equation and estimated equation are as follows –

$$logHDI_t = \beta_0 + \beta_1 logPCSSE_t + \beta_2 HDI_{t-1} + \varepsilon_t$$

$$logHDI_t = -0.71 + 0.13 logPCSSE_t + 0.91 HDI_{t-1} + \cup_t$$

S..E	=	(0.01)	(0.01)	(0.14)
$t_{(Sta)}$	=	(-59.84)	(10.02)	(6.37)
P value	=	(0.000)	(0.000)	(0.000)

It is clear from the constants of the variables that a proportional change of 1% in HDI will bring about a proportional change of 0.13% in the Human Development Index (HDI), i.e. 0.13 is showing the elasticity of HDI for HDI which is showing inelasticity because it is very low. At the same time, it is a dynamic relation which is dependent on the previous time value (0.91) of the dependent variable itself.

3) There is no significant relation between HDI and expenditure on education.

Augmented Dickey Fuller test was used in the unit root test to check the stationarity of the series, on which the series was found to be non-stationary, hence log was used to show the relationship between the variables, whose form is as follows –

$$logEDU\ INDEX_t = \beta_0 + \beta_1 logPCEDUEX_t + \beta_2 EDU\ INDEX_{t-1} + \varepsilon_t$$

$$logEDU\ INDEX_t = -2.15 + 0.19 logPCEDUEX_t + 0.85 EDU\ INDEX_{t-1} + \cup_t$$

S..E	=	(0.13)	(0.02)	(0.11)
$t_{(Sta)}$	=	(-16.54)	(10.30)	(7.88)
P value	=	(0.000)	(0.000)	(0.000)

It is clear from the above equation that the elasticity of education index with respect to expenditure on education is 0.19, which shows an inelastic relationship between them, i.e. if there is a 1 percent proportional change in expenditure on education, then there is a 0.19 percent proportional change in the education index. Also, due to its dynamic nature, the current value of the education index depends on its own previous value. In other words, 0.85 percent change in the current education index

is due to 1 percent change in the value of the education index in the previous year. The value of R^2 in the above equation is 0.99, which shows that 99 percent of the change in the education index is being determined by the expenditure on education.

The value of F-Static is found to be 2095.93 at 5 percent significance level on degree of freedom (1, 24), and its probability measure is found to be (0.000) which shows that the above model is significant, hence the null hypothesis will not be accepted. That is, there is a significant relationship between improvement in education index and expenditure on education.

4) There is no significant relationship between improvement in health and expenditure on health.

$$HEALTH\ INDEX_t = \beta_0 + \beta_1 PCHEX_t + \varepsilon$$

$$logHEALTH\ INDEX_t = \beta_0 + \beta_1 logPCHEX_t + \beta_2 HEALTH\ INDEX_{t-1} + \varepsilon$$

$$logHEL\ INDEX_t = -0.78 + 0.07 logPCHEX_t + 0.98 HEALTH\ INDEX_{t-1} + \mu_t$$

S..E	=	(0.06)	(0.01)	(0.05)
$t_{(Sta)}$	=	(-13.69)	(6.46)	(17.74)
P value	=	(0.000)	(0.000)	(0.000)

It is clear from the value of R^2 that the model is showing goodness of fit. It is clear from the P value that all the constants are significant at 5% level of significance and 25 degrees of freedom. Hence the null hypothesis will not be accepted i.e. a significant relationship is found between health and expenditure on health. There is a high degree of positive correlation between health and expenditure on health.

The nature of the model is dynamic i.e. the current value of the health index depends on its value of the previous year. Also, on making a proportional change of 1% in health expenditure every year, a proportional change of 0.07% is found in the health index.

5) There is no significant relationship between the gross domestic product per capita and per capita education expenditure, per capita health expenditure and per capita social sector expenditure.

$$PCGDP_t = \beta_0 + \beta_1 PCEDEX_t + \beta_2 PCHEX_t + \beta_3 PCSSE_t + \varepsilon_t$$

The above categories are non-stationary at zero level and stationary at different level and there is also causality (Granger causality test) in them, hence the ARDL model is being used. ARDL model means Auto Regressive Distributed lag model that means dependency is found when the dependent variable is lagged. It determines the short run and long run relation both.

$$PCGDP_t = 65.30 + 1.72PCGDP_{-1} - 0.51PCGDP_{-2} + 0.64PCEDUEX_t + 15.80PCEDUEX_{-1} - 0.51PCEDUEX_{-2} + 10.45PCHEX_t - 9.75PCSSE + 9.28PCSSE_{-1} + 5.04PCSSE_{-2} + \cup_t$$

In the above relation, there is found Normality and Serial Correlation, but Hetroskedasticity is not found, hence to test the long run relationship, the Bound test has been used, in which the value of F Static is between the lower and upper limits of the bound at 10% significance level, hence it shows long run relationship. To test the stability of the model Kusum test has been done, which makes it clear that the model is within the red line limits, hence the model is stable also. Thus, the model is found to be of 2 lag in nature. The nature of the model is dynamic i.e. a proportional change of 1% in per capita education expenditure will bring a proportional change of 0.64% in per capita GDP, whereas a proportional change of 1% in per capita health expenditure will bring a proportional change of 10.45% in per capita GDP. The change in per capita social sector expenditure in the value of the previous year instead of the value of the same period, it is positively related to the change in per capita GDP. A proportional change of 1% in per capita social sector expenditure of the previous year will bring a proportional change of 9.28% in per capita GDP.

Conclusion -

There has been a rapid decline in the expenditure on education sector in India. Expenditure on medical sector has also declined, but at a slower pace than education sector. Keeping the above variables in mind, econometric analysis shows that social sector expenditure in India significantly affects per capita GDP and Human Development Index. Which is an important component of social security, but the impact of social sector expenditure is more on per capita GDP than on human development index. Also, per capita expenditure on education is significantly related to improvement in education and per capita health expenditure is significantly related to improvement in health. Therefore, social security can be increased by increasing social sector expenditure. By adopting inclusive growth as the main goal in the 11th Five Year Plan, the share of social sector expenditure in total expenditure has increased, but the share of expenditure on education sector and medical sector has

continuously decreased in proportion to total social sector expenditure. Probably the reason for this is the adoption of privatization policy in the field of education in recent years and the reduction in the government's treasury due to demonetization. While the expenditure on education and medical sector is significantly related to increasing the per capita GDP, hence the amount of expenditure on education and medical sector should be increased, which was recommended by the Kothari Commission (1964) in which it was recommended to spend 6 percent of the GDP only on the education sector, which is relevant even today, which has also been given importance in the National Education Policy 2020.

Education is the fundamental right of every person and the more educated population in a country, it helps in coming out of conservatism through decision making ability, research ability, awareness. Similarly, medicine and health also increase the working capacity of humans. Thus education and health are helpful in building healthy human capital. Therefore, from the social and economic point of view, education is the first pillar of the country's infrastructure and health is the second pillar of the country's infrastructure, and its distribution is not possible through private expenditure.

- Thus, along with the responsibility of the government, the role of the private sector is important in social sector expenditure.
- The resources of the government are limited, hence instead of the approach of providing services free of cost, services should be expanded at a minimum cost.
- The quality of the services provided should be improved.
- Thus, the reach of services to the people should be only for necessity and subsistence and not for luxury. Excess of facilities reduces its utility, hence quality education and health facilities should be made available to the people at a minimum cost.
- Appropriate criteria should be made to identify the real needy.
- To maintain the inclusive process in the long term, knowledge and training related to agricultural skills should be added to the curriculum.

Limitations -

The researcher has analyzed the entire research work on the basis of classification of revenue expenditure and capital expenditure. There are various variables for measuring social security, but in the research study, Human Development Index and per capita gross domestic product have been taken as indicators for its measurement.

Bibliography :

- Aggarwal, R.K. (2011). "Social Sector Expenditure in India and Punjab: Trends during Pre Reform 1980-91 and Post Reform Period 1991-2011 Periods. https://www.researchgate.net/publication/283301974
- Aggarwal, S.C. and Khan, S. (2019). "Inclusive Growth in India – Learning from Best Practices of Selected Countries". Indian Council for Research on International Economic Relations. May. Working Paper 375.
- Agung, I.G.N. (2009). "Time Series Data Analysis Using E Views". John Wiley & Sons (Asia) Pte Ltd.
- Basu, K. (2008). "The New Oxford Companian to Economic in India". Oxford University Press, New Delhi.
- Chandrasekhar, S. (2006). "Primary Education as a Fundamental Right Cost Implications". Economic and Political Weekly. 2 Sept, pp. 3797-3804.
- Economic Survey. (Various Issue). Government of India. New Delhi.
- Gangal, V.L.N. and Gupta, H. (2013). "Public Expenditure and Economic Growth A Case study of India". Journal of Management and Business Studies. Vol.3. pp.191-196.
- Ghosh, M. (2006). "Economic Growth and Human Development in Indian States". Economic and Political Weekly. 29 july, pp. 3321-3329.
- Gupta, S. (2020). " In the Thesis A Critical Evaluation of Social Sector Expendiure in India since 1991 with reference to Inclusive Growth: A Case study of Uttar Pradesh" University of Allahabad, Prayagraj.
- Kapila, U. (2008-09). "Indian Economy since Indipendence". Academic Foundation, New Delhi.
- Kour, B. and Misra, S. (2003). "Social Sector Expenditure and Attainments: An Analysis of Indian States". Reserve Bank of India. Occasional Paper Vol. 24, Nos 1 and 2, summer and Mansoon, pp. 105-143.
- MahendraDev, S. and mooij, J. (2002). "Social Sector Expenditure in the 1990: Analysis of Central and State Budget". Economic and Political Weekly. 2 March, pp.855.
- MahendraDev, S. and mooij, J. (2004). "Social Sector Priorities: An Analysis of Budget and Expenditure in India in the 1990s". Development Policy Review.

- Majumdar, N. A. (2007). "Inclusive Growth Development perspective in Indian Economy". Academic Foundation, New Delhi.
- Mercy, W. J. (2007). "Trends in Social Sector Expenditure- An Inter State Comparision" in the Thesis "Social Sector Public Outlay and Development an Inter States Comparision". Dr John Mathai Centre University of Calicut.
- Meril, D. L. (2016). "Recent Trends in Social Sector Expenditure in India". International Journal of Economic and Business Review.Dubai.
- Mohanty, R. K. and Bhanumurty, N. R. (2018). "Assessing Public Expenditure Efficiency of Indian States". National Institute of Public Finance and Policy, New Delhi. No. 255.
- Rahul, T. Volodymyr & K. Narsh, April (2014), "India: Defining and Explaning Inclusive Growth and Poverty Reduction", IMF Working Paper wp/63, IMF.
- Salvatore, D. and Reagle, D. (2001). "Theory and Problem of Statistics and Econometrics". Schaum's Outline Series McGraw Hill, New York.
- Seeta Prabhu, K. (1994). The Budget and Stuctural Adjustment with a IIuman Face. Economic and Political Weekly.16-23 April. pp. 1027.
- Shariff, A. and Ghosh, P. (2002). "State Adjusted Public Expenditure on Social Sector and Poverty Alleviation Programmes". Economic and Political Weekly. Feb23
- State Finances: A Study of Budget (Different Years). Reserve Bank Of India.
- The Hindu. (16 Dec, 2015). "80 % of Social Sector Spending Comes from States Budgets: YV Reddy". Business Line.
- (1994). "Three Year of Economic Reforms in India: A Critical Assessment UNDP, Human Development Report1993". EPW Research Foundation. April.
- (2018). "The Inclusive Development Index 2018 Summery and Data Highlights". World Economic Forum, Geneva. Pp 1-25.
- (2016). "State of Social Sector Expenditure in 2015-16". Accountability Initiative.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 230-235

Role of Digital Libraries in Educational and Cultural Cooperation between India and Nepal

Sonam Yadav
Assistant Librarian
St. Aloysius College, Jabalpur, Madhya Pradesh, India

Abstract :

In the present era, Information and Communication Technology (ICT) has brought significant changes in the fields of education and knowledge dissemination. Digital libraries have emerged as an effective medium for collecting, preserving, and sharing knowledge resources. India and Nepal have long-standing historical, cultural, and educational relations. Digital libraries can play a vital role in strengthening these ties further. This research paper examines the role of digital libraries in educational and cultural cooperation between India and Nepal, highlighting their significance, benefits, challenges, and future prospects.

Keywords : Digital Libraries, India–Nepal Relations, Education, Information Technology, Knowledge Resources.

Introduction :

India and Nepal have shared religious, cultural, social, and educational ties since ancient times. The two countries possess many similarities in language, traditions, and academic activities. In the modern age, the use of digital technologies has increased rapidly to meet the growing demands of education and research. Digital libraries have created new opportunities for learning, teaching, and scholarly communication.

A digital library is an organised collection of electronic resources, including books, research articles, e-journals, audio-visual materials, and other information resources. These resources enable users to access information anytime and from anywhere, thereby promoting lifelong learning and academic collaboration.

Objectives of the Study :

- To examine the educational relations between India and Nepal.
- To analyse the role of digital libraries in academic cooperation.

- To study the exchange of knowledge and information resources between the two countries.
- To identify the challenges faced by digital libraries.
- To suggest measures for improving digital library services and cooperation.

Research Methodology :

The present study is based on secondary sources of information. Data have been collected from books, research articles, journals, conference proceedings, and relevant online resources. The collected information has been analysed descriptively to understand the contribution of digital libraries to educational and cultural cooperation between India and Nepal.

Literature Review :

Digital libraries have become important tools for providing access to educational and research resources. Bhattacharya (2004) highlighted their role in improving information access in developing countries. Yang and Hofmann (2011) found that digital libraries and institutional repositories enhance the visibility of scholarly publications in India. Chauhan (2017) emphasised the contribution of the E-ShodhSindhu Consortium in expanding access to academic resources.

Tramboo et al. (2012) discussed the usefulness of open-source digital library software for resource management and preservation. Pokhrel (2022) noted that libraries contribute to educational and social development in Nepal. Sangam and Tadasad (2025) stressed the importance of Open Educational Resources (OER) in promoting knowledge sharing. These studies indicate that digital libraries support education, research, and cultural preservation, creating opportunities for stronger educational and cultural cooperation between India and Nepal.

Educational and Cultural Relations between India and Nepal :

India and Nepal have maintained strong educational and cultural relations for centuries. Students from both countries pursue higher education in various universities and academic institutions. Cultural exchange programs, academic collaborations, joint research projects, and scholarly interactions have contributed significantly to strengthening bilateral relations.

The open border between the two countries and their shared cultural heritage facilitate educational cooperation and the exchange of knowledge. In this context, digital libraries provide an effective platform for enhancing academic and cultural connectivity.

Role of Digital Libraries :

1. Access to Knowledge Resources :

Digital libraries provide students, teachers, researchers, and scholars with access to a wide range of educational materials, including e-books, e-journals, databases, theses, and multimedia resources. They eliminate geographical barriers and ensure equal access to information resources. According to UNESCO (2023), digital learning resources have significantly improved educational

accessibility, particularly in developing countries. In India, the National Digital Library of India (NDLI) offers access to more than 10 million digital resources covering various disciplines.

2. Support for Research Activities :

Researchers can access the latest studies, journals, dissertations, and conference papers through digital libraries. This enhances the quality of research and promotes academic excellence in both countries. Digital databases such as Shodhganga, JSTOR, and institutional repositories provide access to thousands of research documents. According to the University Grants Commission (UGC), the use of digital resources has substantially increased research productivity in Indian higher education institutions.

3. Preservation of Cultural Heritage :

Digital libraries help preserve historical documents, manuscripts, rare books, and cultural literature in digital formats. Such preservation ensures that future generations can access and learn from their cultural heritage. India's National Mission for Manuscripts has documented millions of manuscript folios, while Nepal has undertaken digitization projects to preserve ancient Buddhist and Hindu manuscripts damaged during natural disasters and aging processes.

4. Expansion of Educational Opportunities :

Digital resources support distance learning and online education. Students living in remote and mountainous regions of India and Nepal can access quality educational materials without physical limitations. During and after the COVID-19 pandemic, online learning platforms and digital libraries became essential educational tools. Reports indicate that online educational resource usage increased significantly across South Asia during this period.

5. Promotion of International Cooperation :

Digital libraries facilitate collaboration among universities, libraries, and research institutions. Shared digital repositories and online information networks strengthen academic partnerships between India and Nepal. Joint research projects, faculty exchanges, and collaborative publications have increased through improved access to digital information resources.

6. Resource Sharing and Networking :

Digital library systems enable institutions to share databases, e-books, journals, and research outputs. Such cooperation reduces duplication of efforts and enhances resource utilization. Library consortia such as e-ShodhSindhu in India provide access to thousands of international journals and databases to member institutions, promoting cost-effective access to scholarly information.

7. Enhancing India–Nepal Educational and Cultural Cooperation :

Digital libraries play an important role in strengthening educational and cultural cooperation between India and Nepal. Shared digital collections related to Himalayan studies, Buddhism, Sanskrit

literature, and regional history promote mutual understanding and academic exchange. Collaborative digitisation projects can further support the preservation and dissemination of the shared cultural heritage of both countries.

Challenges :

Despite their advantages, digital libraries face several challenges :

- Inadequate technological infrastructure.
- Limited internet connectivity in remote areas.
- Lack of digital literacy among users.
- Financial constraints in developing and maintaining digital systems.
- Copyright and intellectual property issues.
- Limited availability of local language digital resources.

Suggestions :

1. Development of a Cross-Border Digital Knowledge Network :

India and Nepal should establish a shared digital knowledge network connecting universities, research institutions, and libraries. This network would facilitate seamless access to academic resources and research outputs.

2. Creation of a Joint Digital Heritage Repository :

Both countries possess rich cultural and historical heritage. A collaborative digital repository should be developed to preserve manuscripts, folklore, religious texts, photographs, and archival records.

3. Promotion of Open Educational Resources (OER) :

Educational institutions should encourage the development and sharing of Open Educational Resources to ensure affordable and equitable access to learning materials.

4. Strengthening Institutional Partnerships :

Universities and libraries in India and Nepal should sign Memoranda of Understanding (MoUs) for resource sharing, staff exchange, and collaborative research initiatives.

5. Adoption of Multilingual Digital Library Services :

Digital library interfaces and resources should be made available in English, Hindi, Nepali, and regional languages to improve accessibility and user engagement.

6. Integration of Artificial Intelligence :

Artificial Intelligence-based search systems, recommendation tools, and automated indexing can enhance the efficiency and usability of digital libraries.

7. Capacity Building and Professional Training :

Regular workshops, seminars, and training programs should be organised for librarians,

researchers, and students to improve digital competencies.

8. Promotion of Open Access Research :

Governments and academic institutions should support open-access publishing to maximise the visibility and impact of scholarly research.

9. Establishment of Regional Research Data Repositories :

A common repository for research datasets can encourage transparency, reproducibility, and collaborative research between scholars of both nations.

10. Cybersecurity and Digital Preservation Policies :

Strong cybersecurity measures and long-term digital preservation strategies should be implemented to protect valuable information resources from data loss and cyber threats.

11. Support for Rural and Remote Communities :

Special initiatives should be introduced to extend digital library services to remote Himalayan regions where access to educational resources remains limited.

12. Sustainable Development through Knowledge Sharing :

Digital libraries can contribute to achieving Sustainable Development Goals (SDGs) by promoting quality education, innovation, cultural preservation, and regional cooperation.

Conclusion :

Digital libraries play a significant role in enhancing educational and cultural cooperation between India and Nepal. They facilitate access to knowledge resources, support research activities, preserve cultural heritage, and strengthen academic collaboration between institutions and scholars of both countries. Through digital platforms, geographical barriers can be overcome, enabling wider dissemination of information and promoting inclusive access to education.

Despite challenges such as inadequate technological infrastructure, limited digital literacy, financial constraints, and copyright issues, digital libraries continue to offer immense opportunities for academic growth and cultural exchange. By addressing these challenges and promoting joint digital initiatives, collaborative repositories, and open-access resources, India and Nepal can further strengthen their educational and cultural relations in the digital age.

The future of India–Nepal cooperation can greatly benefit from the effective utilisation of digital library services and emerging information technologies. Digital libraries are not merely information repositories; they are strategic instruments for fostering educational excellence, cultural preservation, knowledge diplomacy, and sustainable cooperation between India and Nepal in the digital era.

References :

- Ranganathan, S. R. *Library and Information Science*.

- Sharma, P. *Digital Libraries and Information Services*.
- Kumar, K. *Library Management in the Digital Era*.
- Sangam, A. S., & Tadasad, P. G. (2025). *Enhancing Access to Knowledge: Promoting Open Educational Resources through IITs Library Website*. Access: An International Journal of Nepal Library Association, 4(1), 1–8. https://doi.org/10.3126/access.v4i1.88817
- Bhattacharya, P. (2004). *Advances in Digital Library Initiatives: A Developing Country Perspective*. The International Information & Library Review, 36(3), 165–175. https://doi.org/10.1016/j.iilr.2003.10.008
- Chauhan, V. A. (2017). *E-ShodhSindhu Consortia: A Boon to Users of Indian Academic Libraries*. Indian Journal of Information Sources and Services, 7(2). https://doi.org/10.51983/ijiss.2017.7.2.473
- Yang, S. Q., & Hofmann, M. A. (2011). *An Evaluation of Digital Libraries and Institutional Repositories in India*. The Journal of Academic Librarianship, 37(6), 543–545. https://doi.org/10.1016/j.acalib.2011.08.012
- Pokhrel, M. B. (2022). *People's Transformation through Community Library: A Brief Study of READ Philosophy*. Access: An International Journal of Nepal Library Association, 1(1), 74–82. https://doi.org/10.3126/access.v1i1.46616
- Pal, J. K. (2016). *Evolution of Mutual Efforts in Libraries: The Consortia Boom*. Journal of Information and Knowledge, 53(4). https://doi.org/10.17821/srels/2016/v53i4/84262
- Mukherjee, S., & Patra, S. K. (2023). *Digital Library Initiatives in India: A Comprehensive Study*. Available at arXiv. https://arxiv.org/abs/2303.13594
- Soni, M. (2023). *A Literature Survey on National Education Policy 2020 (NEP 2020) and Libraries*. Journal of Learning and Educational Policy, 3(4), 13–23. https://doi.org/10.55529/jlep.34.13.23
- Singh, A. P., & Chaurasia, A. (2025). *The Pivotal Role of Libraries in India's NEP 2020*. Asian Journal of Information Science and Technology. https://doi.org/10.70112/ajist-2025.15.2.4364
- Tramboo, S., Humma, Shafi, S. M., & Gul, S. (2012). *A Study on Open Source Digital Library Software: Special Reference to DSpace, EPrints and Greenstone*. Available at arXiv. https://arxiv.org/abs/1212.4935

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 236-240

Reimagining Regionalism in South Asia : The Role of India and Nepal in the Revival of SAARC

Dr. Sovik Mukherjee
Assistant Professor in Economics
St. Xavier's University, Kolkata 700 160, India

1. Introduction :

The South Asian Association for Regional Cooperation (SAARC), established in 1985, was envisioned as a platform for fostering regional cooperation, economic integration, and collective development among South Asian countries. Comprising Afghanistan, Bangladesh, Bhutan, India, the Maldives, Nepal, Pakistan, and Sri Lanka, SAARC represented South Asia's aspiration to emerge as a more connected and collaborative region. However, despite deep historical, cultural, and economic ties, South Asia remains one of the least integrated regions in the world.

Over the years, SAARC has struggled due to political tensions, bilateral conflicts, and institutional inefficiencies, particularly the strained relationship between India and Pakistan. Since the 18th SAARC Summit held in Kathmandu in 2014, the organisation has remained largely inactive, with subsequent summits repeatedly postponed. Yet, in an era marked by geopolitical uncertainty, economic interdependence, climate challenges, and regional security concerns, the relevance of regional cooperation in South Asia cannot be ignored. In this context, India and Nepal can play a significant role in reviving SAARC and restoring confidence in regional multilateralism.

2. SAARC and the Crisis of Regionalism :

SAARC was established to promote economic growth, social progress, and regional stability through cooperation. The organisation introduced several initiatives, including the South Asian Free Trade Area (SAFTA), regional development projects, educational exchanges, and cooperation in health and agriculture. However, SAARC's achievements have remained limited compared with those of regional organisations such as the European Union (EU) and the Association of Southeast Asian Nations (ASEAN).

One of the principal reasons for SAARC's stagnation has been political rivalry, particularly between India and Pakistan. Security tensions and diplomatic disputes have frequently overshadowed regional cooperation. According to Dash (2008), SAARC has often suffered from "bilateralism

overpowering multilateralism," thereby weakening institutional decision-making and policy implementation. The inability to separate bilateral disputes from regional cooperation has significantly reduced the organisation's effectiveness.

Economic integration within South Asia also remains comparatively low. According to the World Bank (2022), intra-regional trade in South Asia accounts for less than 5 per cent of total regional trade, significantly lower than in ASEAN and the EU. Weak infrastructure, protectionist policies, poor connectivity, and a lack of political trust have restricted the region's economic potential despite geographical proximity and shared markets.

The prolonged inactivity of SAARC has also created a vacuum in regional diplomacy. Alternative platforms such as BIMSTEC and BBIN have gained prominence, but they cannot fully replace the broader South Asian regional framework represented by SAARC.

3. India's Central Role in Reviving SAARC :

As the largest economy and geopolitical power in South Asia, India's role is central to the revival of SAARC. India accounts for nearly 80 per cent of South Asia's GDP and possesses substantial strategic, economic, and diplomatic influence in the region. Consequently, the future of SAARC depends significantly on India's willingness to re-engage with regional multilateralism.

India's "Neighbourhood First" policy reflects its recognition that regional stability and economic connectivity are essential for long-term strategic growth. Regional integration can strengthen India's economic leadership, improve supply chains, enhance energy cooperation, and create larger markets for trade and investment.

India has already demonstrated regional leadership through initiatives involving digital payments, energy connectivity, disaster management, and vaccine diplomacy during the COVID-19 pandemic. The "Vaccine Maitri" initiative highlighted India's capacity to function as a regional provider of public goods during crises. Such initiatives can serve as confidence-building measures to revive regional cooperation within SAARC.

Moreover, India's global ambitions also make regional stability strategically important. As India seeks greater influence in institutions such as the United Nations Security Council and G20, successful regional leadership in South Asia becomes increasingly significant. Malone (2011) argues that India's emergence as a global power is closely connected with its ability to maintain constructive regional relationships and promote stability in its neighbourhood.

However, India also faces the challenge of balancing bilateral security concerns with broader regional cooperation. While political and security concerns remain important, excessive politicisation of SAARC risks undermining regional economic opportunities. India may therefore need to adopt a more pragmatic, issue-based approach to regional cooperation, particularly in areas such as trade

facilitation, climate resilience, public health, and digital integration.

4. Nepal as a Bridge Builder in South Asia :

Nepal occupies a unique position within South Asian diplomacy. As a smaller state maintaining close historical, cultural, and economic ties with both India and China, Nepal has often attempted to position itself as a neutral and constructive regional actor. Nepal's diplomatic flexibility and non-confrontational foreign policy can contribute positively toward rebuilding confidence within SAARC.

Nepal has consistently supported regional cooperation and multilateral engagement. During the 18th SAARC Summit held in Kathmandu in 2014, Nepal emphasised the importance of connectivity, economic integration, and people-to-people cooperation within South Asia. As the host country of the SAARC Secretariat, Nepal continues to possess symbolic importance in sustaining the organisation's institutional relevance (SAARC, 2024).

Nepal can also play the role of a mediator and consensus-builder by encouraging dialogue among member states. While Nepal may not possess the economic or military influence of India, its diplomatic neutrality allows it to facilitate regional conversations in less politically sensitive ways. Additionally, Nepal's geographical location provides it with strategic importance in regional connectivity initiatives. Hydropower cooperation, tourism integration, environmental management, and cross-border infrastructure projects between India and Nepal can serve as models of regional cooperation for SAARC countries.

Nepal has increasingly recognised the importance of economic diplomacy and regional connectivity for national development. Cross-border energy trade between India and Nepal has expanded significantly in recent years, demonstrating how regional cooperation can generate mutual economic benefits despite political complexities.

5. Areas of Cooperation for Reviving SAARC :

The revival of SAARC requires shifting attention from contentious political disputes toward practical areas of shared interest. India and Nepal can jointly promote issue-based regional cooperation in several sectors.

Climate change represents one of the most urgent concerns facing South Asia. Himalayan glacier melting, floods, water insecurity, and natural disasters affect multiple countries across the region. India and Nepal can therefore promote regional environmental cooperation, disaster preparedness mechanisms, and climate adaptation strategies within the SAARC framework.

Public health cooperation is another critical area. The COVID-19 pandemic demonstrated the importance of regional coordination in healthcare systems, vaccine distribution, and medical infrastructure. SAARC can function as a platform for health diplomacy and collaborative crisis management.

Energy connectivity also presents major opportunities. Nepal's vast hydropower potential, combined with India's growing energy demands, can strengthen regional energy security. Regional electricity grids and renewable energy partnerships could create mutually beneficial outcomes for South Asian countries.

Digital integration and fintech cooperation represent emerging possibilities for regional collaboration. India's success with digital public infrastructure, including UPI and Aadhaar-based systems, could support financial inclusion initiatives across South Asia. Technological cooperation can strengthen trade facilitation and digital connectivity within the region.

Educational and cultural exchanges should also be prioritised. South Asia shares deep civilizational and historical links that can strengthen people-to-people connectivity and regional understanding beyond political disputes.

6. Challenges to Revival :

Despite these possibilities, significant challenges remain. The India-Pakistan conflict continues to obstruct consensus within SAARC. Political instability in several South Asian countries further complicates regional coordination and policy implementation.

There is also growing strategic competition in South Asia involving external powers such as China. China's Belt and Road Initiative (BRI) has expanded its influence in the region, affecting regional geopolitical calculations. According to Muni (2010), the weakening of SAARC has partly enabled greater external influence in South Asian regional affairs.

Institutional limitations within SAARC also require attention. Weak enforcement mechanisms, limited financial resources, and slow decision-making processes have reduced the organisation's effectiveness. Wagner (2016) notes that SAARC's institutional weaknesses continue to undermine meaningful regional cooperation and implementation of agreements.

Reviving SAARC, therefore, requires not only political will but also institutional reforms, stronger implementation mechanisms, and greater trust among member states.

7. Conclusion :

The revival of SAARC is essential for strengthening regional cooperation and economic integration in South Asia. While political tensions have weakened the organisation over the years, the growing interconnectedness of regional challenges makes cooperation increasingly necessary.

India, as the dominant regional power, possesses the capacity to provide strategic leadership and economic momentum for SAARC's revival. Nepal, through its diplomatic balance and commitment to regionalism, can function as an important bridge-builder and facilitator of dialogue.

The future of SAARC may depend on moving beyond rigid political disputes and focusing instead on practical cooperation in areas such as climate change, connectivity, public health, energy,

and digital integration. In a rapidly changing global order, South Asia cannot afford prolonged regional fragmentation.

Reviving SAARC is therefore not merely an institutional necessity; it is a strategic imperative for ensuring stability, development, and collective progress in South Asia.

References :

- Dash, K. C. (2008). *Regionalism in South Asia: Negotiating cooperation, institutional structures*. Routledge.
- Malone, D. M. (2011). *Does the elephant dance? Contemporary Indian foreign policy*. Oxford University Press.
- Muni, S. D. (2010). *India's foreign policy: The democracy dimension*. Cambridge University Press.
- South Asian Association for Regional Cooperation. (2024). *About SAARC*. https://saarc-sec.org
- Wagner, C. (2016). SAARC and the challenges of regional cooperation in South Asia. *Journal of South Asian Development, 11*(1), 1–17. https://doi.org/10.1177/0973174116632890
- World Bank. (2022). *South Asia economic focus: Trade*. World Bank Publications.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 241-245

भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों की भूमिका

डॉ. सुनिता सारस्वत
सह–प्राध्यापक, शिक्षा विभाग,
सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी (झुंझुनू) राज.।

सारांश –

भारतीय संस्कृति नैतिक मूल्यों पर आधारित है, जिनमें सत्य, अहिंसा, करुणा, त्याग और सहिष्णुता प्रमुख हैं। ये मूल्य व्यक्ति और समाज दोनों के विकास में सहायक होते हैं। ये नैतिक मूल्य सदियों पुरानी परंपराओं, धर्म, और आध्यात्मिकता पर आधारित हैं, जो व्यक्तिगत चरित्र निर्माण और सामाजिक सामंजस्य पर जोर देते हैं। प्रमुख मूल्यों में सत्य, अहिंसा, करुणा, बड़ों का सम्मान, अतिथि देवो भवः, संयुक्त परिवार, आत्म–संयम और पर्यावरण के प्रति सम्मान शामिल हैं, जो 'वसुधैव कुटुंबकम्' (पूरी दुनिया एक परिवार है) की भावना को बढ़ावा देते हैं। प्राचीन ग्रंथों और महान व्यक्तियों ने इन मूल्यों को अपनाने का संदेश दिया है। आधुनिक युग में भी इनकी प्रासंगिकता बनी हुई है और ये सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकते हैं। ये नैतिक मूल्य न केवल व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करते हैं, बल्कि समाज में विश्वास और सम्मान स्थापित करने में भी सहायक होते हैं। नैतिक मूल्य मानव जीवन के आधार स्तंभ होते हैं। ये मूल्य व्यक्ति को सही और गलत में भेद करना सिखाते हैं तथा समाज में संतुलन बनाए रखते हैं। भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, त्याग, और सहिष्णुता जैसे नैतिक मूल्यों को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

बीज शब्द – भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्य।

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध संस्कृतियों में से एक है। इसकी विशेषता केवल इसकी प्राचीनता में ही नहीं, बल्कि इसके नैतिक मूल्यों, आध्यात्मिक दृष्टिकोण और मानव जीवन के उच्च आदर्शों में निहित है। भारतीय संस्कृति में नैतिकता केवल सामाजिक नियम नहीं है, बल्कि यह जीवन जीने की एक कला है।

भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्य सदियों पुरानी परंपराओं, धर्म, और आध्यात्मिकता पर आधारित हैं, जो व्यक्तिगत चरित्र निर्माण और सामाजिक सामंजस्य पर जोर देते हैं। प्रमुख मूल्यों में सत्य, अहिंसा, करुणा, बड़ों का सम्मान, अतिथि देवो भवः, संयुक्त परिवार, आत्म–संयम और पर्यावरण के प्रति सम्मान शामिल हैं, जो 'वसुधैव कुटुंबकम्' (पूरी दुनिया एक परिवार है) की भावना को बढ़ावा देते हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रमुख नैतिक मूल्य :

- **धर्म और सदाचार :** धर्म का अर्थ केवल पूजा–पाठ नहीं, बल्कि अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करना है। यह सही और गलत के बीच अंतर करने की क्षमता विकसित करता है।

- **सत्य और अहिंसा :** महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित ये मूल्य जीवन के मूल आधार हैं। अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक हिंसा न करना नहीं, बल्कि मानसिक और शारीरिक रूप से किसी को चोट न पहुँचाना भी है।
- **अतिथि देवो भव :** मेहमान को भगवान के समान माना जाता है, जो उदारता और सेवा भाव को दर्शाता है।
- **संयुक्त परिवार और सामूहिकता :** व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर परिवार और समाज की जरूरतों को रखना, जो करुणा, साझा करने और देखभाल करने की भावना विकसित करता है।
- **आध्यात्मिकता और आत्म-ज्ञान :** योग, ध्यान और आत्म–अनुशासन के माध्यम से आंतरिक शांति और आत्म–साक्षात्कार प्राप्त करना।
- **विविधता में एकता और सहिष्णुता :** विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और विचारों को सम्मान देना और सह–अस्तित्व को बढ़ावा देना।
- **प्रकृति के प्रति सम्मान :** भारतीय संस्कृति में नदियों, पेड़ों और जानवरों को पवित्र मानकर उनका संरक्षण करने की परंपरा है, जो सतत विकास का संदेश देती है।

ये नैतिक मूल्य न केवल व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करते हैं, बल्कि समाज में विश्वास और सम्मान स्थापित करने में भी सहायक होते हैं। नैतिक मूल्य मानव जीवन के आधार स्तंभ होते हैं। ये मूल्य व्यक्ति को सही और गलत में भेद करना सिखाते हैं तथा समाज में संतुलन बनाए रखते हैं। भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, त्याग, और सहिष्णुता जैसे नैतिक मूल्यों को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

नैतिक मूल्यों की परिभाषा और स्वरूप –

नैतिक मूल्य वे सिद्धांत हैं जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करते हैं और उसे सही दिशा प्रदान करते हैं। ये मूल्य व्यक्ति को यह सिखाते हैं कि उसे समाज में कैसे व्यवहार करना चाहिए।

नैतिक मूल्यों की विशेषताएँ –

ये सार्वभौमिक होते हैं। समय के साथ भी प्रासंगिक रहते हैं। व्यक्ति और समाज दोनों के विकास में सहायक होते हैं। आत्म–संयम और अनुशासन को बढ़ावा देते हैं। भारतीय दृष्टिकोण में नैतिकता का संबंध केवल बाहरी व्यवहार से नहीं बल्कि आंतरिक शुद्धता से भी है।

भारतीय संस्कृति की मूल अवधारणा –

भारतीय संस्कृति की जड़ें वेदों, उपनिषदों, पुराणों और महाकाव्यों में निहितहैं। इसमें "धर्म" को सबसे महत्वपूर्ण तत्व माना गया है।

धर्म का अर्थ –

यहाँ धर्म का अर्थ किसी विशेष धर्म से नहीं बल्कि कर्तव्य और नैतिक आचरण से है।

- सत्य का पालन
- न्याय करना
- दूसरों के प्रति सम्मान
- कर्तव्य का निर्वहन

प्राचीन ग्रंथों में नैतिक मूल्य –

भारतीय ग्रंथों में नैतिक मूल्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है :

* **रामायण** – मर्यादा, आदर्श जीवन, त्याग, श्री राम को आदर्श पुरुष माना गया।
* **महाभारत** – धर्म और अधर्म का संघर्ष। कर्म और उसके फल का सिद्धांत।
* **भगवद गीता–**

• **कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग** – ये तीनों मोक्ष (मुक्ति) पाने के प्रमुख मार्ग माने जाते हैं, जिनका वर्णन खास तौर पर भगवद गीता में मिलता है। हर मार्ग का तरीका अलग है, लेकिन लक्ष्य एक ही है, आत्मिक शांति और परम सत्य की प्राप्ति।

(1) **कर्मयोग** – कर्मयोग का मतलब है, बिना फल की चिंता किए अपना कर्तव्य करना। अपने काम को ईमानदारी से करो फल की चिंता भगवान पर छोड़ दो। स्वार्थ के बिना काम करना।

(2) **ज्ञानयोग** – ज्ञानयोग का मतलब है, सत्य को समझकर आत्मा और परमात्मा को जानना। "मैं कौन हूँ?" इस सवाल का उत्तर खोजो। आत्मा और शरीर के अंतर को समझो। सही ज्ञान से अज्ञान को दूर करो।

(3) **भक्तियोग** – भक्तियोग का मतलब है, भगवान के प्रति प्रेम और समर्पण। भगवान पर पूरा विश्वास रखना। प्रेम, श्रद्धा और भक्ति से जुड़ना। अहंकार छोड़कर समर्पण करना

• **कर्तव्य पालन पर जोर :**

प्रमुख नैतिक मूल्य और उनका महत्व :

(1) **सत्य** – सत्य को भारतीय संस्कृति में सर्वोच्च माना गया है। "सत्य ही ईश्वर है।"

(2) **अहिंसा** – अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं बल्कि मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न देना है।

(3) **करूणा और दया** – दूसरों के दुख को समझना और सहायता करना।

(4) **त्याग और बलिदान** – अपने स्वार्थ का त्याग करना।

(5) **सहिष्णुता** – विभिन्न धर्मों और विचारों का सम्मान।

भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों की भूमिका –

भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है :

- परिवार में अनुशासन और संस्कार।
- समाज में शांति और सद्भाव।
- व्यक्ति के चरित्र निर्माण में योगदान।
- सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा।

शिक्षा और नैतिक मूल्य –

शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति का साधन नहीं है, बल्कि यह नैतिक मूल्यों के विकास का भी माध्यम है।

- **गुरूकुल प्रणाली** – गुरुकुल प्रणाली प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति थी, जिसमें विद्यार्थी (शिष्य) अपने गुरु के साथ रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। इस प्रणाली में छात्र अपने घर से दूर गुरु के आश्रम में रहते थे और वहीं पढ़ाई के साथ–साथ जीवन जीने की कला सीखते थे।

गुरूकुल प्रणाली की विशेषताएँ –

गुरू के साथ रहना : छात्र गुरु के घर में ही रहते थे। **समग्र शिक्षा :** केवल किताबों का ज्ञान नहीं, बल्कि जीवन के मूल्य भी सिखाए जाते थे। **अनुशासन :** नियम, सादगी और संयम पर जोर। **स्वावलंबन :** विद्यार्थी खुद अपने काम करते थे (जैसे लकड़ी लाना, भोजन बनाना)। **समानता :** सभी छात्रों को समान शिक्षा मिलती थी, चाहे वे किसी भी वर्ग के हों।

- जीवन मूल्यों की शिक्षा।
- गुरु–शिष्य परंपरा।
- आधुनिक शिक्षा।
- नैतिक शिक्षा का महत्व।
- चरित्र निर्माण।

महान व्यक्तियों के विचार –

महात्मा गांधी – सत्य और अहिंसा के प्रतीक। नैतिक जीवन का उदाहरण।

स्वामी विवेकानंद – मानव सेवा को सर्वोच्च धर्म बताया।

गौतम बुद्ध – करुणा और मध्यम मार्ग का उपदेश।

आधुनिक युग में नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता –

आज के समय में नैतिक मूल्यों का महत्व और भी बढ़ गया है :

- भ्रष्टाचार की समस्या।
- नैतिक पतन।
- सामाजिक असंतुलन।

नैतिक मूल्य इन समस्याओं का समाधान प्रदान करते हैं।

वैश्वीकरण और भारतीय नैतिक मूल्य –

वैश्वीकरण के कारण सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं, लेकिन भारतीय नैतिक मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं:

- "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना।
- विश्व शांति का संदेश।
- सांस्कृतिक समन्वय।

चुनौतियाँ और समाधान :

चुनौतियाँ :–

- पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव।
- भौतिकवाद।
- पारिवारिक मूल्यों में कमी।

समाधान :

- नैतिक शिक्षा को बढ़ावा।
- पारिवारिक संस्कार।
- आध्यात्मिकता का विकास।

निष्कर्ष :

भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ये मूल्य न केवल व्यक्ति के चरित्र निर्माण में सहायक हैं बल्कि समाज में शांति और सद्भाव बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आज के आधुनिक युग में, जब समाज कई समस्याओं से जूझ रहा है, नैतिक मूल्यों का पालन और भी आवश्यक हो गया है। यदि हम इन मूल्यों को अपने जीवन में अपनाएँ, तो एक आदर्श समाज का निर्माण संभव है।

संदर्भ सूची –

- सिंह, वीरेन्द्र (2020) भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्य. जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
- राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (2019) भारतीय दर्शन (भाग 1 एवं 2). नई दिल्ली : राजपाल एंड संस।
- पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र (2018) भारतीय संस्कृति. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- शर्मा, रामविलास (2018) भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
- दत्त, सत्यकेतु (2017) भारतीय संस्कृति का विकास. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन।
- उपाध्याय, भगवतशरण (2016) भारतीय संस्कृति के स्रोत. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ।
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद (2015) भारतीय संस्कृति की देन. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 246-250

Reassessing Human Intelligence : The Growing Significance of SQ and AQ in Modern Society

Dr. Vinita Swarnkar
Assistant Professor - Psychology,
Govt. J.Y.C.G. College, Raipur.

Abstract :

For much of modern history, intelligence has been measured primarily through cognitive abilities represented by Intelligence Quotient (IQ). Later, Emotional Quotient (EQ) emerged as an important complement, emphasizing emotional awareness, empathy, and interpersonal skills. However, the rapidly changing social, technological, and professional landscape of the twenty-first century has challenged traditional understandings of human intelligence. New dimensions of intelligence, particularly Spiritual Quotient (SQ) and Adversity Quotient (AQ), are increasingly recognized as essential for personal fulfillment, leadership effectiveness, social harmony, and resilience. This paper examines the evolving concept of intelligence and explores the growing significance of SQ and AQ in modern society. It argues that while IQ and EQ remain important, SQ and AQ provide critical capacities that enable individuals to navigate uncertainty, ethical dilemmas, existential questions, and complex life challenges. Through an analysis of contemporary research, educational trends, workplace dynamics, and social developments, this paper highlights the need for a more holistic understanding of human intelligence that incorporates spiritual awareness and resilience alongside cognitive and emotional competencies.

Keywords : Intelligence, IQ, EQ, Spiritual Quotient, Adversity Quotient, Human Development, Leadership, Resilience, Modern Society.

Introduction :

The concept of intelligence has undergone significant transformation over the past century. Traditional models primarily focused on cognitive abilities such as reasoning, memory, analytical thinking, and problem-solving, all of which were measured through Intelligence Quotient (IQ) tests. High IQ was often considered the primary determinant of academic achievement and professional success. However, researchers and practitioners gradually recognized that intellectual ability alone could not explain why some individuals thrive in challenging situations while others struggle despite

possessing exceptional cognitive skills.

The emergence of Emotional Quotient (EQ) in the late twentieth century broadened the understanding of intelligence by emphasizing emotional regulation, empathy, self-awareness, and interpersonal effectiveness. EQ demonstrated that emotional competencies play a crucial role in leadership, teamwork, and personal relationships.

In recent decades, two additional dimensions of intelligence have gained increasing attention: Spiritual Quotient (SQ) and Adversity Quotient (AQ). SQ refers to an individual's capacity to find meaning, purpose, and ethical direction in life, while AQ represents the ability to respond positively and effectively to challenges, setbacks, and adversity. In a world characterized by rapid technological change, social uncertainty, environmental crises, and increasing mental health concerns, these forms of intelligence have become increasingly relevant.

This paper explores the growing significance of SQ and AQ in modern society and argues that they are indispensable components of a comprehensive understanding of human intelligence.

Evolution of the Concept of Intelligence :

Historically, intelligence was viewed through a narrow cognitive lens. Early psychologists such as Alfred Binet and Lewis Terman developed intelligence tests to measure mental capabilities and predict academic performance. IQ assessments focused on logical reasoning, mathematical skills, verbal abilities, and memory.

Understanding Spiritual Quotient (SQ) :

Spiritual Quotient refers to the capacity to understand deeper meanings, values, and purposes in life. Unlike religious adherence, SQ is not limited to any specific faith tradition. Rather, it involves the ability to transcend immediate circumstances, connect with universal values, and align actions with ethical principles. Researchers such as Danah Zohar and Ian Marshall describe SQ as the intelligence that enables individuals to address questions of meaning and value. It helps people determine not only what they can do but also what they should do.

Key characteristics of individuals with high SQ include: Strong sense of purpose and meaning Ethical decision-making Self-awareness and reflection Compassion and empathy Capacity for forgiveness Ability to maintain inner peace during uncertainty Openness to diverse perspectives SQ allows individuals to integrate personal beliefs, values, and experiences into a coherent framework that guides behavior and decision-making.

The Importance of SQ in Modern Society Addressing the Crisis of Meaning :

Modern society has witnessed remarkable technological advancement, yet many individuals experience feelings of emptiness, alienation, and loss of purpose. The pursuit of material success alone often fails to provide lasting fulfillment. SQ helps individuals find meaning beyond external

achievements. It encourages reflection on life's deeper purposes and fosters a sense of connectedness with others and the broader world. This capacity becomes especially important in societies facing increasing levels of stress, anxiety, and existential uncertainty.

Supporting Mental Health and Well-Being :

Research suggests that meaning, purpose, and spiritual well-being contributes significantly to psychological resilience. Individuals with high SQ often possess stronger coping mechanisms during periods of grief, illness, or crisis. By fostering hope, optimism, and inner stability, SQ serves as an important resource for maintaining mental health in challenging circumstances.

Understanding Adversity Quotient (AQ) :

Adversity Quotient refers to an individual's ability to respond effectively to difficulties, setbacks, failures, and stressful situations. The concept was introduced by Paul Stoltz, who argued that AQ determines how successfully people overcome obstacles and persist toward their goals.AQ focuses on resilience and adaptability rather than intelligence or emotional awareness alone. It measures an individual's capacity to withstand pressure, recover from failure, and continue progressing despite challenges. Stoltz identified four key dimensions of AQ, commonly represented by the CORE model.

Control :

The extent to which individuals perceive themselves as having influence over difficult situations. Ownership The willingness to take responsibility for addressing problems rather than blaming others.

Reach :

The ability to prevent adversity from affecting unrelated areas of life.

Endurance The perception that difficulties are temporary and can be overcome.

Individuals with high AQ demonstrate persistence, optimism, flexibility, and determination even in highly demanding environments. The Importance of AQ in Modern Society Navigating Uncertainty and Change The twenty-first century is characterized by rapid technological innovation, economic fluctuations, and evolving workplace demands. Careers are increasingly dynamic, requiring individuals to adapt continuously. AQ enables people to embrace change rather than fear it. Those with high AQ are better equipped to learn new skills, adjust to changing circumstances, and remain productive during transitions.

Relationship Between SQ and AQ :

Although SQ and AQ represent distinct dimensions of intelligence, they are closely interconnected. SQ provides meaning and purpose, while AQ provides resilience and perseverance. Together, they help individuals face adversity with courage and optimism. For example, a person experiencing job loss may rely on AQ to remain proactive and seek new opportunities. At the same time, SQ can help them interpret the experience within a broader framework of personal growth and

life purpose. Similarly, healthcare professionals working under stressful conditions benefit from AQ by managing pressure and maintaining performance. SQ helps them sustain compassion, ethical commitment, and a sense of mission. The combination of SQ and AQ creates a powerful foundation for personal and professional success.

SQ and AQ in the Age of Artificial Intelligence :

The rise of artificial intelligence (AI) has intensified discussions about the future of human intelligence. Machines increasingly perform tasks involving data analysis, pattern recognition, and even creative content generation. As AI assumes many cognitive functions traditionally associated with IQ, uniquely human capacities become more valuable. SQ and AQ represent qualities that are difficult to replicate through technology.AI can process information rapidly, but it cannot genuinely experience meaning, purpose, moral responsibility, or spiritual reflection. Similarly, while machines can be programmed to respond to challenges, they do not possess human resilience rooted in personal experience and emotional growth. Consequently, future societies may place greater emphasis on SQ and AQ as distinguishing features of human capability.

Implications for Education :

Educational systems must evolve to address the changing understanding of intelligence. Schools and universities should complement academic instruction with programs that promote: Self-reflection and mindfulness.

Ethical reasoning Character development Resilience training Problem-solving under uncertainty Community engagement Social responsibility by nurturing SQ and AQ alongside IQ and EQ, educational institutions can prepare students for both professional success and meaningful lives. Such an approach aligns with holistic education models that emphasize intellectual, emotional, social, ethical, and spiritual growth.

Challenges and Criticisms *:*

Despite their growing popularity, SQ and AQ face several criticisms. First, measuring these constructs remains challenging. Unlike IQ tests, there is no universally accepted method for assessing spiritual intelligence or adversity quotient. Second, some scholars argue that SQ overlaps with personality traits, moral development, or emotional intelligence. Similarly, AQ may share characteristics with resilience and grit. Third, cultural differences influence interpretations of spirituality and adversity. What constitutes spiritual intelligence in one society may differ significantly in another. Nevertheless, the practical relevance of SQ and AQ continues to gain support from educators, psychologists, leadership experts, and organizational researchers.

Conclusion :

The understanding of human intelligence has evolved significantly beyond traditional notions

of cognitive ability. While IQ remains important for analytical reasoning and problem-solving, it no longer provides a complete picture of human potential. Emotional intelligence expanded the framework by highlighting the importance of interpersonal and emotional competencies. Today, Spiritual Quotient (SQ) and Adversity Quotient (AQ) represent increasingly significant dimensions of intelligence in a rapidly changing world.

SQ enables individuals to find meaning, purpose, and ethical direction, while AQ equips them with resilience, adaptability, and perseverance in the face of challenges. Together, these forms of intelligence address critical demands of modern society, including ethical leadership, mental well-being, social harmony, and effective responses to uncertainty.

As technological advancements continue to transform human life and work, the qualities embodied by SQ and AQ become even more valuable. Educational institutions, organizations, and policymakers should therefore adopt a holistic approach to human development that recognizes the complementary roles of IQ, EQ, SQ, and AQ. Ultimately, the future of human success may depend not only on how intelligently people think but also on how meaningfully they live and how resiliently they respond to adversity.

REFRENCES :

- Gardner, H (1983) Frame of mind: The theory of multiple intelligences.
- Goleman, D (1995) Emotional Intelligence: Why it can more than matter IQ.
- King, D.B. (2008) Rethinking Claims of Spiritual intelligence : A definition, model, and measure (Master thesis, Trent University)
- Maddi, S.R. (2006) Hardiness: The Courage to grow from stresses.
- Seligman, M.E.P. (2011) Flourish: A visionary new understanding of happiness and well-being.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
January-June 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 251-255

मुण्डा जनजातियों में विवाह परंपराओं का दस्तावेजीकरण

विराजमान मुण्डा
शोधार्थी, मुण्डारी विभाग राँची विश्वविद्यालय, राँची झारखण्ड।

परिचय :–

मुण्डा जनजाति में विवाह एक पवित्र सामाजिक व धार्मिक संस्कार है जो वंशावली की निरंतरता और समुदाय के बीच संबंध स्थापित करता है। मुण्डा जनजातियों में विवाह परंपरा दो लोगों, उनके परिवारों और संस्कृतियों को जोड़ने वाली एक सामाजिक और धार्मिक मान्यता है। यह न केवल दो वयस्कों के बीच के रिश्ते का कानूनी और सामाजिक स्वीकृति देता है। बल्कि वंश वृद्धि और एक नए परिवार की नींव का भी मुख्य आधार है। विवाह केवल दो लोगों का मिलन नहीं, बल्कि कई रीति–रिवाजों और गहराइयों का संगम है।

भूमिका :–

जाति–वंश की निरंतरता एंव वृद्धि के लिए मुण्डा समाज में विवाह को अनिवार्य संस्कार परंपरा मानते है। मुण्डाओं में देखा जाए कि साधारणता युवावस्था अवधि में शादी विवाह होता है। जब मुण्डाओं में युवक और युवती दोनों अपने परिवारिक दायित्वों को निभाने की दक्षता तथा छमता हासिल कर लेते है, तो विवाह के योग्य मान लिये जाते है। जिसे कि मुण्डा समाज में स्पष्ट से मान्यता दी जाती है। कि युवक जब हल बनाना सीख लेता है तो माना जाता है कि युवक विवाह योग्य है तथा युवती जब चटाई बुनने तथा बनाने सीख जाती है तो वे भी शादी के योग्य हो जाते है ऐसा समझा जाता है। लेकिन आज के वर्तमान समय में शिक्षित होने के बाद युव या युवती अपने स्वंय रोजगर जैसे काम करने लगते है अर्थात अभी भी मुण्डाओं के परंपरा के अनुसार 'आत्मनिर्भरता' को विवाह के लिए प्राथमिकता दी जाती है।

मुण्डा समाज में विवाह बहिर्गोत्रीय होता है। मुण्डा के बीच काई प्रकार के विवाह है जैसे कि माता–पिता के माध्यम से विवाह, राजी–खुशी विवाह, सेवा विवाह, अपहरण विवाह इत्यदि। इसमें राजी–खुशी विवाह मुण्डाओं में अधिक प्रचलित है और मुण्डाओं में एकाल पत्नी विवाह का प्रचलन है किन्तु पत्नी से संतान न होने की स्थिति में बहुपत्नी की विवाह के उदाहरण भी मिलते है। इससे समाज में मान्यता प्राप्त है मुण्डा जनजाति समाज में विवाह बहिर्गोत्रीय होता है। एक ही गोत्र का विवाह मुण्डाओं में पूर्णतः वर्जित माना जाता है, और विवाह प्रायः अपनी ही जाति के भिन्न गोत्र में किया जाता है। विवाह संस्कार में मुण्डाओं के परंपराओं का निर्वहन सदियों से चले आए रीति–रिवाजों का कड़ाई से पालन किया जाता है। लेकिन बदलते सामाजिक और सास्कृतिक माहौल और हिन्दु एवं ईसाई धर्म के प्रभाव के कारण अब इसमें काफी परिवर्तन देखने को मिल रहा है। फिर भी बहुत हद तक विवाह संस्कार मुण्डा परंपरा के अनुरूप ही संपन्न किया जाता है।

मुण्डा समाज में विवाह संस्कार के नियम का पलन करना होता है नियमपूर्वक पालन के बिना मुण्डा समुदाय में विवाह संस्कार पूरा नहीं माना जाता है– पहले तो कन्या देखना, वर देखना, सगुन देखना, कन्या मूल्य,

लोगोन (थोल) बंधना, उलिसाखी, सुनुम गोसो, आड़ंदि, सिन्दूरी (रकब) चढाना, तथा सोपा सारा इत्यादि कार्य किया जना संम्पन होता है।

(क) कन्या देखना (लेल लेपेल) –

कन्या देखना यह विवाह की प्रारम्भिक प्रक्रिया है यहाँ से वर पक्ष से पिता या चाचा, मामा और गाँव के कुछ विशेष व्यक्ति लडकी देखने कन्या पक्ष के घर को जाते है। कन्या देखने जाने से पहले सिङबोगा (ईश्वर) की आराधना की जाती है। तकि रिशता कैसा हो? सगुन ठीक है या नहीं? रास्ते में किसी प्रकार के अड़चना बाँधा न हो, और अच्छी तरह से सब कम हो। कन्या देखने के लिए लड़का पक्ष को ले जाने वाला काम 'दुतामदार' अगुवा रहता है जो दोनों तरफ के संबंध को जोड़ने का काम करते है।

सगुन – अपसगुन नहीं मिलने पर वर पक्ष के लोग दुतामदार की अगुवाई में लड़की के गाँव पहुँचते है। गाँव पर अन्तिम बार सिङबोगा की आराधना की जाती है और दोनों पक्ष के बुजुर्ग इस अवसर पर साथ बैठते है और आपस में परिचय आदि के बाद विवाह संबंध के बारे में विचार विमर्श करते हुए कार्य अरंभ करते है, इसी दौरान शादी के लिए चिन्हित लड़की को लोगों के बीच में लाया जाता है लड़की अगुवों का अभिनन्दन मुण्डा परंमपरा के अनुसार करती है और अपने लिए निर्धारित स्थान पर बैठ जाती है। पारी–पारी से आगन्तुक मेहमानों का पैर धोती है और उसी समय लड़का का मामा लड़की से सवाल–जवाब करते है। जब वर पक्ष के लोग परिचय, करते है तथा विचार – विमर्श और लड़की से मिलने, बात करने के बाद पूरी तरह से संतुष्ट हो जाते है और सब देकर खुशी होते है। इसके बाद लड़का का मामा लड़की को कुछ पैसा या साड़ी भेंट दे कर लड़की पसंद हो जाने की घोषणा करते है इसके बाद लड़की घर के अन्दर चली जाती है।

मुण्डाओं में कहीं–कहीं तो वर पक्ष के लिए साड़ी एवं अन्य वस्त्र, आभूषण आदि साथ में ले जाते है और लड़की के घर वालों को दे दिया जाता है, लाये गये वस्त्र एवं आभूषणों को पहनकर लड़की सिर पर पानी भरा लोटा रखकर उपस्थित लोगों के बीच आती है। वर के बड़े भाई या मामा को यदि लड़की पसंद आती है तो लोटा उतार कर धोते है और लड़की को लड्डू खिलाते है, इस अवसर पर उपस्थित सारे लोगों को भोजन खिलाया जाता है इसके बाद विदाई दी जाती है।

(ख) वर देखना (बोओर लेल) –

कन्या को देखने की प्रक्रिया सम्पन्न होने के कुछ दिन बाद कन्या पक्ष वाले वर (भावी नया दुल्हा) को देखने जाते है। इसमें भी सगुन, अपसगुन को देखते हुए लड़की पक्ष के लोग लड़का के घर पहुँचते है। और दोनों तरफ से जोहार नमस्कार होने के बाद लड़का देखने की प्रक्रिया होती है, लड़का अपने घर से निकलता है उपस्थित मेहमानों को जोहार करता है। उसके बाद सब कोई पाटि बिछा कर बैठ जाते है। और सवल–जवाब किया जाता है। सब कम खत्म होने के पश्चत् इसी बीच में वधु मूल्य के बारे में बात चित के लिए तिथि निर्धारित करते है। और उसी बीच में साथ–ही–साथ शादी की तिथि के दिन के बारे में बात करते है सभी कोई मिलकर उस तिथि को सही निर्धारित करते है। इस अवसर पर आए हुए सभी मेहमानों को स्वगात के साथ खुशी से सब मिलकर खाते–पीते है।

(ग) चेंड़े उरी :–

मुण्डाओं में शादी की बात दुतमदार के या अगुवा के नेतृत्व में होता है और दुतामदार दोनों ही परिवारों का परिचित होता है। शादी की बात तय होने पर वर पक्ष के लोग कन्या देखने को जोते है। रास्ते में वे सगुन

– अपसगुन जीव–जन्तु, चीज वस्तुओं को ध्यान से देखते जाते है। जिसे मुण्डारी के भाषा में 'चेंड़े सब' कहा जाता है। जैसे– गाय–बछड़ा, माथे पर धान का बोझा लाते हुए, या भरा घड़ा पानी लाते हुए कोई भी स्त्रियाँ लाती है। और चिड़ियाँ के मधुर–मिठास बोलियाँ की गुजाइस से आदि मिलने से सगुन माना जाता है। और कुल्हाड़ी लेकर आता हुआ आदमी, धसा हुआ मकान, गिरता हुआ पेड़, विषैला सांप का दर्शन आदि अपसगुन ही माना जाता है।

कन्या देखने के एक सप्ताह बाद कन्या पक्ष के लोग भी वर देखने जानेके रास्ते में इन सगुन और अपसगुन के बारे में गुणी–ओझा या जानकार के माध्यम से जानते और उस पर ही विचार करते है। छोटे से अपसगुनों को पुजा के माध्यम से दूर किया जाता है। बड़े अपसगुनों के निकलने पर जो कि भविष्य में खतरा को उत्पन्न करेगें, वैसे हालत में रिश्ता नहीं जोड़ा जाता है, यह प्रथा मुण्डा समाज में कफी महत्वपूर्ण है। आज कल पढ़े–लिखे लोग इनको दकियानूसी विचार मानते है, और रिश्ता कर लेते है। लेकिन मुण्डा जनजाति यह मनते है जिससे जीवन के सफर में कभी भी कहीं भी संकट पैदा हो जाता है, और परिवार को भयंकर मुसीबतों का समना करना पड़ सकता है जिसके कारण कोई बार तो जीवन के सफर में थोड़े ही दिनों में पति या पत्नी किसी एक का मृत्यु भी हो जाती है। और अपनी पूरी जीवन अच्छी तरह से व्यतीत नहीं हो पाती है। इसी लिए विवाह संबंध कायम करने के समय मुण्डा समाज इन सगुन और अपसगुनों का ध्यान रखने में पत्यपर्य रहता है। सगुन ठीक होने पर वधू मुल्य निश्चिय किया जाता है। और वधू मूल्य के रूप में बैल या कपड़ा की मांग रखी जाती है। और वर पक्ष लोग इन मूल्यों को खुशी से चुकाने की स्वीकृति देते है। इस प्रकार 'चेंड़े उरी' की काम समाप्ति के बाद भोज का आयोजन होता है। हँड़ियें के दूसरे मटके के साथ उस दिन के जसन् की समाप्ति होती है, पारस्परिक अभिवादन के बाद भावी संबंधी एक दूसरे से विदा लेते हुए जोहार करते हैं।

(घ) गोनोङ टका (दम पैसा) –

मुण्डारी भाषा में वधु मूल्य को 'गोनोङ टका' कहा जाता है। यदि शादी उसी वर्ष करनी है तो जिस वर्ष मंगनी हुई है, तो गोनोङ टका और 'लोगोन थोल' अक्सर एक ही दिन पूरा कर लिया जाता है निर्धारित वधू मूल्या शादी के कुछ दिनों पूर्व कन्या पक्ष को पहुँचया जाता है। यह कार्य कुछ बुजुर्ग लोगों को साथ में लेकर ही दुतामदार के नेतृत्व में सम्पन्न होता है। इसी के बाद शादी का दिन निश्चित हो जाता है और तय तिथि को वर पक्ष वाले बारात लेकार दुल्हन के गाँव के घर पहुँच जाते है।

(ङ) मंगनी (दाः अड़गु) –

मंगनी में करीब दस या बारह व्यक्ति लड़की का घर जाते है, दुल्हा बाबू भी साथ में जाता हैं। प्रचीन काल में कपड़ा पहले ही भेज दिया जाता था, वर्तमान में कपड़ा लेकर जाते है। कपड़ा देने की क्रिया को दचा कहते है। लोटा में ठंडा पानी डाल दिया जाता है। लड़का और लड़की को आमने–समने खड़ा किया जाता है। अगुवा सवाल के अनुसार लोटा पानी का आदान–प्रदान होता है लोटा पानी का लेना और देना अपनी स्वीकृति का प्रतीत है रीति समाप्त होने पर लोटा पानी लड़के के कुटुम्ब की ओर उतारा जाता है। अंत में हँड़िया या चाय पानी को उपस्थित कुटुम्ब में बाँट दिया जाता है लोग उसे ग्रहण कर पी लेते है अंत में सामान्य भोज दिया जाता है।

(च) आंड़दि (शादी) –

शादी के तय तिथि के अनुसार मड़वा के दिन में दोनों तरफ के घर के आँगन में मड़वा गड़ा जाता है।

मड़वा के चारों ओर के कोने मे ंसाल का बढ़ता नन्हा पेड़ गाड़ दिया जाता है, मड़वा के बीच सोसो यानी भेलवा का बढ़ता नन्हा पौधा गाड़ा जाता है और बाँस, साल और भेलवा तीनों को एक साथ बाँध कर गाड़ दिया जाता है। और चावल के आटे को भी पानी में घोल कर रंग दिया जाता है, रूई से निकला अरवा के धागा उन पर लपेट दिया जाता है। और शादी से तीन दिन पूर्व दुल्हा और दुल्हान को अपने–अपने आँगन के मड़वा में बिठाया जाता है हल्दी और सरसों तेल का मिश्रण बनाया जाता है, उसे दुल्हा और दुल्हान के शरीर पर विलेपन किया जाता है।

शादी तय तिथि को दुल्हा तरफ की ओर से शादी जाने के लिए पहले से गाड़ी की जोगाड़ी की जाती। और सब कोई शादी के लिए तैयार हो जाते है तो गाजे–बाजे के साथ दुल्हा बारात लेकर अपने घर से शादी के लिए रवाना हो जाते है। गाँव के सीमांत में आम पेंड़ के पास बारात जाते वाक्त रूकती है। दुल्हा बाबू 'उलिसाकी' कराया जाता है। यह सामाजिक रस्म आम के वृक्ष को साक्षी मानकर पूरा किया जाता है। दुल्हा आम वृक्ष के चारों ओर धागा लपेटता है। आम के पत्ते को डंठल को चबाता है और उसे अपनी माता के मुँह में रख देता है इसी समय दुल्हा अपने आप वादा करता है कि माता–पिता की सेवा–सुश्रुषा करने वाली बहु लाएगा। और माँ अपने बेटे को आशीर्वाद देकर वहाँ से विदा करती है बराती के लिए निकाल जाते है।

लड़की के घर पहुँचने पर बरात का जोरदार गाजा–बाजा, नगड़ा और ढोल डोलकी से जोरदार स्वागत किया जाता है। ढोल–ढाक बजा के साथ–साथ पईका नृत्य भी होता है और साभी लोग अनंद के साथ गाते नचते हुए घर के मड़वा के पास लेकर आते है। और दुल्हा बाबू को ढ़ोकर लाते है, जैसे ही घर पहुँचते है दरवाजा को बाद कर देते है और पैसा देकर खोलते है। इस प्रकार कुछ देर के बाद सभी बरातियों को नाश्ता दिया जाता है शादी का कार्यक्रम रात को होता है।

विवाह के पहले वर और कन्या का 'सुनुम गोसोः' करते है, यानी एक दूसरे पक्ष वर और वधू को तेल और हल्दी लगाया जाता है। इसके बाद लड़की की ' उलिसाकी' होता है। तब दुल्हे को मंडप में लाया जाता है, दुल्हान को उसके भाई टोकरी में उठाकर मंडप में ले आते है मुण्डाओं का विवाह पाहन या ठाकुर के द्वारा सम्पन्न होता है इसके बाद दुल्हा–दुल्हन एक दुसरे को माला पहनाते हैं, और इस प्रकार से मुण्डाओं में 'सिन्दुरी रकब' विवाह की अंतिम नेग नियम होता है। जिसमें सिन्दुर दान होता है। वर और वाधु दोनों ही एक–दूसरे को तीन बार सिन्दुर का टीका लगाते है और सिन्दुर रकब के साथ ही शादी सम्पन्न होने की घोषणा होती है। तत्पश्चात् दुल्हा और दुल्हन सहित सभी बराती , संगे–संबंधी कुटुम्ब के लोग भोज करते नाच गान का कार्यक्रम चलता है।

सोपा सारा –

यह विदाई की परंपरा है। विदाई के वक्त कन्या पक्ष का कोई बुजुर्ग व्यक्ति (पिता, मामा, चाचा) उपस्थित लोगों के सामने कन्या का हाथ वर के हाथों सौंप देता है और ईमानदारी, वफादारी, विश्वास, आपसी प्रेम, सुख–दुःख में साथ, तालमेल, सेवा–सुश्रुषा का संदेश देकर दोनों को आशीर्वाद देता है। इसके बाद कन्या की विदाई कर दी जाती हैं।

विदाई गीत इस प्रकार है–

'हातु तलेम मेनेअ मइना
हातु दोम बगे जदा

दिसुम तलेम मेनेअ मइना
दिसुम दोम राड़ा जदा।
मोद् किआ सिंदुरि ते
हातु गोम बगेजदा
बर थड़ि ससङ ते
दिसुम गोम राड़ा जदा।
हातु गोम बगे जदा
हातु गो लेले रूड़ा लेम
दिसुम गोम राड़ा जदा
दिसुम गो हेता रूड़ा लेम।
हातु गो लेले रूड़ा लेम
अम जुड़ि गतिम को लेल कुलतन
दिसुम गो हेता रूड़ा लेम
अम जोता संगमेको चिना कुलतन।

निष्कर्ष –

प्राकृतिक ने जगत में जिस प्रकार से पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीव–जन्तुओं का अस्तित्व बचे रहे इस लिए सभी प्रकार के जीवों में नर और मदा रूप में सृजन किये, ठीक उसी प्रकार मनुष्यों की अस्तित्व को बचाए रखने के लिए युवा समय में विवाह का रस्म बनाया गया है। इस विवाह परंमपरा में मुण्डा जनजाति अपनी रस्म बेखुबी रूप निभाते है, विवाह के अरंभ से लेकर अंत तक प्रत्येक रस्म सगुण–अपसगुन दोनों बतों को ध्यान देना अति अवश्य है। क्योंकि अपसगुण नजारा दिखने से आने वाले समय में वर–वधु को काई प्रकार के समस्या का समना करना पड़ सकता है, अर्थात मृत्यु भी हो सकती है। इस लिए मुण्डा जनजातियों में सगुण–अपसगुण को विशेष ध्यान दिया जाता है।

सन्दर्भ सूची –

1. होड़ो जगर सइति ओड़ोः सइति ओलहरियाको – डॉ0 मनसिद्ध बड़ायऊद्
2. आदिम मुण्डा और उनका प्रदेश – डॉ0 राज रतन सहाय।
3. झारखण्ड की जनजातियाँ एवं उनकी संस्कृति – गया पाण्डेय।
4. मुण्डा आदिवासियों का समाज, संस्कृति और इतिहास – अमरदीप होरो।
5. झारखण्ड की जनजातियाँ – डॉ0 चतुर्भज साहु।
6. मुण्डारी लोकसाहित्य में ऐतिहासिक तथ्य – डॉ0 सिकरादास तिर्की।

Shodh Paridhi
(ISSN 2349-9575)

नियम एवं शर्तें :

संपादकीय निर्णय : शोध पत्र की स्वीकृति या अस्वीकृति के संदर्भ में संपादक मंडल का निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा। शोध पत्र स्वीकृत होने पर ईमेल द्वारा ही सूचित किया जाएगा।

शब्द एवं पृष्ठ सीमा : शोध आलेख की मानक सीमा अधिकतम 6 पेज होनी चाहिए। 6 पेज से अधिक होने पर रू. 80/- प्रति अतिरिक्त पेज का शुल्क देय होगा।

प्रेषण एवं मौलिकता : अपना शोध आलेख केवल आधिकारिक ईमेल (**Paridhi.shodh@gmail.com**) पर ही भेजें। आलेख पूर्णतः प्रूफ रीडिंग के साथ होना चाहिए। अशुद्धियों के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होंगे। एक ही आलेख बार-बार भेजने पर वह अस्वीकृत कर दिया जाएगा।

शोध पत्र लेखन हेतु मुख्य नियम :

1. **पेज सेट-अप एवं मार्जिन :**
   - i. पेज साइज : **A4** साइज।
   - ii. मार्जिन : पेज के चारों तरफ (ऊपर, नीचे, बाएँ, दाएँ) 1 इंच (2.54 सेमी) का स्थान छोड़ें।
   - iii. इंडेन्ट (**Indentation**) : प्रत्येक पैराग्राफ की पहली पंक्ति को 0.5 इंच (Tab) आगे से शुरू करें।
2. **फॉन्ट एवं स्पेसिंग :**
   - i. अंग्रेजी फॉन्ट : **Times New Roman** (12 pt.) या **Arial** (11 pt.)।
   - ii. हिंदी/संस्कृत फॉन्ट : मंगल/**Unicode** (12 pt.) अथवा कृतिदेव 010 (14 pt.)।
   - iii. लाइन स्पेसिंग : पूरे आलेख में डबल स्पेसिंग (2.0) का प्रयोग करें।
3. **आलेख की संरचना (Paper Structure) :**
   - i. शीर्षक पृष्ठ (**Title Page**) : सबसे ऊपर शोध का शीर्षक (**Bold**), उसके नीचे लेखक का नाम, पद, संस्थान/विश्वविद्यालय का नाम और ईमेल।
   - ii. सारांश (**Abstract**) : शीर्षक के बाद 150 से 250 शब्दों में शोध का संक्षिप्त सारांश और उसके ठीक नीचे 3 से 5 मुख्य शब्द (**Keywords**) लिखें।
   - iii. मुख्य भाग (**Main Body**) : भूमिका (**Introduction**), शोध विधि (**Methodology**), निष्कर्ष (**Results & Discussion**) में विभाजित करें।
4. **पाठ-अंतर्गत संदर्भ (In-Text Citation) :**
   - i. पाठ के भीतर संदर्भ देते समय (लेखक का उपनाम, वर्ष) प्रारूप अपनाएँ।
     उदाहरण : 'शर्मा (2023) के अनुसार...' अथवा **"(Sharma, 2023)"**
   - ii. यदि उद्धरण (**Direct Quote**) ज्यों-का-त्यों लिया गया है, तो पृष्ठ संख्या भी जोड़ें।
     उदाहरण : **"(Sharma, 2023,). 45)**
5. **संदर्भ सूची (References List) :**
   - i. आलेख के अंत में प्रयुक्त सभी संदर्भों को **'References'** (या संदर्भ सूची) शीर्षक के अंतर्गत लिखें।
   - ii. सभी संदर्भों को लेखक के उपनाम के वर्णमाला क्रम (**Alphabetical Order : A to Z**) में व्यवस्थित करें।
   - iii. संदर्भ सूची में हैंगिंग इंडेंट (**Hanging Indent**) लागू करें (यानी संदर्भ की पहली पंक्ति सामान्य रहेगी और दूसरी/तीसरी पंक्ति 0.5 इंच अंदर खिसकी रहेगी)।
   - iv. उदाहरण (पुस्तक) : शर्मा, व. (2022). शोध कार्य एवं नैतिकता. गुप्ता पब्लिशर्स.
   - v. उदाहरण (जर्नल) : कुमार, आर.(2024). बहुभाषीय पत्रिकाओं का महत्व शोध परिधि, 11(1), 45-52